



Centre for Distance & Online Education

Faculty of Arts

महाकाव्य- II



महाकाव्य- II



2MASANS5



Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in



DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

Chhattisgarh, Bilaspur A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

2MASANS5

महाकाव्य - II

2MASANS5

महाकाव्य - II

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr. V.P.Mishra, Dr. C.V. Raman
University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh
Dr. Renu Shukla, Dr. C.V. Raman
University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh
Shri Prakash Tiwari, Dr. C.V. Raman
University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh

Dr. Krishna Kumar Bhaskar, Dr. C.V.
Raman University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh
Dr. Vinod Pandey, Asso. Prof.& Head,
Sanskrit Dept. D.A.V. Mahavidyalaya
Civil Line kanpur (U.P.)
Dr. Raghvendra Sharma, Asso. Prof. &
Head Dept. of Veda, Govt. Dudhadhari
Sanskrit P.G. Collage, Raipur (C.G.)

Course Editor:

Dr. Suryakant Tripathi, Assistant Professor, Pt. Dindayal Upadhyay University Gorakhpur, (U.P.)

Unit Written By:

1. Dr. V.P.Mishra

Professor, Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (C.G.)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher. Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.)

Edition : March 2024

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड- रघुवंश महाकाव्य त्रयोदश सर्ग (41 से 79 श्लोक तक)

इकाई 1 - भौगोलिक चित्रण	01
इकाई 2 - राम भरत मिलाप	10
इकाई 3 - रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 41 से 60 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या.....	27
इकाई 4 - रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 61 से 79 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या.....	61

द्वितीय खण्ड - नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग (76 से 110 श्लोक तक)

इकाई 5 - श्रीहर्ष की भाषा शैली	101
इकाई 6 - नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग के 76 से 90 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या	129
इकाई 7 - नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग के 91 से 110 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या	153

तृतीय खण्ड- नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग (श्लोक 111 से 145 तक)

इकाई 8 - नैषधीयचरितम् के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण	184
इकाई 9 - नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग 111 से 125 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या.....	192
इकाई 10 - नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग 126 से 145 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या.....	214

चतुर्थ खण्ड- शिशुपालवध प्रथम सर्ग (श्लोक 36 से 75 तक)

इकाई 11 - माघे सन्ति त्रयो गुणा" विवेचना	243
इकाई 12 - शिशुपालवध के प्रमुख पत्रों का चरित्र चित्रण	253
इकाई 13 - शिशुपालवध प्रथम सर्ग के 36 से 55 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या	263
इकाई 14 - शिशुपालवध प्रथम सर्ग के 56 से 75 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या	319

प्रथम खण्ड- रघुवंश महाकाव्य त्रयोदश सर्ग (41 से 79 श्लोक तक)

भौगोलिक चित्रण, राम भरत मिलाप, रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 41 से 60 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या, रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 61 से 79 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

इकाई 1

भौगोलिक चित्रण

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 भौगोलिक चित्रण
- 1.4 पर्यावरणीय चिंतन
- 1.5 सार संक्षे -
- 1.6 मुख्य शब्द
- 1.7 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर-
- 1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

विगत इकाई में व्याख्यात्मक अध्ययन करने के पश्चात श्लोक में वर्णित प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कर सर्ग में वर्णित प्राकृतिक तत्व प्रकृति के महत्वपूर्ण तत्वों का अध्ययन किया जायेगा। इस इकाई में त्रयोदश सर्ग में वर्णित प्राकृतिक सौंदर्य का मनोरम चित्रण किया गया है। प्रकृति तथा मानव का अटूट संबंध है। प्रकृति के अंतर्गत वन संपदा जीव जंतु, पर्वत ,नदियां आदि तत्वों का समावेश है। रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में महाकवि कालिदास ने प्रकृति का चित्रण अत्यंत सुंदर रूप में किया है। प्रकृति जिसका वर्णन श्री राम के वनवास काल से अयोध्या पुनर्गमन तक की दृश्य में मानवीय भावनाओं के साथ संबंधित कर किया गया है। जो अत्यंत आकर्षक है। आगे की इकाइयों में श्लोकों के माध्यम से रघुवंश का अध्ययन किया जायेगा ।

1.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. प्रकृति के प्रति प्रेम भाव को जागृत किया जा सके।
2. प्रकृति के साथ मानव के संबंधों का ज्ञान प्राप्त किया जा सके।
3. प्रकृति के विभिन्न तत्वों का उनके गुणों के आधार पर परिचय प्राप्त हो ।
4. मानव तथा प्रकृति का विभिन्न भावों के आधार पर अध्ययन किया जा सके।

1.3 भौगोलिक चित्रण

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में प्रकृति का आत्मीय चित्रण भूमिका कालिदास काव्य-जगत् के श्रेष्ठतम कवियों में गिने जाते हैं, जिनकी रचनाओं में प्रकृति और मानवीय भावनाओं का विलक्षण सामंजस्य दिखाई देता है। रघुवंश महाकाव्य का त्रयोदश सर्ग राम के वनवास की समाप्ति और अयोध्या-प्रत्यावर्तन की कथा का संवेदनशील और सौंदर्यपूर्ण चित्रण करता है। इस सर्ग में राम, सीता और लक्ष्मण पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हैं, और इस यात्रा के माध्यम से कवि विभिन्न स्थलों का, विशेषतः प्राकृतिक सौंदर्य का, वर्णन करते हैं। किन्तु यह वर्णन मात्र प्राकृतिक दृश्यों की सजावट नहीं है; इसमें भावनाओं की गहराई, स्मृतियों की व्याप्ति, और सांस्कृतिक अर्थों की आभा भी है।

"स तत्र सरयूतीरं सौमित्रिणा सहितः पथि।

सीतया चाभ्यनन्दद् यं कालं च स्मृतिमागतम्॥" (13.67)

"राम लक्ष्मण और सीता के साथ सरयू नदी के तट पर पहुँचे और उस स्थान को देखकर उन्होंने वे स्मृतियाँ पुनः अनुभव कीं जो कभी उन्होंने वहाँ बिताई थीं।"

सरयू नदी भारतीय संस्कृति में केवल एक जलप्रवाह नहीं, अपितु एक जीवंत प्रतीक है—श्रद्धा, स्मृति और शांति की। राम जब सरयू तट पर लौटते हैं, तो वह दृश्य एक साधारण स्थल-दर्शन नहीं रह जाता; वह भावनात्मक पुनरावर्तन बन जाता है। कालिदास का यह वर्णन केवल नेत्रों से देखी गई छवि नहीं, बल्कि अंतर्मन से जुड़ा हुआ अनुभव है।

सरयू के बहाव में उन्हें अपने बचपन की लहरें दिखाई देती हैं; तट की हरियाली में शिक्षा के दिन; और उसी मार्ग से होते हुए वे वनवास के लिए प्रस्थान कर चुके थे। इस दृश्य में भावनाएँ बहती हैं—स्मृति की मिठास, त्याग का यश और पुनर्मिलन की करुणा। कालिदास इस अनुभूति को अत्यंत सहजता और आत्मीयता से प्रस्तुत करते हैं। "स्मृतिमागतम्" शब्द दर्शाता है कि स्मृति यहाँ मानसिक चित्र नहीं, बल्कि पुनः सजीव अनुभव बन चुकी है।

प्राकृतिक तट, शीतल वायु और नदी का कलकल निनाद—ये सभी राम की आत्मा को पुलकित करते हैं। यह एक प्रकार की पवित्र प्रक्षालना है, जहाँ उनका अतीत वर्तमान से मिलता है। इस तरह सरयू केवल एक भौगोलिक स्थल नहीं, बल्कि भावनात्मक अनुष्ठान का साक्षी बनती है।

**"प्रविष्टमाशा वसुधां निरीक्ष्य रामं पुरस्ताच्छुभलक्षणानाम्।
उदीर्य शीघ्रं प्रचलन् नराश्च प्रहृष्टवदना इवाभिरेजुः॥" (13.71)**

"जैसे ही राम ने नगर में प्रवेश किया, सारी दिशाएँ उल्लसित हो उठीं। शुभ लक्षणों के साथ नगरवासियों ने उनका स्वागत किया और उनके आनंद से पूरा नगर झूमने लगा।"

कालिदास अयोध्या नगरी को केवल स्थापत्य या राजनैतिक सत्ता का केंद्र नहीं मानते, बल्कि उसे एक सजीव आत्मा के रूप में चित्रित करते हैं। नगर का स्वागत केवल मानवीय क्रियाओं तक सीमित नहीं, बल्कि प्रकृति भी उसमें सहभाजिता करती है। दिशाओं का उल्लास, पवन की गंध, पुष्पवर्षा, दीपों की पंक्तियाँ—इन सभी के माध्यम से नगर का श्रृंगार दर्शाया गया है।

यह दृश्य केवल दृश्यात्मक शोभा नहीं है; यह धर्म, न्याय और संस्कृति की पुनर्स्थापना का प्रतीक है। राम का लौटना सत्य और तप का विजय है, और

नगर का श्रृंगार उसी नैतिक विजय की प्रतीकात्मक प्रतिक्रिया है। नगरवासियों के चेहरे पर उल्लास, घरों में दीपोत्सव, मार्गों की सफाई यह श्रृंगार केवल भौतिक नहीं, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भी है। नगर में तुलसी, आम्र और अशोक वृक्षों की लहराती शाखाएँ, सुगंधित वायु, स्वच्छ गंगा-जल से भरे कलश—ये सब नगर के सौंदर्य को प्रकृति से जोड़ते हैं। राम के स्वागत में स्वयं प्रकृति भी सजती है।

**"स्वरूपमाकाशगमं निरीक्ष्य स्वयंप्रकाशं रविनाभसारम्।
मुनिः प्रमोदमभिपेदिवांश्च सौमित्रिणा सहितसीतः॥" (13.62)**

"पुष्पक विमान का तेज, सूर्य के तेज के समान था, और उसकी दिव्यता को देखकर राम, सीता और लक्ष्मण अत्यंत प्रसन्न हो गए।"

कालिदास के लिए प्रकृति केवल वर्ण्य वस्तु नहीं है, बल्कि वह मनःस्थिति का दर्पण है। पुष्पक विमान की तुलना सूर्य से करना केवल उसकी आभा का चित्रण नहीं है, बल्कि यह विजय, तेज, धर्म और आत्मगौरव का भी संकेत है। यह वह यान है जो रावण जैसे शक्तिशाली अधर्मी से छीनकर अब धर्मशील राम को प्राप्त हुआ है।

राम, सीता और लक्ष्मण की प्रसन्नता केवल विमान की भव्यता पर आधारित नहीं; वह उस भाव पर आधारित है जो इस सम्पूर्ण यात्रा के पीछे है। पुष्पक विमान का आकाश में उड़ना—यह मुक्तता का प्रतीक है।

इस अनुभूति में प्रकृति और भाव का सामंजस्य दिखाई देता है। आकाश की नीलिमा, दिशा-प्रकाश, वायु का संचार—कालिदास इन सबका ऐसा सम्मिलन करते हैं कि पाठक उस भावभूमि में स्वयं को उपस्थित पाता है।

त्रयोदश सर्ग कालिदास की सौंदर्यदृष्टि, भावानुभूति और सांस्कृतिक चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण है। सरयू की पवित्रता, अयोध्या की उल्लासमयी शोभा और पुष्पक विमान की आभा—इन सबमें कवि ने प्रकृति और भावनाओं का गूढ़ सामंजस्य स्थापित किया है।

प्राकृतिक सौंदर्य केवल एक दृश्य नहीं है, वह आत्मिक अनुभव है—स्मृति, संस्कृति और संवेदना का त्रिवेणी-संगम। राम की यात्रा केवल अयोध्या की ओर

नहीं, वह आत्मसाक्षात्कार, कर्तव्य की पूर्णता और धर्म की पुनःस्थापना की यात्रा है—जिसमें प्रकृति एक मौन साक्षी ही नहीं, एक सक्रिय सहचर बनकर उपस्थित है।

कालिदास की यह काव्य-यात्रा भारतीय काव्यशास्त्र में प्रकृति और पुरुषार्थ के मिलन की एक कालजयी प्रस्तुति है।

स्वप्रगति परीक्षण प्रश्न

1. राम के अयोध्या लौटने पर ऋतुराज का कौन-सा वर्णन रघुवंश में किया गया है?

- a) ग्रीष्म
- b) वर्षा
- c) शरद
- d) वसंत

2. रघुवंश में अयोध्या लौटते समय किस प्राकृतिक तत्व का सौंदर्य वर्णन विशेष रूप से हुआ है?

- a) हिमालय
- b) पुष्पों से लदी वल्लरियाँ
- c) मरुस्थल
- d) समुद्र तट

3. रघुवंश के अनुसार अयोध्या की कौन-सी विशेषता राम को लौटते समय दिखाई देती है?

- a) उजड़ी हुई नगरी
- b) प्रकृति से सुशोभित नगरी
- c) शोकमग्न प्रजा
- d) धूल से ढकी सड़कें

4. रघुवंश में अयोध्या लौटने की प्रसन्नता को प्रकृति से कैसे जोड़ा गया है?

- a) वनों की नीरवता से

- b) फूलों की बहार और सुगंध से
- c) सूर्यग्रहण से
- d) पर्वतों की चुप्पी से

5. रघुवंश के किस सर्ग में राम का अयोध्या पुनर्गमन वर्णित है?

- a) पाँचवा
- b) दसवां
- c) तेरहवां
- d) सत्रहवां

1.4 पर्यावरणीय चिंतन

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में जब राम, सीता और लक्ष्मण पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या की ओर लौटते हैं, तब यह यात्रा मात्र भौगोलिक गमन नहीं, बल्कि एक गहन काव्यात्मक अनुभव बन जाती है। कालिदास इस यात्रा को एक ऐसे माध्यम में रूपांतरित करते हैं, जिसके द्वारा प्रकृति की जीवंतता, लोकों की विविधता और मानवीय भावनाओं का अद्भुत संयोग पाठक के समक्ष आता है।

“स तु प्रीतिमिवान्वेक्ष्य जनस्थानं दृशैस्त्रिभिः।

बभूवाकाशसंचारप्रत्ययप्रमदः पुनः॥” (13.45)

“राम जब तीनों नेत्रों (राम, सीता, लक्ष्मण) से जनस्थान की ओर देख रहे थे, तब वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो किसी प्रिय के दर्शन कर रहे हों। आकाश-मार्ग से यह यात्रा उन्हें विशेष आनंद देने वाली बनी।”

इस श्लोक में जनस्थान (वनवास के समय का प्रिय और पीड़ादायक स्थल) का पुनःदर्शन राम के लिए एक भावुक अनुभव है। यह कोई निर्जीव स्थान नहीं, बल्कि एक ऐसा भावभूमि है जहाँ स्मृतियाँ, संघर्ष और धर्मपालन की कथा जुड़ी हुई है। कालिदास “प्रीतिमिवान्वेक्ष्य” कहकर इस स्थल को प्रिय के समकक्ष स्थापित करते हैं। यह संकेत करता है कि प्रकृति के माध्यम से

व्यक्ति अपने अतीत से कैसे जुड़ता है, और कैसे स्थलों के दर्शन भी भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं।

पुष्पक विमान से होते हुए यह यात्रा एक चल चित्रपट की भाँति है, जिसमें पर्वत, नदियाँ, वन, ग्राम और नगर – सभी राम के लिए अपने अपने भावात्मक अर्थ ग्रहण करते हैं। इसी प्रक्रिया में पाठक भी उन स्थलों का दर्शन करता है, जो केवल भौगोलिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्त्व से पूरित हैं।

इस प्रकार, पुष्पक विमान की यात्रा में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि सह-अभिनेत्री बन जाती है। वह राम की स्मृतियों, मनःस्थितियों और भावनाओं को परिपक्व रूप देती है। कालिदास इस अनुभूति को अत्यंत सौंदर्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक भी उस यात्रा का भाग बन जाता है

1.5 सार - संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में वनवास की स्मृतियों के माध्यम से प्रकृति का सुंदर चित्रण किया गया है। प्रकृति मानव के सुख दुख की सहभागी होती है, इसका प्रमाण त्रयोदश सर्ग में वर्णित प्रकृति वर्णन से प्राप्त होता है। प्रकृति के विभिन्न तत्वों के चित्रण मानवीय स्वभाव के साथ सामंजस्य प्राकृतिक तत्वों का कार्य मानवीय जीवन में उनकी महत्ता के माध्यम से इस इकाई को पूर्ण किया गया है

1.6 मुख्य शब्द

1. पुष्पष्टि- फूलों की वर्षा
2. स्मृति -याद
3. निनाद- स्वर
4. भौगोलिक- भूगोल के आधार पर अध्ययन
5. पवित्रता -पावनता

.6त्रिवेणी -तीन का समूह

1.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. घ वसंत
2. ख पुष्पों से लदी वल्लरियाँ
3. ख प्रकृति से सुशोभित नगरी
4. ख फूलों की बहार और सुगंध से
5. ग तेरहवां

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्री चंद्रबली पाण्डेय, कालिदास, मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1954 ।
2. रमाशंकर तिवारी ,महाकवि कालिदास, चौखंबा विद्या भवन ,वाराणसी 1961।
3. रेवा प्रसाद द्विवेदी, कालिदास ग्रंथावली, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,1976 ।
4. आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी,कालिदास ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ,लखनऊ, 2014।
5. डॉ शोभा भरद्वाज, रघुवंशम- महाकवि कालिदास , युवराज पब्लिकेशन, आगरा, 2021

1.9 अभ्यास प्रश्न

1. महाकवि कालिदास के प्रकृति वर्णन की विशेषताओं का विस्तार विवेचन कीजिए।
2. प्रकृति तथा मानवीय भावनाओं के संदर्भ में त्रयोदश सर्ग का विवेचन कीजिए।
3. स्थलमंडल के अंतर्गत वर्णित तत्वों की समीक्षा कीजिए।
4. राम द्वारा वर्णित प्राकृतिक तत्वों के विभिन्न रसों के आधार पर भावनाओं

को प्रकाशित कीजिए

इकाई -2

राम भरत मिलाप

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 भरत का तपस्वी रूप
- 2.4 राम भरत मिलन
- 2.5 नैतिक व सांस्कृतिक संदेश
- 2.6 सार संक्षेप -
- 2.7 मुख्य शब्द
- 2.8 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर
- 2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

गत इकाइयों में राम के वनवास के पश्चात अयोध्या आगमन के विषय में लंका से अयोध्या तक के मार्ग का भौगोलिक अध्ययन किया गया था। प्रस्तुत इकाई में इन मार्गों से होकर जब अयोध्या के निकट पहुंचकर श्री राम जब भारत से मिलते हैं उसे दृश्य का अत्यंत मनोरम वर्णन किया गया है। लंका से अयोध्या तक के मार्ग में आने वाले तत्व पर्यावरणीय घटकों आदि के विवेचन के पश्चात अयोध्या पहुंचने पर जो दृश्य उत्पन्न होता है, उसका संकलन इस इकाई में किया गया है। भरत की दीर्घकालीन प्रतीक्षा तथा श्री राम को उनके प्रति स्नेह इस इकाई की प्रमुख विशेषता है। राम भरत मिलाप के पश्चात अयोध्या में उनके स्वागत आदि का वर्णन पश्चात की इकाइयों में किया जाएगा। राम भरत मिलन के द्वारा अयोध्या में उनके आगमन के प्रथम दृश्य का वर्णन भरत के साथ उनके स्नेह भाव तथा भरत के स्वरूप चित्रण द्वारा विस्तार से किया गया है।

2.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. भारतीय संस्कृति में विद्यमान भ्रातृत्व की भावना का दर्शन प्राप्त कर सके।
2. अयोध्या आगमन की दृश्य का मनोरम चित्रण से अवगत हो सके।
3. राम तथा भारत के चरित्र के माध्यम से व्यवहार में त्याग तथा समर्पण की भावना जागृत हो सके।
4. सामाजिक जीवन में स्नेह, दया, करुणा जैसे भावों का उदय हो सके।

2.3 भरत का तपस्वी रूप

महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृत साहित्य में काव्य और दर्शन के अद्वितीय शिल्पी माने जाते हैं। उनकी महाकाव्य रचना रघुवंशम् रघु वंश के महान राजाओं की गाथा है, परंतु इसका तेरहवां सर्ग **विशेष** रूप से भरत की तपस्विता, त्याग और भ्रातृप्रेम का महिमामंडन करता है। भरत का चरित्र केवल एक राजा का नहीं, अपितु एक ऐसे आदर्श पुरुष का है जो धर्म, विनय और संयम के उच्चतम मानदंडों पर खरा उतरता है।

यह भरत के तपस्वी रूप का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करता है—न केवल उनके बाह्य आचरण में, बल्कि उनके अंतरात्मा के भीतर जो अग्नि प्रज्वलित है, उसे समझने का प्रयास करता है।

राम के वनवास की कथा सामान्यतः राम के दृष्टिकोण से प्रसिद्ध है, परंतु रघुवंश भरत के आंतरिक विवेक और पीड़ा को भी उतनी ही प्रखरता से

चित्रित करता है। भरत अयोध्या लौटने पर जब राम के वनगमन का समाचार सुनते हैं, तो उन्हें यह संदेह होता है कि उन्हें राज्य का लोभ हुआ है। वे आत्मग्लानि में डूब जाते हैं:

"स राज्यमातुरनया लब्धमित्युपशुष्यत।"

(रघुवंश, सर्ग 12)

यह क्षण भरत के तप का प्रारंभ है—यह तप केवल वल्कल पहनने से नहीं, आत्मग्लानि और कर्तव्य की भीतरी ज्वाला से उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् जब भरत राम को मनाने के लिए अयोध्या से निकलते हैं, यह केवल एक भ्रातृ यात्रा नहीं है, यह धर्मयात्रा है। वे नंगे पाँव, तपस्वी वेष में, गुरुओं और परिजनों सहित चित्रकूट जाते हैं। यहाँ भरत न केवल भौतिक रूप से, बल्कि मानसिक और आत्मिक रूप से स्वयं को राम का सेवक स्वीकार करते हैं।

राम द्वारा राज्य स्वीकार न करने पर भरत अयोध्या लौटते हैं, परंतु वे उसमें नहीं रहते। वे नगर से बाहर नंदीग्राम में निवास करते हैं और वहाँ एक तपस्वी की भाँति जीवन यापन करते हैं:

"विस्मृतस्नानविलिप्तगात्रवेषः कृशवपुः कुटिलशिराः।

रमणीयानपि तानि तानि वस्तूनि चिराभ्यासवशात्यजत्॥"

(रघुवंश, सर्ग 13)

"वह नियमित स्नान करना भूल गए, शरीर कृश हो गया, केश उलझे हुए। रमणीय वस्तुओं को, जो सहज आकर्षक होती हैं, उन्होंने अभ्यासवश त्याग दिया।"

यहां भरत का तप केवल प्रतीकात्मक नहीं, व्यवहारिक है। उन्होंने सांसारिक सुखों का पूर्ण परित्याग कर दिया। वे राम की पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर शासन करते हैं, पर स्वयं को केवल सेवादार मानते हैं।

नंदीग्राम में भरत का तप केवल एकांत साधना नहीं, वह एक धर्मराज्य का प्रयोग है। भरत ने यह दिखाया कि सत्ता में रहते हुए भी मन तपस्वी रह सकता है। उन्होंने "शून्य सिंहासन" की परिकल्पना प्रस्तुत की, जहाँ राजा अनुपस्थित है और शासन राम की मर्यादा के अनुसार चलता है।

यह एक प्रकार का राजनैतिक तप है, जहाँ भरत स्वयं को केवल माध्यम मानते हैं, उद्देश्य नहीं। उनकी यह तपस्विता राज्य के नागरिकों को भी प्रेरणा देती है।

राम के लौटने का समय आता है। भरत की भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं। वे इतने वर्षों के संयम के बाद भाई को देखकर विह्वल हो उठते हैं:

"पदावनतसर्वाङ्गः पृथिव्यामत्यवन्दत।"

(रघुवंश, सर्ग 13)

"भरत ने समस्त अंगों को भूमि पर डालते हुए राम को प्रणाम किया।"

राम और भरत का आलिंगन न केवल दो भाइयों का मिलन है, यह धर्म और तप का संगम है। भरत के वर्षों के संयम और तप की यह संपूर्णता है।

कालिदास ने भरत के तपस्वी रूप को व्यक्त करने के लिए अनेक काव्यात्मक उपकरणों का प्रयोग किया है—उपमा, रूपक, अनुप्रास, आदि। भरत के लिए प्रयुक्त श्लोकों में करुणा और गरिमा का अद्भुत संतुलन मिलता है।

"धृतव्रतो निर्भवति प्रियंवदः सत्सु विनीतो जनेषु चापलः।"

(रघुवंश, सर्ग 13)

"जो व्रतधारी है, प्रियभाषी है, सज्जनों में विनीत और साधारण जनों में सरल—ऐसे भरत की छवि कालिदास निर्मित करते हैं।"

यह श्लोक भरत की तपस्विता को बाह्य नहीं, आंतरिक गुणों से जोड़ता है।

यद्यपि राम 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहे जाते हैं, भरत भी उस मर्यादा के पालन में स्वयं को समर्पित कर देते हैं। भरत का तप उन्हें केवल एक सहायक पात्र नहीं बनाता; वे नायक जैसे प्रतीत होते हैं—नायक जो सत्ता को ठुकराता है, जो भ्रातृप्रेम में शासन को साधन नहीं, सेवा मानता है।

कालिदास के रघुवंश में भरत का तपस्वी रूप भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का जीवंत प्रतीक है। उनका चरित्र यह सिद्ध करता है कि वास्तविक शक्ति त्याग में है, संयम में है, और सबसे बढ़कर धर्मपालन में है। भरत केवल राम के भाई नहीं, वे उस संस्कृति के प्रतिनिधि हैं जिसमें सत्ता सेवा है, और जीवन एक व्रत।

आज के राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य में भरत की तपस्विता एक आदर्श प्रस्तुत करती है। कालिदास की लेखनी ने भरत के माध्यम से उस आदर्श मनुष्य की कल्पना की है जो स्वयं को परित्याग कर भी यश का अधिकारी बनता है। यह भरत के तप का सर्वोच्च सम्मान है।

2.4 राम भरत मिलन

कालिदास की रघुवंशम् महाकाव्य परंपरा में केवल वीरगाथा नहीं, भावनात्मक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का अत्यंत सघन ग्रंथ है। इसकी तेरहवीं सर्ग में राम के अयोध्या लौटने पर भरत से उनका पुनर्मिलन चित्रित किया गया है। यह प्रसंग केवल भ्रातृप्रेम का क्षण नहीं, यह धर्म, कर्तव्य और आत्मसंयम के विराट् आदर्शों का संगम है।

राम 14 वर्षों के वनवास के पश्चात लौटते हैं। इस अवधि में भरत ने राज्य को नंदीग्राम से राम की पादुका के माध्यम से चलाया। जब राम लौटते हैं, तो भरत की तपस्या का अंत और धर्म की परिपूर्णता होती है।

"पितृनियमवशेन नन्दिग्रामे निविष्टः नृपतिसदृशाचारः स त्वया पर्यतिष्ठत्।"

(रघुवंश, 13.2)

"पिता की आज्ञा से नंदीग्राम में निवास करने वाला भरत, नरेश के सदृश आचरण करता रहा।"

यह श्लोक यह स्पष्ट करता है कि भरत का जीवन उस अवधि में एक तपस्वी राजा जैसा रहा।

राम का पुष्पक से आगमन होता है। भरत उन्हें देख अत्यधिक विह्वल हो उठते हैं। कालिदास इसे अत्यंत नाटकीय और भावनात्मक रूप में चित्रित करते हैं:

"स जग्राह पादौ तस्य शिरसा प्रणिपत्य तम्।

भरतः परिषस्वाज रामं स्नेहेन बाष्पयन्॥"

(रघुवंश, 13.22)

यहाँ भरत राम के चरण पकड़ते हैं। यह मुद्रा केवल अभिवादन की नहीं, वर्षों के विरह और आत्मग्लानि के विसर्जन की है।

कालिदास "स्नेहेन बाष्पयन्" (प्रेम में रोते हुए) कहकर केवल भावना नहीं, संबंध की गहराई को उजागर करते हैं।

राम और भरत का मिलन इस प्रसंग का भावनात्मक शिखर है। भरत की दृष्टि में राम केवल भ्राता नहीं, मर्यादा के मूर्त स्वरूप हैं। उन्होंने केवल प्रतीक्षा नहीं की, बल्कि अपनी इच्छाओं और अधिकारों का समर्पण कर तपस्वी जीवन जिया।

"त्वमेव राज्यं धार्य त्वमेव वंशस्य वर्धनः।

त्वमेव धर्मस्य स्थितिः...."

"आप ही राज्य के अधिकारी हैं, आप ही वंश के रक्षक हैं,

और आप ही धर्म की प्रतिष्ठा हैं।"

राम का अयोध्या लौटना केवल पारिवारिक पुनर्मिलन नहीं है, यह धर्मराज्य की पुनःस्थापना है। भरत, राम की अनुपस्थिति में भी राज्य को राम के आदर्शों से चलाते हैं। इसीलिए पुनर्मिलन मात्र आलिंगन नहीं, वह राजधर्म की निरंतरता का सांकेतिक क्षण है।

"प्रवृत्तं पुनः राज्यम् धर्मेण रामेण यथोचितम्।"

(रघुवंश, 13.45)

"राम ने पुनः धर्मानुकूल राज्य-व्यवस्था प्रारंभ की।"

राम का आगमन भरत की तपस्या की पूर्ति है। उन्होंने संकल्प किया था कि राम के बिना अयोध्या में न प्रवेश करेंगे, न सुख भोगेंगे। उनका संयम, त्याग और तप राम के पुनः प्रवेश का माध्यम बनता है।

"सा पुनः स्फुरितं लक्ष्मीः रामेण स्वेन तेजसा।"

(रघुवंश, 13.46)

"वह श्री (राजलक्ष्मी) पुनः राम के तेज से प्रकट हुई।" यह राम की वापसी भरत की भक्ति का विजयी क्षण है।

कालिदास ने पुनर्मिलन के वर्णन में करुणा, संकोच, आदर और उल्लास का सूक्ष्म संयोजन किया है। उनका शब्दचयन अत्यंत मर्मस्पर्शी है—न ही अतिरेक, न ही शुष्कता। जैसे:

"नातिव्याकुलमाश्लेषं कुर्युरेते स्म सस्वरम्।"

(रघुवंश, 13.24)

"उन्होंने अति व्याकुल न होते हुए, स्वरयुक्त आलिंगन किया।" यहाँ 'सस्वरम्' शब्द भ्रातृप्रेम की गूँज को ध्वनित करता है—यह मात्र दृष्टिगत आलिंगन नहीं, भीतर की पुकार है।

राम भरत को देखकर भावुक होते हैं, परंतु उनकी विनम्रता बनी रहती है। वे भरत के त्याग को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करते हैं।

"न भरतो मम किञ्चित् न्यूनम् राजधर्मतः।"

धर्म एवोभयोर्भात्योः प्रधानः..."

"राजधर्म की दृष्टि से भरत मुझसे कम नहीं, हमारे लिए धर्म ही प्रधान है।" यह राम की दृष्टि में भरत की तपस्या का सार्वजनिक सम्मान है।

राम-भरत के पुनर्मिलन के साथ ही अयोध्या भी पुनः प्रफुल्लित होती है। कालिदास इसे प्रकृति और नगर दोनों के उल्लास में व्यक्त करते हैं:

"प्रकृतयः प्रमुदिताः पुरं पुनः द्वारमुपेत्य समभ्यनन्दन्।"

(रघुवंश, 13.48)

"नगर की जनता ने द्वार पर आकर उल्लासपूर्वक राम का स्वागत किया।"

यह उल्लास केवल शासक का लौटना नहीं, यह धर्म और मर्यादा की वापसी है।

यहाँ कालिदास यहाँ केवल कथा नहीं कह रहे; वे भावनाओं का एक नाट्य प्रस्तुत करते हैं—जहाँ प्रत्येक क्रिया प्रतीकात्मक है। राम का आगमन धर्म का पुनर्जन्म है, भरत का चरणवन्दन विनय की पराकाष्ठा है, और अयोध्या का उल्लास जनता के विश्वास की वापसी है।

तुलसीदास इस प्रसंग को अत्यधिक भक्ति और करुणा से चित्रित करते हैं:

"राम सनेह करुना बड़ि, भरत हृदय महुँ बास।"

(रामचरितमानस, अयोध्याकांड)

कालिदास वहीं इसे काव्य की सुषमा, धैर्य और गरिमा से भरते हैं। उनकी भाषा शास्त्रीय है, पर भावना उतनी ही सरल हैं राम और भरत का पुनर्मिलन रघुवंश के तेरहवें सर्ग का केन्द्रीय भाव है। यह केवल एक पारिवारिक मिलन नहीं, एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण है। भरत के त्याग, तपस्या और धर्मपालन को कालिदास ने भावनात्मक संयम और काव्यात्मक भव्यता के माध्यम से अमर कर दिया है।

इस पाठ में नायक केवल राम नहीं, भरत भी हैं—जो सत्ता का त्याग कर, सेवा और प्रतीक्षा के मार्ग पर चलते हैं। इस मिलन में केवल आँसू और आलिंगन नहीं हैं; इसमें धर्म, मर्यादा, त्याग और पुनर्स्थापना के अनेक अर्थ अंतर्निहित हैं।

यह प्रसंग आज भी भारतीय मानस में इसलिए जीवित है क्योंकि यह भावों की गहराई और आदर्शों की ऊँचाई को एक साथ रेखांकित करता है।

1. बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

1. भरत राम से कहाँ मिलते हैं?

a) अयोध्या में

b) चित्रकूट में

- c) पंचवटी में
 - d) लंका में
2. भरत राम को अयोध्या लौटने के लिए क्या अनुरोध करते हैं?
 - a) राज्याभिषेक के लिए
 - b) जनक से मिलने के लिए
 - c) रामायण सुनने के लिए
 - d) वाल्मीकि से मिलने के लिए
 3. राम भरत को राज्य देने से क्यों मना करते हैं?
 - a) वे वनवास का पालन करना चाहते हैं
 - b) उन्हें राज्य में रुचि नहीं
 - c) वे लक्ष्मण को राजा बनाना चाहते हैं
 - d) भरत से नाराज़ हैं
 4. भरत राम की खड़ाऊँ को किस स्थान पर रखते हैं?
 - a) चित्रकूट में
 - b) अयोध्या के राजसिंहासन पर
 - c) वाल्मीकि आश्रम में
 - d) जनकपुरी में
 5. राम-भरत मिलन प्रसंग में किस भावना की प्रधानता होती है?
 - a) क्रोध
 - b) अहंकार
 - c) भ्रातृप्रेम और त्याग
 - d) प्रतिशोध

2. सही-गलत (True/False):

1. भरत ने राम से वनवास समाप्त कर अयोध्या लौटने की विनती की।
2. राम भरत से नाराज़ थे इसलिए उन्होंने लौटने से मना कर दिया।
3. भरत ने आजीवन राम की खड़ाऊँ के माध्यम से राज्य चलाया।
4. राम-भरत मिलन की घटना रघुवंशम् के 13वें सर्ग में वर्णित है।
5. भरत ने राम से मिलने के लिए सेना सहित यात्रा की थी।

2.5 नैतिक व सांस्कृतिक संदेश

महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'रघुवंश' भारतीय साहित्य की अनुपम कृति है। यह महाकाव्य सूर्यवंशी राजाओं की गौरवशाली गाथा प्रस्तुत करता है, जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम का चरित्र विशेष रूप से देदीप्यमान है। इस काव्य में अनेक मार्मिक और उदात्त प्रसंग आते हैं, जिनमें से राम और भरत का मिलन सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की गहरी छाप छोड़ता है। यह मिलन केवल दो भाइयों का स्नेहिल समागम नहीं है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों, पारिवारिक मूल्यों, कर्तव्यनिष्ठा और त्याग की भावना का जीवंत चित्रण है। 'रघुवंश' के इस महत्वपूर्ण प्रसंग के सांस्कृतिक और नैतिक संदेशों का विस्तृत विश्लेषण किया जाएगा।

राम और भरत का यह मिलन तब होता है जब परिस्थितियाँ अत्यंत विषम होती हैं। कैकेयी के वरदान के कारण राम को चौदह वर्ष का वनवास मिलता है और उनके पिता दशरथ इस शोक को सहन न कर पाने के कारण प्राण त्याग देते हैं। भरत, जो उस समय ननिहाल में होते हैं, अयोध्या लौटकर इस दुखद घटना और अपनी माता के कुटिल षड्यंत्र से अत्यंत व्यथित होते हैं। उन्हें राजसिंहासन की प्राप्ति छल से हुई प्रतीत होती है, जिसे वे किसी भी कीमत पर स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। उनके हृदय में अपने ज्येष्ठ भ्राता राम के प्रति अगाध प्रेम और सम्मान होता है। इसी प्रेम और कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर भरत, राम को वापस अयोध्या लाने के दृढ़ संकल्प के साथ वन की ओर प्रस्थान करते हैं। उनके साथ गुरु वशिष्ठ, मंत्रीगण, और अयोध्या के नागरिक भी होते हैं, जो राम के प्रति अपने स्नेह और सम्मान को व्यक्त करते हैं।

सांस्कृतिक संदेश:

राम और भरत के मिलन का **प्रसंग** भारतीय संस्कृति के कई महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करता है:

* **भ्रातृ प्रेम एवं पारिवारिक मूल्य:** यह मिलन भ्रातृ प्रेम की उस उदात्त भावना का प्रतीक है जो भारतीय संस्कृति में सर्वोपरि मानी जाती है। राम और भरत के बीच का अटूट स्नेह, एक-दूसरे के प्रति समर्पण और त्याग की भावना पारिवारिक मूल्यों की महत्ता को स्थापित करती है। भरत, जिन्हें राज्य प्राप्त हो चुका है, उसे त्याग कर अपने बड़े भाई को वापस लाने के लिए वन-वन भटकते हैं। यह व्यक्तिगत सुख और सत्ता से ऊपर पारिवारिक संबंधों को महत्व देने की हमारी सांस्कृतिक परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह **प्रसंग** सिखाता है कि परिवार के सदस्यों के बीच प्रेम, सम्मान और आपसी समझ किसी भी भौतिक संपत्ति से अधिक मूल्यवान है।

* **धर्म एवं कर्तव्यनिष्ठा:** राम और भरत दोनों ही अपने-अपने धर्म और कर्तव्य के प्रति अटूट निष्ठा का परिचय देते हैं। राम अपने पिता के वचन का पालन करते हुए वनवास स्वीकार करते हैं, जबकि भरत राजसिंहासन को ठुकराकर अपने बड़े भाई की सेवा और मर्यादा की रक्षा को अपना धर्म मानते हैं। भरत का यह कार्य 'राजधर्म' और 'भ्रातृधर्म' के बीच समन्वय स्थापित करता है। वे राज्य का संचालन राम के प्रतिनिधि के रूप में करते हैं, पादुकाओं को सिंहासन पर स्थापित कर स्वयं सेवक की भांति कार्य करते हैं। यह **प्रसंग** कर्तव्यनिष्ठा के महत्व को दर्शाता है, जहाँ व्यक्तिगत इच्छाओं से ऊपर कुल, समाज और धर्म के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करना आवश्यक माना जाता है।

* **गुरु एवं ज्येष्ठ का सम्मान:** भरत का राम के प्रति व्यवहार गुरु और ज्येष्ठ के प्रति भारतीय संस्कृति में निहित गहरे सम्मान को दर्शाता है। वे राम को राजा मानते हैं और स्वयं को उनका सेवक। उनकी वाणी में विनम्रता और हृदय में श्रद्धा का भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। भरत अपने साथ गुरु वशिष्ठ

को लेकर जाते हैं, जो इस मिलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह दर्शाता है कि महत्वपूर्ण निर्णयों में गुरुओं और बड़ों का मार्गदर्शन कितना आवश्यक माना जाता था।

*** सामाजिक समरसता एवं प्रजा का स्नेह:** भरत अकेले वन नहीं जाते, बल्कि उनके साथ अयोध्या के नागरिक भी जाते हैं। यह दर्शाता है कि प्रजा राम के प्रति कितना स्नेह और सम्मान रखती थी और उनके वनवास से कितनी दुखी थी। भरत का यह प्रयास प्रजा की भावनाओं का भी प्रतिनिधित्व करता है। यह प्रसंग राजा और प्रजा के बीच मधुर संबंध और सामाजिक समरसता के महत्व को रेखांकित करता है। प्रजा अपने राजा के गुणों और न्यायप्रियता के कारण उनसे गहरा जुड़ाव महसूस करती है।

*** त्याग एवं अनासक्ति:** राम और भरत दोनों ही त्याग और अनासक्ति की भावना का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। राम सहजता से राजपाट त्याग कर वनवास स्वीकार करते हैं, जबकि भरत प्राप्त हुए राज्य को त्याग कर तपस्वी जीवन जीते हैं। यह भारतीय दर्शन के उस मूल सिद्धांत को पुष्ट करता है जहाँ भौतिक सुखों और आसक्तियों से मुक्ति को आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग माना जाता है। यह प्रसंग सिखाता है कि सच्चा सुख भोग में नहीं, बल्कि कर्तव्य पालन और त्याग में निहित है।

नैतिक संदेश:

राम और भरत के मिलन से अनेक महत्वपूर्ण नैतिक संदेश प्राप्त होते हैं:

*** सत्यनिष्ठा एवं वचन पालन:** राम का अपने पिता के वचन का पालन करना सत्यनिष्ठा और वचनबद्धता के महत्व को स्थापित करता है। वे जानते हैं कि वनवास उनके लिए कितना कठिन होगा, फिर भी वे अपने वचन से नहीं डिगते। दूसरी ओर, भरत भी अपने सत्यनिष्ठ स्वभाव का परिचय देते हुए छल से प्राप्त राज्य को अस्वीकार करते हैं। यह प्रसंग सिखाता है कि सत्य और वचन का पालन व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

* **न्याय एवं धर्म की स्थापना:** भरत का राम को वापस लाने का प्रयास न्याय और धर्म की स्थापना की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। वे जानते हैं कि राम ही अयोध्या के वास्तविक अधिकारी हैं और उनका वनवास अन्यायपूर्ण है। उनका यह कार्य अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने और धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। यह **प्रसंग** यह संदेश देता है कि सत्य और न्याय की विजय अंततः अवश्य होती है, भले ही परिस्थितियाँ कितनी भी विपरीत क्यों न हों।

* **निःस्वार्थ प्रेम एवं करुणा:** राम और भरत का प्रेम निःस्वार्थ और निश्छल है। दोनों ही एक-दूसरे के कल्याण की कामना करते हैं। राम भरत के त्याग और कर्तव्यनिष्ठा को समझते हैं और उनके प्रति स्नेह व्यक्त करते हैं। भरत राम के कष्टों से दुखी होते हैं और उन्हें हर संभव सहायता प्रदान करने के लिए तत्पर रहते हैं। यह **प्रसंग** निःस्वार्थ प्रेम और करुणा की भावना को पोषित करता है, जो मानवीय संबंधों का आधार है।

* **क्षमा एवं उदारता:** यद्यपि कैकेयी के कारण राम को कष्ट सहना पड़ता है, फिर भी उनके हृदय में किसी के प्रति द्वेष या कटुता का भाव नहीं होता। वे भरत के प्रेम और पश्चाताप को समझते हैं और उनके प्रति उदारता का परिचय देते हैं। भरत भी अपनी माता के कृत्य के लिए ग्लानि महसूस करते हैं और राम से क्षमा याचना करते हैं। यह **प्रसंग** क्षमा और उदारता के महत्व को दर्शाता है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में शांति और सद्भाव बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

* **नेतृत्व के आदर्श:** भरत का अस्थायी शासन और राम के प्रति उनकी निष्ठा नेतृत्व के उच्च आदर्शों को प्रस्तुत करती है। भरत राजा होते हुए भी स्वयं को राम का सेवक मानते हैं और प्रजा का ध्यान रखते हुए न्यायपूर्ण शासन करते हैं। यह **प्रसंग** सिखाता है कि सच्चा नेता वह होता है जो

व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं से ऊपर उठकर लोक कल्याण को प्राथमिकता देता है और अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वाह करता है।

कालिदास की कला:

कालिदास ने 'रघुवंश' में राम और भरत के मिलन के प्रसंग को अत्यंत कुशलता और मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। उनके काव्य में भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण, प्रकृति का मनोरम वर्णन और संवादों की गहराई इस प्रसंग को और भी प्रभावशाली बना देती है। कालिदास ने राम और भरत के हृदय के भावों को बड़ी सुंदरता से व्यक्त किया है, जिससे पाठक इस मिलन की भावनात्मक तीव्रता को अनुभव कर सकते हैं।

'रघुवंश' में राम और भरत का मिलन भारतीय संस्कृति और नैतिकता के उदात्त मूल्यों का एक जीवंत उदाहरण है। यह प्रसंग भ्रातृ प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, त्याग, न्याय और उदारता जैसे महत्वपूर्ण गुणों को उजागर करता है। यह हमें सिखाता है कि पारिवारिक संबंध कितने महत्वपूर्ण होते हैं, अपने धर्म और कर्तव्य का पालन करना कितना आवश्यक है, और सत्य एवं न्याय के मार्ग पर चलने का क्या महत्व है। कालिदास ने अपनी अनुपम काव्य कला के माध्यम से इस मिलन को अमर बना दिया है, जो आज भी हमें नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की प्रेरणा देता है। यह प्रसंग न केवल एक साहित्यिक उत्कृष्ट कृति है, बल्कि यह भारतीय जीवन दर्शन और आदर्शों का भी सार प्रस्तुत करता है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हमें सही मार्ग दिखाता रहेगा। यह मिलन व्यक्तिगत संबंधों की गहराई और सामाजिक व्यवस्था के महत्व को दर्शाता है, जो भारतीय संस्कृति की नींव हैं।

2.6 सार - संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में राम के अयोध्या आगमन पर भरत तथा अन्य नगरवासियों द्वारा उनके स्वागत का वर्णन किया गया है। भारत का वह त्याग जिनके माध्यम से उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता के वनवास कालीन जीवन का अनुभव किया था, भरत के उस त्याग, तपस्वी जीवन का वर्णन कर 14 वर्षों की प्रतीक्षा का मनोरम चित्रण किया गया है। भरत के स्वभाव तथा भ्राता के प्रति सम्मान का समन्वय करने के पश्चात राम-भरत मिलन का वर्णन उनके मनोभावों के सुन्दर प्रस्तुतिकरण के माध्यम से किया गया है। राम के अयोध्या आगमन के दृश्य का आरंभ भारत द्वारा नगर की सीमा में उनके स्वागत से आरंभ होता है। राम भरत मिलन में उन 14 वर्षों के की तपस्या का संगम है जो दोनों ही भाइयों ने अपने प्रेम के बल पर पूर्ण किया है। राम भरत मिलन में उन सभी स्मृतियां राम के राज्याभिषेक की हर्ष आदि का संगम है, जिसे अत्यंत सुंदर भावना से पूर्ण किया गया है।

2.7 मुख्य शब्द

1. तपस्वी- तप भावना से युक्त
2. भ्रातृत्व- भाई के प्रति स्नेह भाव
3. ज्येष्ठ - उम्र अथवा व्यवहार में बड़े, आदरणीय
4. मिलाप- परस्पर मिलन
5. नंदीग्राम- अयोध्या के निकट भारत की तपस्थली

2.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

1. उत्तर: b) चित्रकूट में
2. उत्तर: a) राज्याभिषेक के लिए
3. उत्तर: a) वे वनवास का पालन करना चाहते हैं
4. उत्तर: b) अयोध्या के राजसिंहासन पर
5. उत्तर: c) भ्रातृप्रेम और त्याग

2. सही-गलत (True/False):

1. उत्तर: सही
2. उत्तर: गलत
3. उत्तर: सही
4. उत्तर: सही
5. उत्तर: सही

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्री चंद्रबली पाण्डेय, कालिदास, मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1954 ।
2. रमाशंकर तिवारी ,महाकवि कालिदास, चौखंबा विद्या भवन ,वाराणसी 1961।
3. रेवा प्रसाद द्विवेदी, कालिदास ग्रंथावली, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,1976 ।
4. आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी,कालिदास ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ,लखनऊ, 2014।
5. डॉ शोभा भरद्वाज, रघुवंशम- महाकवि कालिदास , युवराज पब्लिकेशन, आगरा, 2021

2.10 अभ्यास प्रश्न

- 1.राम तथा भारत के मिलन की मार्मिकता की समीक्षा कीजिए।
- 2.भ्राता की दृष्टि से भारत के चारित्रिक गुणों की समीक्षा कीजिए।
3. भारत के तपस्वी रूप का वर्णन कीजिए।
4. भरत के गुणों के आधार पर वर्तमान समाज में विद्यमान भातृत्व भाव पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिये ।

इकाई -3

रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 41 से 60 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 41 से 60 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

3.4 सार संक्षेप -

3.5 मुख्य शब्द

3.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

3.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.8 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

गत इकाइयों में रघुवंश के त्रयोदश सर्ग की कथा को विभिन्न भावों, संवादों के आधार पर वर्णित किया गया है। प्रस्तुत इकाई में इस सर्ग की कथा को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जायेगा। रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग में वर्णित तथ्य अयोध्या पुनर्गमन का वर्णन इस इकाई में श्लोक तथा उनके अन्वय, व्याख्या आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया जायेगा। इसी क्रम में श्लोक के माध्यम से अयोध्या आगमन पर राम तथा भरत के मिलन की सुंदर चित्रण किया गया है। श्लोक के माध्यम से राम तथा भरत के मिलन की वर्णन किया जाएगा। आगे की इकाइयों में संदर्भित तथ्यों को इसी प्रकार श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाएगा।

3.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. रघुवंश के श्लोकों की व्याख्या समझी जा सके।
2. रघुवंश के प्रमुख श्लोक के उच्चारण आदि का ज्ञान हो सके।
3. श्लोकों की व्याख्या से महाकाव्य के सैद्धांतिक पक्ष अभिज्ञान हो सके।
4. श्लोकों के सारगर्भित अध्ययन द्वारा उन में विद्यमान काव्य तत्वों का विवेचन कर सके।

3.3 रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 41 से 60 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

हविर्भुजामेधधतां चतुर्णां मध्ये ललाटन्तयंसप्तसैप्तिः ।
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चेरितेन दान्तः । । ४१ ॥

अन्वय- नाम्ना सुतीक्ष्णः न्नरितेन दान्तः असौ अपरः तपस्वी एधवतां चतुर्णां हविर्भुजां मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः (सुंन) तपति ।

शब्दार्थ - नाम्ना सुतीक्ष्ण - सुतीक्ष्ण नाम वाले। चरितेन चरित्र (जीवनचर्या) से। दान्तुः = जितेन्द्रिय। असौ यहू। अपरः दूसरा। तपस्वी = ऋषि ईन्धन्, से युक्त। चतुर्णां हविर्भुजाम = चारों अग्नियों के (चार दिशाओं में जलती हुई अग्नियों के)। मध्ये बीच में। ललाटन्तपसप्तसप्तिः मस्तक को तप्त करने वाले सूर्य से युक्त होकर। तपसि तपस्या कर रहा है। मैं इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किए हुए ये दूसरे मुनि (सुतीक्ष्ण) ईंधन वाली चार अग्नियों (चारों दिशाओं में जलने वाली अग्नियों) के मध्य में (तथा) मस्तक को तप्त कर देने वाले सूर्य से युक्त हो (पञ्चाग्नि) तप कर रहे हैं।

भावार्थ- राम सीता से कहते हैं कि सुतीक्ष्ण नामक जितेन्द्रिय तथा तपः क्लेश को सहन करने वाले यह दूसरे तपस्वी पंचाग्नि तप कर रहे हैं। चारों दिशाओं में ईन्धन से ८३ प्रदीप्त चार पवित्र अग्नियों को स्थापित कर उनके बीच में बैठ कर तथा मध्याह्नकाल में सूर्य की और अभिमुख होकर तप करते हैं।

संस्कृत टीका- नाम्नाऽभिधानेन सुतीक्ष्णः सुतीक्ष्णनामकः चरितेनाचरणेन, दान्तःजितेन्द्रियः नतु यथार्थनामा सुष्ठु तीक्ष्णः कोपनः अपितु सौम्यः स्वभावेन असौ पुरादृश्यमानः अपरस्तपस्वीद्वितीयः तापसः, एध्वताम् इन्धनवतां चतुर्णां चतुः संख्याकानाम् हींषि भुज्जन्तीति हविर्भुजः तेषाम् हविर्भुजा मग्नीनां मध्ये चतुर्दिक्षु प्रज्ज्वलिताना मग्नीनां मध्ये स्थियः इति शेषः ललाटं तपतीति ललाटन्तपः पञ्चमोऽग्निरूपः ललाटन्तपः सप्तसप्तिः सूर्यः यस्यासौ ललाटन्तपसप्तसप्तिः सन् तप्ति पञ्चाग्नितपश्चरतीति सारार्थः ।

संस्कृत सरलार्थ- रामः सीतां कथयति, सीते ! सुतीक्ष्णनामकः तपः क्लेशसहोऽयमन्यस्तपस्वी चतुर्षु दिक्षु ईन्धनप्रदीप्तान् चतुरोऽग्नीन् संस्थाप्य तन्मध्यगतः मध्याह्न सूर्याभिमुखो भूत्वा पंचाग्नितपस्तपति ।

व्याकरण- हवीधि भुज्जन्तीति हविर्भुजः तेषां हविर्भुजाम् (तत्पु०)। एध्वताम्-एधशब्द लकड़ी के लिए संस्कृत में प्रयुक्त हुआ है जैसी कि अमरकोश की उक्ति है-"काष्ठं दार्विन्धनं एधः"। ललाटन्तपसप्तसप्तिः ललाटं तपति (द्वितीया तत्पु०) मस्तक को तपाने वाला अर्थात् सूर्य। सप्त सप्तयः यस्य सः सप्तसप्तिः (बहु०) (सात घोड़ों वाले अर्थात् सूर्य)। लला टन्तपः सप्तसप्तिः यस्य सः (बहु०)। यहाँ यद्यपि अपाततः ललाटन्तपः भी सूर्यवाची और सप्तसप्तिः भी सूर्यवाची प्रतीत होता है किन्तु यथार्थतया ललाटन्तप शब्द "मस्तक को तपाने वाला" इस अन्वर्थमात्र वा बोधक है। इस प्रकार ललाटन्तप शब्द पंचम अग्नि रूप अर्थ का व्यंजक है। नाम्ना सुतीक्ष्णः - अत्र 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्, इति तृतीया। दान्तः दमु+ क्त, तपस्वी = तपस् शब्दात् विनि प्रत्यय । एध्वताम् एधाः सन्ति येषु ते तेषाम्, अत्र मादुपधायाश्चेत्यादिना मतुपो मकारस्य वकारः। ललाटन्तपः ललाटं तपतीति बिग्रहे खश् प्रत्यये मुगागमे च कृते ललाटन्तपः। तपस्यति अत्र तपस् शब्दात् व्यप्रत्ययः, तपस्येति समुदायस्य धातुत्वे, तपः परस्मैपदं चेति परस्मैपदे लटि रूपम् ।

विशेष- प्रस्तुत श्लोक में सुतीक्ष्ण मुनि के पंचाग्नितप का वर्णन किया गया है। पंचाग्नि तप में चार दिशाओं में चार अग्नियाँ जलाई जाती हैं और पाँचवीं अग्नि के रूप में सूर्य माना जाता है। "पंचमस्तपनो यथा" शिशुपाल वध का यह वाक्य प्रमाणभूत है। कवि ने ललाटन्तम शब्द में ताप रूप अग्निधर्म को सूर्य के साथ युक्त कर स्पष्टतः सूर्य की पंचम अग्नि के रूप में स्थापना की है। अन्यथा ललाटन्तप और सप्तसप्ति दोनों ही पद सूर्य अर्थ व्यंजक होने के कारण पुनरुक्ति दोषाधायक बन जायेंगे।

"नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः" में जो सुतीक्ष्ण (शीघ्र कुपित होने वाला) है वह दान्त (सौम्य) कैसे हो सकता है यह आपाततः विरोध आभासित होता है किन्तु सुतीक्ष्ण नाम होने पर भी चरित्र से सौम्य या इन्द्रियजयी थे इस प्रकार अर्थ करने पर परिहार हो जाता है अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है। जो मुनि की उत्कृष्टता में श्रीवृद्धि करता है। छन्द-उपजाति । प्रसङ्ग-देवाङ्गनायें अपने हाव भावों से सुतीक्ष्ण को तपोभ्रष्ट नहीं कर सकी कहा गया हसे अभीष् हम् (बहु विभ्रमा इसका वर्णन राम सीता से करते हैं-अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि।

नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्क सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि । । ४२ ॥

अन्वय- सहासप्रहितेक्षणानिव्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितरोड़ी जनितेन्द्रशङ्कं अमुर्कितुं अलं न (बभू बुः इति शेषः) ।

शब्दार्थ- सहासप्रहितेक्षणानि मुस्कराहट के साथ डाले गये कटाक्षों वालीपोष्ट व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि जिनमें किसी बहाने से करधनी के कुछ भाग (करि) की विलासयुक्त चेष्टायें (हावभाव)। जनितेन्द्रशङ्कम् = इन्द्र को शंकालु (भययुक्त) को (खोलकर) दिखलाया गया था। सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि देवस्त्रियों (अप्सराओं) बनाने वाले। अमुं - इन ऋषि सुतीक्ष्ण को। विकर्तुं म् = खण्डित (तपोभ्रष्ट) करने में अलं न समर्थ नहीं हो सकीं।

अनुवाद- सहसा किए गए कटाक्षों वाली किसी बहाने से करधनी के बन्दर स्थल को कुछ-कुछ दिखाने वाली. देवस्त्रियों की विलासयुक्त चेष्टायें (हावभाव)

इर को (भी) भयभीत करने वाले इन ऋषि सुतीक्ष्ण को तपोभ्रष्ट करने में समर्थ न हे सकीं।

भावार्थ- राम, भगवती सीता से कहते हैं कि इन सुतीक्ष्ण नामक तपस्वी ने अपनी तपस्या से इन्द्र को भी सशङ्कित कर दिया था, फलतः इन्द्र के द्वारा भेजी गई अप्सराओं ने, इन मुनि को तपोभ्रष्ट करने के लिये, यद्यपि सहास कटाक्षों द्वारा एवं सव्यार कटिस्थल प्रदर्शन आदि के द्वारा चेष्टायें की पर उनके ये हाव-भाव इन मुनि को तपोभ्रष्ट न कर सके।

संस्कृत टीका- हसनं हासः हासेन सहित सहासं, सहासं यथा स्थात्तथा प्रहितानि ईक्षणानि येषु तानि सहासप्रहितेक्षणानि, हास्यपूर्वकं प्रेरितलोचनानि, व्याजेन उपदेशेन अर्धसंदर्शिताः ईषत्प्रकटीकृताः मेखलाः रशनाः येषु तानि = व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि, सुराणा मङ्गनाः सुराङ्गनाः देवाङ्गनाः तासां विभ्रमा एव चेष्टितानि सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि - अप्सरोविलासचेष्टितानि, जनित इन्द्रस्य शङ्का येन तम्-जनितेन्द्रशङ्कम् = समुत्पादितेन्द्रभयम्, अमुम् = मुतीक्ष्णनामकं तपस्विनम्, विकर्तुम् - तपोभ्रष्टं कर्तुम् = न अलम् - न समाधानि बभूवुः ।

संस्कृत सरलार्थ - राम कथति, सीते । अस्य तपस्विनस्तपसा भय भीतेन देवेद्रेण प्रेरिता अप्सरसोऽपि स्वविलापमेष्टाभि रेनं तापस स्खलयितुं न समथीः बभूवु।

व्याकरण - सहासप्रहितेक्षणानि -हासेन सहितमिति सहासं (अव्ययी०) सहलं प्रहितानि ईक्षणानि येषु तानि (बहु०)। व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि-व्याजेन अर्द्ध सदर्शित मेखला येषु तानि (तत्पु० गर्भित बहु०)। ये दोनों ही शब्द विभ्रमचेष्टितानि के विशेषण हैं। 'अर्थ' शब्द आद्ये और अंशभाव के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है जैसा कि विश्वकोष में कहा गया है- "पंस्यर्थोऽर्थ समेऽशके"। यहाँ अंश (ईषत्) अर्थ में अर्थ शब्द का प्रयोग ही अभीष्ट है। विकर्तुम्-वि + कृ + तुमुन्। जनितेन्द्रशङ्कम्-जनिता इन्द्रस्य शङ्का येन तम् (बहु०)। सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि - सुराणामङ्गनाः सुराङ्गनाः (ष० तत्पु०) सुराङ्गनानां विभ्रमा एव चेष्टितानि (उपपद तत्पु०)।

विशेष- सुतीक्ष्ण मुनि की उम्र तपस्या से भयभीत इन्द्र के द्वारा प्रेषित अप्सराएँ कामोदीपक अनेक चेष्टाएँ करके एवं अपने अङ्गों को अर्द्धनग्न

दिखाकर भी सुतीक्ष्ण को तपोभृष्ट न कर सकीं। यहाँ प्रथम और द्वितीय चरण में तुकान्तता होने के कारण चन्द्रालोककार के अनुसार स्फुटानुप्रास अलंकार है। छन्द-उपजाति ।

प्रसंग - 'सुतीक्ष्ण ऋषि ने अपनी दाहिनी भुजा उठाकर नभगामी राम का स्वागत (अभिवादन) किया' इस बात का वर्णन सीता से करते हुए राम कह रहे हैं-

**एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम् ।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते । । ४३ ॥**

अन्वय- ऊर्ध्वबाहुः एषः अक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलाव सव्येतरं भुजं मे सभाजने इतः प्राध्वं प्रयुङ्क्ते ।

शब्दार्थ -ऊर्ध्वबाहुः ऊपर को उठी हुई भुजा वाले। एषः ये सुतीक्ष्ण ऋषि। अक्षमालावलयम् अक्षमाला (जपमाला) रूपी कङ्कण वाली। मृगाणां = हरिणों को। कण्डूयितारं खुजलाने वाली। कुशसूचिलावम् - कुशों के अग्रभाग को तोड़ने वाली। सव्येतरं दाहिनी। भुजम् भुजा को। मे = मेरे (राम के)। सभाजने = एवं को स्वागत में। इतः प्राध्वम् इस ओर (मेरे निमित्त)। प्रयुङ्क्ते = उठा रहे हैं।

अनुवाद-ऊपर को उठी हुई भुजा वाले ये सुतीक्ष्ण ऋषि अक्षमाला रूपी कङ्कण नसे युक्त, हरिणों को खुजली करने वाली (एवम्, कुशों को नोक (अग्रभाग) को तोड़ने मेवाली (अपनी) दाहिनी भुजा को मेरे स्वागतार्थ इस ओर उठा रहे हैं अर्थात् दाहिना हाथ शिऊपर उठाकर मेरा स्वागत कर रहे हैं।

भावार्थ - सुतीक्ष्ण ऋषि अपनी भुजायें ऊपर उठाये हुए तप कर रहे थे। वे इन्हीं हाथों से वन्य मृगों को खुजलाया करते थे, वे अपने इन्हीं हाथों से कुशों को भी तोड़ते थे, राम इस तपस्वी ऋषि को देखकर सीता से कहते हैं देवि ! यह ऋषि अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर उठाकर हमारा स्वागत कर रहे हैं।

संस्कृत टीका- ऊर्ध्व बाहुः यस्य सः ऊर्ध्वबाहुः उपरिभुजः, एषः सुतीक्ष्णो मुनिः, अक्षमाला जपमाला सा एव वलयं कङ्कणं यस्य तमक्षमालावलयम् अक्षमाल्यकङ्कणम्, मृगाणां हरिणानां कण्डूयितारं कण्डूविनोदकम्, कुशानां दर्भाणां सूचयः तीक्ष्णाग्रभागास्ताः लुनातीति तम् कुशसूचिलावं,

दर्भाग्रभागच्छेदकम् सव्यादितरं सव्येतरं दक्षिणं भुजं बाहुं मे मम रामस्य सभाजने सम्माननिमित्ते इतः इतोमुखं प्राध्व प्रकृतानुकूलबन्धं प्रयुङ्क्ते प्रकुरुते । **संस्कृत सरलार्थ-** रामः कथयति, सोते ! ऊर्ध्वबाहय पुरोवर्तमानः सुतीक्ष्ण नामको मुनिः अक्षमलाधारकं मृगाणां कण्डूयितारं कुशच्छेदक स्वकीयं दक्षिणं वाई मम सम्माननिमित्त मदभिमुखं प्रयुङ्क्ते ।

व्याकरण- अक्षमालावलयम् अक्षाणां माला (य० तत्पु०) सा एव वलयं यस्य तम् (बहु०) अक्षमाला 'जपमाला' अर्थवाची है। कण्डूयितारम्-'कण्डज्' गानविवर्षण धातु से "ण्बुलतृची" सूत्र से तृच् प्रत्यय हुआ है। जिससे कण्डूयितृ रूप बना द्वितीयणा एकवचन में कण्डूयितारं बनता है। कुश सूचिलावम्-कुशानाम् सूचयः कुशसूचयस्ताः लुनातीति कुशसूचिलावः तम् (उपपद तत्पु०) यहाँ 'लुञ्' छेदने धातु से 'कर्मण्यण' सूत्र ऐ अण् प्रत्यय हुआ है। ऊर्ध्वबाहुः - ऊर्ध्व बाहुः यस्य सः बहु०) सव्येतरम् - सव्यादितरम् (पञ्चमी तत्पु०) सभाजने सभाज ल्युट् (अन्) सप्त० एकवचन। प्राध्वम्-यह एक अव्यय शब्द है जो अनुकूलार्थवाची है- "आनुकूलार्थकं प्राध्वम्" इत्यमरः । इतः इदम् शब्द से तसि प्रत्यय।

विशेष- यहाँ सुतीक्ष्ण मुनि को अनेक विशेषताओं का एकत्र संक्षेपेण कर। है जैसे-अक्षमालावलय से जप तप की प्रधानता, मृगों के कण्डूयन से प्राणियों में दयाभाव, कुशों या कुशाग्र को काटने से कार्यक्षमता तथा दक्षिण भुजा को उठाकर राम का स्वागत करने में लोक व्यवहार पटुता आदि गुणों का दर्शन होता है। अक्षमालावलय एवं कुशसूचि में रूपकालंकार है। छन्द-उपजाति ।

प्रसंग- सुतीक्ष्ण ऋषि राम द्वारा किये गये प्रणाम को शिर हिलाकर बरीकार करते हैं इसी भाव का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

वाचंयमत्वात्प्रणतिं मनैष कम्पेन किञ्चित्प्रतिगृहा मूर्जः ।

दृष्टि विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्रार्चिषि सन्निधत्ते । । ४४ ।।

अन्वय- एष वाचंयमत्वात् मन प्रणतिं किञ्चित् मूर्ध्नः कम्पेन प्रतिगृह्य विमानव्यव धानमुक्तां दृष्टि पुनः सहस्राऽर्चिषि सन्निधत्ते ।

शब्दार्थ- एषः यह सुतीक्ष्ण मुनि। वाचंयमत्वात् मौन व्रत धारण करने के कारण। मम राम के। प्रणतिभू प्रणाम को। किञ्चित् कुछ। मूनः शिर के। कम्पेन - हिलाने से। प्रतिगृह्य स्वीकार कर। विमानव्यवधानमुक्तां - पुष्पक विमान के मध्य में आ जाने से उत्पन्न व्यवधान से मुक्त हुई। दृष्टिम् दृष्टि को। पुनः फिर से। सहस्रार्चिषि = सूर्य में। सन्निधत्ते लगा रहे हैं।

अनुवाद- यह सुतीक्ष्ण मुनि मौन व्रत धारण करने के कारण मेरे (राम के) प्रणाम को कुछ सिर हिलाने से स्वीकार कर पुष्पक विमान जन्य व्यवधान से मुक्त हुई दृष्टि को फिर से सूर्य में लगा रहे हैं।

भावार्थ- राम कहते हैं कि वैदेहि। यह सुतीक्ष्ण नामक मुनि, मौन व्रत धारण कर तप करते हैं, अतएव मेरे द्वारा किये गये प्रणाम को, कुछ सिर हिलाकर कर तप करते हैं, ८७अतएव मेरे द्वारा किये गये प्रणाम को कुछ सिर हिलाकर स्वीकार करके, विमान के बीच में आ जाने के कारण उत्पन्न हये व्यवधान से मुक्त हुई अपनी दृष्टि को पुनः सूर्य में लगा रहे हैं।

संस्कृत टीका- एष, सुतीक्ष्णो मुनिः वाचंयमत्वात् = मौनव्रतधारणात्, मम रामस्य पति प्रणामं किञ्चित् ईषत् मूर्ध्नः शिरसः कम्पेन धूननेन प्रतिगृह्य स्वीकृत्य विमानेन पुष्पकविमानेन व्यवधानमन्तरायः तस्मात् मुक्तामन्तराय रहितां बाधारहितामित्यर्थः दृष्टिं नेत्रं पुनः भूयः सहस्रार्चिषि सर्वे सन्निधत्ते सम्यक् प्रवर्तयति ।

संस्कृत सरलार्थ- सुतीक्ष्णनामकं मुनि निदिशन् रामः सीतां कचयति, वैदेहि । धिरयं मौन मवलम्ब्य तपस्वपति, अत एव मत्कृतप्रणामं किञ्चित् शिरः कम्पेनेव स्वांकृत्य, विमानागमनसंजातव्यवधानमुक्ता स्वकीयां दृष्टिम् पुनरपि भगवति सूर्ये प्रवर्तयति ।

व्याकरण- वाचंयमत्वात्-वाच यच्छतीति वाचंयमः। वाच् उपपद यमु उपरमे धातु से "वाचियमो व्रते" सूत्र से खच् प्रत्यय हुआ एवं मुम् का निपात होकर वाचंयमः बना अभाव अर्थ में त्व प्रत्यय (तस्भावास्त्वतली सत्र से) पञ्च० एकवचन का रूप है। दानप्रणतिम्-प्र नम् क्तिन् । प्रतिगृहा- प्रति ग्रह क्त्वा ल्यप् । विमानव्यवधानमुक्ताम् विमानेन व्यवधानं (तू० तत्पु०) तस्मात् मुक्ता ताम् (प० तत्पु) । सहस्रार्चिषि-सहस्रम् अर्चीषि यस्य स तस्मिन् (बहु०) सन्निधत्ते सम्+ निधा लुट (आत्मनेपदी) त।

विशेष- सुतीक्ष्ण ऋषि निरन्तर सूर्य में दृष्टि स्थिर कर तपश्चरण करते थे। राम के पुष्पक विमान के आकाश में आ जाने से उनके दृष्टिमार्ग में व्यवधान हो गया था किन्तु उस विमान के आगे चले जाने पर पुनः दृष्टि के सूर्य मार्ग में विघ्नरहित हो जाने से वे फिर से उस सूर्य में अपनी दृष्टि को स्थिर कर तपस्या करने लगे, यह भाव यहाँ प्रतिपाद्य है।

छन्द-उपजाति।

प्रसंग- राम सीता से शरभङ्ग ऋषि के आगे आने वाले तपोवन के सम्बन्ध में बतलाते हुए कहते हैं-

अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः ।

चिराय सन्तर्प्य समिद्धिरग्नि यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत् । । ४५ ।।

अन्वय- शरण्यं पावन अदः तपोवनं आहिताग्नेः शरभङ्गनाम्नः (अस्ति) यः चिराय समिद्धिः अग्नि सन्तर्प्य मन्त्रपूतां तनुम् अपि अहौषीत् ।

शब्दार्थ- शरणं शरण देने वाला। पावनं पवित्र। अदः यह। तपोवनम् तपोवन। आहिताग्नेः अग्निहोत्र करने वाले। शरभङ्गनाम्नः = शरभङ्गनामक ऋषि का (अस्ति = है)। यः = जिन शरभङ्ग ऋषि ने। चिराय बहुत काल तक। समिद्धिः * समिधाओं (लकड़ियों) से। अग्निम् अग्निहोत्र की आग को। सन्तर्प्यं सन्तुष्ट कर। मन्त्रपूताम् - मन्त्रों से पवित्र हुए अपने। तनुम् अपि शरीर को भी। अहौषीत् हवन कर दिया था।

प्रसंग- उन्मत्त सांड के समान चित्रकूट का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं-

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नान्बुदवप्रपङ्कः ।

बध्नाति से बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद मानिव चित्रकूटः ।।४७।।

अन्वय- बन्धुरगात्रि धारास्वनोद्गारिदरीमुखः शृङ्गाग्रलग्नान्बुदवप्रपङ्कः असी चित्रकूटः दृप्तः ककुद्याम् इव में चक्षुः बध्नाति ।

शब्दार्थ- बन्धुरगात्रि ! हे नतोन्नत अङ्गावयवों वाली सीते ! धारास्वनोद्गारि-दरीमुखः झरनों की (कलकल) ध्वनियों में मुखरित गुफाओं के अग्रभाग वाला। पक्ष में-निरन्तर गुफा से समान मुख से शब्द करने वाला। शृङ्गाग्रलग्नान्बुदवप्रपङ्कः -शिखरों के अग्रभाग में मेघरूपी प्रवक्रीडा जन्य कीचड़ से युक्त, पक्ष में सींगों के अग्रभाग में आसक्त मेघसदृश कीचड़ वाला। आसौ यह। चित्रकूटः चित्रकूट पर्वत । दृप्तः उन्मत्त । कुकुद्यान् साँड़। इव समान। मे राम के। चक्षुः नेत्र को। बध्नाति आकृष्ट कर रहा है।

अनुवाद- हे नतोन्नत अङ्गों वाली सीते! निर्झर धाराओं की (कलकल) ध्वनियों से मुखरित गुफा रूपी मुख वाला और भूमि के खोदने से बैल के सींग पर लग जाने वाली कीचड़ के समान, अपने शिखर पर लगे हुए बादल से युक्त यह चित्रकूट पर्वत, निरन्तर गुफा के समान मुख से डकारता हुआ, सींगों के अग्रभाग में लगी मेघसदृश कीचड़ से युक्त उन्मत्त साँड़ के समान मुझ राम की दृष्टि को (अपनी ओर) आकृष्ट कर रहा है।

भावार्थ- प्रस्तुत श्लोक में चित्रकूट उपमेय और बैल उपमान है। चित्रकूट के शिखर पर लगा हुआ बादल बैल के सींग पर लगी हुई उस कीचड़ के समान है है। जो कि उसके द्वारा भूमि को सींग से उखाड़ने में उसके सींग पर लग गई है। चित्रकूट की गुफाओं से निर्झर धाराओं के शब्द निकलते हैं और यह बैल भी गुफा सदृश अपने मुख से निरन्तर डंकारता रहता है, अतः यहाँ चित्रकूट की उन्मत्त साँड़ से उपमा दी गई है। राम कहते हैं कि यह चित्रकूट मदीय उन्मत्त साँड़ के समान मेरी दृष्टि को आकृष्ट कर रहा है।

संस्कृत टीका - धारास्वनोद्गारिदरीमुखः- निर्झरधाराशब्दोद्गारिकन्दरमुखः नैरन्तर्यशब्दोद्गारिकन्दरवदनो वा, शृङ्गाग्रलग्नान्बुदवप्रपङ्कः- पर्वतशिखराग्रसंसक्तमेघवप्रक्रीडासंलग्नपङ्कः विषाणाग्रसंसक्तमेघवप्रक्रीडासंलग्नपङ्क को वा, असौ चित्रकूटः चित्रकूट नामकः पर्वत **विशेषः** है बन्धुरागात्रिनतोन्नताङ्गि सीते दृप्तः दर्पान्वितः कुकुद्यान् इव वृषभ इव मे-मम, चक्षुः लोचनम्, वध्नाति, स्वाभिमुख माकर्षति।

संस्कृत सरलार्थ - रामः सीतां कथयति नतोन्नताङ्गि मनोहरगात्रि सीते ! चित्रकूटोऽयं, यत्र शिराग्रे वप्रपङ्क इव मेघः संसक्तोऽस्ति, यत्र च दर्यः

निर्झरधाराशब्देन प्रतिध्वनिताः वर्तन्ते, दर्पान्वितः वृषभ इव मन लोचने स्वाभिमुख माकर्षति।

व्याकरण - बन्धुरगात्रि ! बन्धुराणि गात्राणि यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, बन्धुर शब्द आनुपातिक औचित्यानुसार उन्नताऽऽनत अर्थवाची है जैसा कि अमर कोश में लिखा है- "बन्धुरं तन्नताऽऽनतम्" । धारास्वनोद्गारिदरीमुखः- धाराणं स्वनः तं धारास्वनमुद्गिरतीति धारास्वनोद्गारि दरी एव मुखं दरीमुखं अथवा दरीणां मुखं अग्रभाग एवं मुखं धारास्वनोद्गारिदरीमुखं यस्य सः (बहु०) चित्रकूट पक्ष में। ककुद्यान् पक्ष में धारया नैरन्तर्येण स्वनमुद्गिरतीति धारास्वनोद्गारि (तृ० तत्पु०) दरी इव मुखं यस्य सः दरी मुखः (बहु०) धारास्वनोद्गारिदरीमुखं यस्य सः (बहु०)। उद्गारि-उद् गृ (निगरणार्थक) + णिनि । शृङ्गाग्रलग्नम्बुदवप्रपङ्कः शृङ्गस्य अग्रम् शृङ्गाग्रम् (ष० तत्पु०) तस्मिन् लग्नः (सप्त० तत्पु०) अम्बु ददातीति अम्बुदः (उपपद समास) शृङ्गाग्रलग्नः अम्बुद एव वप्रपङ्को यस्य सः (बहु०) (चित्रकूट पक्ष में)। अम्बुदः अम्बु दा+कः। ककुद्यान् पक्ष में - शृङ्गस्याग्ने लग्नः अम्बुद इव वप्रस्य पङ्को यस्य सः (तत्पु० गर्भित बहु०) समास) चित्रकूट-चित्राणि कूटानि यस्य यः (बहु०) ककुद्धान् ककुद् + मतुप्। ककुद् शब्द बैल या साँड़ के स्कन्ध पर विद्यमान ठिठौरी को कहते हैं, वह साँड़ के स्कन्ध पर विशाल रूप में होने के कारण उसे ककुद्धान् कहा जाता है।

विशेष - कवि ने यहाँ चित्रकूट को साँड़ के सामन वर्णित किया है। वप्र शब्द हाथियों और साँड़ों की उत्खात क्रीड़ा अर्थ में प्रसिद्ध है। स्वयं कालिदास ने मेघ को हाथी के समान बताते हुए लिखा है-

"वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श" (पूर्वमेघ)

इस श्लोक में चित्रकूट के पक्ष में रूपक एवं ककुद्धान् के पक्ष में उपमालंकार है। इस प्रकार दोनों (उपमा व रूपक) अलङ्कारों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है।

छन्द-इन्द्रवज्रा ।

प्रसंग- चित्रकूट की मन्दाकिनी नदी का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं-

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी ।

मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः ॥४८॥

अन्वय - प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा विदूरान्तरभावतन्वी एषा मन्दाकिनी सरित् नगोपकण्ठे भूमेः कण्ठगता मुक्तावली इव भाति।

शब्दार्थ - प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा निर्मल और मन्द प्रवाह वाली। विदूरान्तरभावतन्वी = दूर होने के कारण कारण पतली सी दीखने वाली। एषा = यह। मन्दाकिनी = मन्दाकिनी नामिका। सरित् नदी। नगोपकण्ठे पर्वत के समीप (निचले भाग में) बहने वाली। भूमेः पृथ्वी के। कण्ठगता गले में विद्यमान। मुक्तावली इव = मौक्तिक माला के समान। भाँति सुशोभित हो रही है।

अनुवाद- निर्मल और मन्द प्रवाह वाली, दूर होने के कारण पतली सी दिखाई पड़ने वाली यह मन्दाकिनी पर्वत के समीप (निचले भाग में बहने के कारण) पृथ्वी के गले में मोतियों की माला-सी शोभित हो रही है।

भावार्थ- चित्रकूट पर प्रवहमाना मन्दाकिनी नदी की ओर संकेत करते हुए राम सीता से कहते हैं, देवि ! यह सरित जिसका प्रवाह निर्मल जल पूर्ण एवं मन्दगतिशील है, तथा जो दूर होने के कारण एक पतली रेखा-सी जान पड़ती है, चित्रकूट पर्वत के समीप पृथिवी नायिका के गले में पड़ी मौक्तिक माला के समान प्रतीत होती है।

संस्कृत टीका- प्रसन्नः स्तिमितश्च प्रवाहो यस्याः सा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा निर्मलमन्दप्रवाहशीला, विदूरं च तदन्तरं विदूरान्तरं तस्य भावः तस्मात् तन्वीति विदूरान्तरभावतन्वी विप्रकृष्टयवकाशभावात्सूक्ष्मा, एषा पुरो दृश्यमानेयं मन्दाकिनी एतन्नामधेया सरित्-नदी मन्दाकिनीनदीत्यर्थः नगस्य चित्रकूटपर्वस्योपकण्ठेऽधोभागे निम्नभागे वा समीपे वा सत्वात् भूमेः पृथिव्या कण्ठे गता कण्ठगता, ग्रीवास्थिता, मुक्तावली मौक्तिकस्रक् इव भाति सुशोभते।

संस्कृत सरलार्थ- चित्रकूटगतां मन्दाकिनीं नदीं निर्दिशन् रामः सीतां कथयति, देवि ! मन्दाकिनीयं यस्याः प्रवाहः निर्मलः मन्दगतिशीलश्चास्ति तथा च विप्रकृष्टं टावकाशवाशाद् या सूक्ष्मजलरेखेव प्रतिभाति, नगोपकण्ठगता सती भूमेः मौक्तिकस्रगिवाभाति।

व्याकरण- प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा- प्रसन्नः स्तिमितश्च प्रवाहो यस्याः सा (बहु०)। प्रसन्नः- प + सद् + क्त। विदूरान्तर भावतन्वी विशेषेण दूरं विदूरं,

विदूरं च तदन्तरमिति विदूरान्तरं (कर्म०) विदूरान्तरस्य भावः तस्मात् (ष० तत्पु०) विदूरान्तरभावात् तन्वी इति (पञ्च० तत्पु०)। नगोपकण्ठै-न गच्छतीति नगः (नञ् समास) नगस्य उपकण्ठे इति नगोपकण्ठे। कण्ठं गता इति (द्विती० तत्पु०) कण्ठगता।

विशेष- चित्रकूट में मन्दाकिनी नामक नदी अत्यन्त पवित्र मानी गई है। चित्रकूट पर्वत के निचले भाग में बहने के कारण कवि ने इसमें पृथ्वी के कण्ठ में विद्यमान मोतियों की माला के रूप में सम्भावना की है, इसीलिए यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है, चित्रकूट में पृथ्वी के शिर और उसके निम्न भाग में कण्ठ का आरोप व्यङ्ग्य है। यहाँ उपजाति छन्द है।

प्रसंग- चित्रकूट के समीपस्थ तमालवृक्ष के पत्ते से पहले राम ने सीता का कर्णाभूषण बनाया था, इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य ।

यवाङ्करापाण्डुकपोलशोभी, मयावतंसः परिकल्पितस्ते । । ४९ ।।

अन्वय- अनुगिरं सुजात अय तमालः यस्य सुगन्धित प्रवालम् आदाय मया ते युवाङ्गु रापाण्डुकपोलशोभी अवतंसः परिकल्पितः ।

शब्दार्थ - अनुगिरम् - चित्रकूट पर्वत के समीप। सुजातः सुन्दरता के साथ उत्पन्न। अयं तमालः = यह तमाल वृक्ष (है)। यस्य जिस तमाल वृक्ष के। सुगन्धि - सुगन्धित। पल्लव कोपल को। आदाय लेकर। मया मेरे (राम के) द्वारा। ते - तुम्हारे (सीता के)। यवाङ्क रापाण्डुकपोलशोभी यव (जौ) के अंकुर के समान पीले कपोल में शोभित होने वाला। अवतंसः कर्ण का आभूषण। परिकल्पितः = बनाया गया था। **अनुवाद-** चित्रकूट पर्वत के समीप उत्पन्न यह सुन्दर तमाल वृक्ष (है) जिसके सुगन्धित पल्लव (कपोल) को लेकर मैंने तुम्हारे (सीता के) जौ के अङ्कुर के समान पीले कपोल में शोभित होने वाला कान का आभूषण बनाया था।

भावार्थ- चित्रकूट पर्वत के समीप ही उगे हुए एक सुन्दर तमाल वृक्ष की ओर संकेत करते हुए राम सीता से कहते हैं कि यह वही तमाल वृक्ष है, जिसके

सुगन्धित पल्लव को लेकर मैंने तुम्हारे यवाङ्कर (सदृश ईपत् पाण्डुवर्ण कपोल पर शोभित होने वाला कर्णभूषण बनाया था)

संस्कृत टीका- गिरेः समीपे इति अनुगिरम्, चित्रकूटपर्वतसमीपे सुजातः - शोभनजन्मसम्पन्नः, अयं पुरो दृश्यमानः तमालः तापिच्छतरुरस्ति, यस्य तमालस्य सुगन्धित शोभनगन्धसम्पन्नं प्रवालम् पल्लवम् (नवजातदलं) आदाय गृहीत्वा मया रामेण ते सीतायाः यवाङ्कराः यवधान्यविशेषप्ररोहाः तदवत् आपाण्डुः समन्तात् पीतवर्णः यः कपोलः तस्मिन् शोभते तच्छीलः यवाङ्करापाण्डुकपोलशोभी अवतंसः कर्णालंकारः परिकल्पितः रचितः।

संस्कृत सरलार्थ- रामः कथयति देवी! अयं स एव तमालवृक्षः शोभते यस्य सुगन्धिमत् पल्लव मादाय मया ते यवाङ्क रापाण्डुकपोलशोभि कर्णभूषणं पूर्वं विरचितम्।

व्याकरण- अनुगिरं- 'गिरेः समीपे' इस अर्थ में 'अव्ययं विभक्ति समीपसमृद्धि०' आदि सूत्र के द्वारा अनु के साथ अव्ययीभाव समास। सुजातः शोभनं जात जन्म यस्य सः (बहु०) सुगन्धि-शोभनो गन्धो यस्य तत (बहु०)। आवाय आङ् दा+ क्त्वा (ल्यप्)। यवाङ्क राऽपाण्डुकपोलशोभि-यवानाम् अङ्कराः यवाङ्कराः (ष० तत्पु०) आ (समन्तात्) पाण्डुः आपाण्डु (अव्ययी) आपाण्डुश्चासौ कपोलः अपा डुकपोल (कर्मधा०) यवाङ्कराः इवापाण्डु कपोलः (उपमानानि सामान्य वचनैः) सूत्र से कर्मधारय समास, आपाण्डुकपोले शोभते तच्छीलः। कपोलशोभी में "ताच्छील्ये णिनिः सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ है। उपपद समास। परिकल्पितः- परि + कलुप् + क्तः ।

विशेष- वनवास के दिनों में राम सीता का प्राकृतिक लता पुष्प आदि में श्रृंगार किया करते थे, इससे कालिदास के काल में स्त्रियों की श्रृंगार प्रियता का ज्ञान प्राप्त होता है। अथवा जंगल में रहने के कारण अत्यन्त क्षीणकाय होने से मुख पीतवर्ण था। यह भी आभासित होता है। यहाँ उपमालंकार है। एवं उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

प्रसंग- अत्रिमुनि के तपोवन की विशेषता बतलाते हुए राम सीता से कहते हैं-

अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वमपुष्पलिङ्गात्फलबन्धिवृक्षम् ।
वनं तपः साधनमेतदप्रेराविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् । ॥५०॥

अन्वय - अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम् अपुष्पलिङ्गात् फलबन्धि वृक्षम् आविष्कृतोदग्रतर-प्रभावम् अत्रेः तपसः साधनम् एतत् वनं (दृश्यते)।

शब्दार्थ - अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम् दण्डभय के बिना भी विनयशील जन्तुओं वाला। अपुष्पलिङ्गात्फलबन्धि वृक्षम् पुष्परूप चिह्न (निमित्त) के बिना भी, फल देने वाले वृक्षों के सम्पन्न। आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् उन्नततर प्रभाव को प्रकट करने वाला। अनेः अत्रि नामक ऋषि के। तपसः तपस्या का। साधनम् साधन भूत। एतत् वनम् यह वन दिखाई पड़ता है।

अनुवाद- दण्ड का भय न होने पर भी विनयपूर्ण हिंसक प्राणियों वाला, पुष्परूपी कारण (चिह्न) के बिना भी फल देने वाले वृक्षों से सम्पन्न (अतएव) उन्नततर प्रभाव को प्रकट करने वाला, अत्रि ऋषि की तपस्या का साधनभूत यह वन (है या दिखाई पड़ता है)।

भावार्थ- राम कहते हैं, सीते। यह अत्रि मुनि की तपस्या का साधनभूत वन है, यहाँ वन्य जीव बिना किसी दण्ड के भय के ही विनम्रता पूर्वक रहते हैं, और पुष्प रूप कारण के अभाव में भी यहाँ के वृक्ष फलते हैं, अत एव इस वन का बहुत बड़ा प्रभाव माना जाता है।

संस्कृत टीका- न ग्रिहात् त्रासो सो येषान्ते अनिग्रहत्रासाः दण्डभयरहिताः, अपि विनोताः साध्वाचाराः सत्त्वाः हिंसकजन्तवो यस्मिंस्तत् (वनमित्यस्य विशेषणम्) अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम् पुष्पमेव लिङ्गं पुष्पलिङ्गं न पुष्पलिङ्गम् तस्मात् अपुष्पलिङ्गात्-पुष्परूपनिमित्ताभावत् फलवन्धिनः फलदायिनः वृक्षाः यस्मिन् तत् फलवन्धिवृक्षम् सफलवन्धिवृक्षम् सफलवृक्षान्वितम् अतएव आविष्कृतः प्रकटीकृतः उदग्रतरः प्रभावः उन्नततरं सामर्थ्यं यस्मिंस्तत् आविष्कृतोदग्रतर प्रभावम् अत्रेः अत्रिनामकस्य ऋषैस्तपसस्तपश्चरणस्य साधनं सहायकं तपः साधनम् कारणभूतमित्यर्थः एतत् वनमरण्यमस्तीति ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः कथयति देवि ! एतत्पुरोदृश्यमानम् अत्रि मुनेस्तपः साधनं वन मस्ति, वनस्यास्य महान् प्रभावो वर्तते, यतोऽवत्या वन्यजन्तवो दण्डत्रासरहिता अपि परस्परं विनयेन वर्तन्ते, नत्र दुर्बलोजन्तु विहन्यते

वलशालिभिर्जन्तुभिः। एव मेवात्र पुष्परूपनिमित्तकारणाभावेऽपि वृक्षाः समये समये फलन्ति।

व्याकरण - अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम् त्रसनं त्रासः, निग्रहात् त्रासो निग्रहत्रासः (पञ्चम तत्पु०) न निग्रहत्रासो येषान्ते अनिग्रहत्रासाः (नञ् बहु० समास) अनिग्रहत्रासाश्च अपि विनीताश्च सत्त्वाः यस्मिस्तत् (बहु०) त्रास्त्रस्+ धञ् । अपुष्पलिङ्गात्फलबन्धिवृक्षम् पुष्पमेव लिङ्ग पुष्पलिङ्ग न पुष्पलिङ्गमित्यपुष्पलिङ्गम् (नज० समास) फलानि बध्नन्तीति फलबन्धिनः (उपपद समास) अपुष्पलिङ्गात्फलबन्धिनो वृक्षाः यस्मिस्तत् (बहु०)। आविष्कृतोदग्रतर प्रभावम् अतिशयेनोदग्रः उदग्रतरः, आविष्कृत उदग्रतरः प्रभावो यस्मिस्तत् (बहु०)। आविष्कृत आविः कृ+ क्त। यहाँ आविः के विसर्गो का "इदुपधस्य वाऽऽ प्रत्ययस्य" सूत्र से षकार हो गया है। तपः साधनम् - तपसः साधनम् (ष० तत्पु०) साधनम् - साधु ल्युट् ल्युट् के यु को युवोरनाकौ।" से अन होकर साधन शब्द बना है।

विशेष- अत्रि ऋषि के तपोवन में समस्त हिंसक पशु विनीत थे और वृक्ष निरन्तर पुष्पादि के बिना भी फल देते थे। यह सब ऋषि की उग्रतर तपस्या का प्रभाव था। अत्रि ऋषि की गणना सप्तर्षियों में की गई है- काश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।

जमदग्निर्वशिष्ठश्च साध्वी चैवाप्यरुन्धती ॥

कुछ विद्वानों ने सप्तर्षियों का दूसरे रूप में उल्लेख किया है-

"मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः ऋतुरगिराः।

वसिष्ठश्च महाभागः सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥९५॥

कुछ भी हो दोनों प्रकार की गणना में अत्रि ऋषि की गणना सप्तर्षियों में द्वितीय स्थान पर की गई है इसलिए उनकी तपस्या और प्रभाव में सब कुछ अर्थात् असम्भव को भी सम्भव कर देने की सामर्थ्य थी। चन्द्रमा भी अत्रि ऋषि के नेत्र से उत्पन्न हुआ था इसलिए उसे अत्रेर्नयनसमुत्त्वज्योतिः कहा गया है।

इस श्लोक में दण्डभय रूपी कारण के बिना भी विनीत्व रूप कार्य एवं पुष्प रूप कारण के बिना फलोत्पत्ति रूप कार्य के होने कारण विभावना अलंकार है। विभावना का लक्षण- "विभावना विना होतोः कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते" (का० प्रकाश)।

"विभावना विनाऽपि स्यात्कारणं कार्यं जन्म चेत्।

पश्य लाक्षारसासिक्तं रक्तं तच्चरणद्वयम् ॥ (चन्द्रालोक ५/७७)

इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

प्रसंग- 'अत्रि ऋषि के आश्रम में तपस्वियों के स्नानार्थ सती अनुसूया ने गङ्गा को प्रवाहित किया था' इसका वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं-

अत्राभिषेकाय तपोधनानां, सप्तर्षि हस्तोद्धृत हेमपद्माम्।

प्रवर्तयामास किलानुसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम् । । ५१ ॥

अन्वय- अत्र अनुसूया सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम् त्र्यम्बकमौलिमालां त्रिस्रोतसं तपोधनानाम् अभिषेकाय प्रवर्तयामास किल।

शब्दार्थ- अत्र इस वन में। अनुसूया अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया ने। सप्तर्षिहस्तोद्धृतपद्माम् = सप्तर्षियों के हाथों से तोड़े गये स्वर्णकमलों वाली। त्र्यम्बकमौलिमालाम् - शिव जी के सिर की माला के समान। त्रिस्रोतसम् गंगा को। तपोधनानाम् - तपस्वियों के। अभिषेकाय स्नान के लिए। प्रवर्तयामास प्रवाहित कराया। किल निश्चयार्थक अव्यय।

अनुवाद- इस तपोवन में अनुसूया ने सप्तर्षियों के हाथों से तोड़े गये स्वर्णकमलों वाली, भगवान् शङ्कर के शिर की माला (रूप) गंगा को तपस्वियों के स्नानार्थ प्रवाहित कराया था, ऐसी प्रसिद्धि है।

भावार्थ- राम कहते हैं देवि सीते। यह वहीं अत्रि मुनि का तपोवन है जहाँ पर सती अनुसूया ने तपस्वियों के नित्य स्नान के लिये, भगवान् शङ्कर के शिर को पुष्प मालाभूत गंगा को प्रवाहित कराया था, इसी गंगा के सुनहले कमल

पुष्पों को सप्तर्षि अपने हाथों से चयन किया करते थे। रामायण कथा के अनुसार एक बार अनावृष्टि के समय अत्रि पत्नी सती अनुसूया अपने तपोबल से मन्दाकिनी को इस अत्रि तपोवन में ले आई थीं। सप्तर्षिकरकलिस्वर्णकमलाम्, व्यम्बकस्य भगवतः शङ्करस्य मौलेः शिरसः मालाम् माल्याम्

संस्कृत टीका- अत्राश्रमे अनुसूया अत्रिपत्नी, सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपग्राम् त्र्यम्बकमौलिमालाम्। त्रीणि स्रोतांसि यस्थाः या ताम् त्रिस्रोतसं गहू गाम्, तप एवं धर्म येषान्ते तपोधनास्तेषां तपोधनानाम्, तपस्विनाम् अभिषेकाय स्नानाय प्रवर्तयामास प्रवाहयामास किल इति ऐतिह्ये।

संस्कृत सरलार्थ- रामः कथयति देवि सीते ! अस्मिन्नेव अत्रितपोवने, एकदा अनावृष्टिकाले, अत्रत्यानाम् तपस्विनां नित्यस्नानाय, अत्रिपत्नी सती अनुसूया, शंकरशिरोमौलिमालां गङ्गा मानीय प्रवर्तयामास । सप्तर्षयोऽस्याः स्वर्णकमलानि स्वहस्तैश्चिन्वन्ति स्म।

व्याकरण- सप्तर्षिहस्तोद्धृत हेमपद्मम् = सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः ("दिक संख्ये सज्ञायाम्" सूत्र से समास, सप्तर्षीणांहस्ताः (ष० तत्पु०) सप्तर्षि हस्ताः तैः उद्धृतानि हेमनः पद्मानि यस्याः सा ताम् (बहु०) । व्यम्बकमौलिमालाम् = त्रीणि अम्बकानि यस्य सः त्र्यम्बकः (बहु०) श्यम्बकस्य मौलिः (ष० तत्पु०) तस्य मालां (ष० तत्पु०)। त्रिस्रोतमस = त्रीणि स्रोतांसि यस्याः सा ताम् (बहु०)। तपोधनानाम् = तप एव धनं येषान्तेषां (बहु०)। अभिषेकाय अभि सिञ्च धञ् (चतु० एक० वचन)। प्रवर्तयामास = प्र + वृत् + णिच् + लिट्।

विशेष- वाल्मीकि रामायण के अनुसार दस वर्षों तक निरन्तर अनावृष्टि होने के कारण ऋषियों मुनियों को स्नानादि का महान् सङ्कट आ गया था। तब अत्रि पत्नी अनुसूया ने तपस्वियों के स्नानादि के लिए अपने आश्रम के समीप से गङ्गा को प्रवाहित होने के लिए विवश किया था अर्थात् स्वयं अनुसूया ने वहाँ से गङ्गा को बहाया था।

"यहाँ त्र्यम्बकमौलिमालाम् में उपमा अलंकार व्यङ्ग्य है।

छन्द-उपजाति है।

प्रसंग- अत्रि के आश्रमस्य वृक्ष भी समाधिस्य योगियों की भाँति प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार राम सीता से कहते हैं-

वीरासनै ध्यानजुषामृषीणाममी समध्यासितवेदिमध्याः ।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ॥ ५२ ॥

अन्वय- वीरासनैः ध्यानजुषां ऋषिणां समध्यामितवेदिमध्याः अमी शाखिनः
अपि निवातनिष्कम्पतया योगाधिरूढा इव विभान्ति ।

शब्दार्थ - वीरासनैः = वीरासन नामक विशेष प्रकार के आसनों से।
ध्यानजुषाम् ध्यान लगाने वाले (समाधिस्य) । ऋषिणाम् ऋषियों के ।
समध्यासितवेदिमध्याः - वेदि (समाधिस्थल) के मध्य में स्थित। अमी ये।
शाखिनः = वृक्ष । अपि भी। निवातनिष्कम्पतया = वायु रहित काल में कम्पन
रहित होने से। योगाधिरूढा इव योगाभ्यास निरत से। विभान्ति - प्रतीत हो रहे
हैं।

अनुवाद- वीरासन से बैठे हुए ध्यान लगाने वाले (समाधिस्य) ऋषियों की
वेदी के (साधना स्थल के) मध्य में स्थित ये वृक्ष भी वायुरहित काल में कम्पन
रहित होने के कारण योगाभ्यास करते हुए से प्रतीत हो रहे हैं।

भावार्थ- राम कहते हैं सीते । इस अत्रितपोवन में भी वीरासनस्थित
ध्यानमग्न -शषिजनों की समाधिस्थली के मध्य स्थित अर्थात् आसनवेदी के
चारों ओर खड़े हुये यहाँ के वृक्ष वायु विहीन काल में कम्पन रहित होने के
कारण, ऋषियों जैसे ही योगाभ्यास निरत प्रतीत होते हैं।

संस्कृत टीका- वीराणामा सनानि वीरासनानि तैः वीरासनैः,
ध्यानासनविशेषैः ध्यानजुषां साधनारतानामृषीणां तपस्विनां समध्यासितं वेदिमध्यं
यैस्ते समध्यासितवेदिमध्याः साधनास्थल (वेदी) मध्ये स्थिताः अभी इमे
शाखिनः वृक्षाः अपि निवाते वायुरहिते काले निष्कम्पतया कम्परहितत्वेन
योगमधिरूढा इव ध्यानभाज इव विभान्ति विशेषेण शोभन्ते ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः कथयति, देवि ! अत्रापि तपोवने
ध्यानमग्नमुनिजनसमा-धिस्थली परितो-विद्यमानाः पादपाः निवातकाले
कम्पाभावात् समाधिस्थितता योगाभ्यासरता योगिन इव विभान्ति ।

व्याकरण- वीराणामासनानि तैः (ष० तत्पु०)। ध्यानं जुषन्ति थे ते
ध्यानजुषस्तेषां ध्यानजुषाम् (उपपद समास) ऋषि शब्द अमरकोष के अनुसार

सत्यवक्ता अर्थवाची है- "ऋषयः सत्यवचसः" इत्यमरः। यहाँ "ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः" इसके अनुसार मुनि अर्थवाची ऋषि शब्द है। समध्यासितवेदिमध्याः वेदेः मध्ये वेदिमध्यम् (ष० तत्पु०) समध्यासितं वेदिमध्यं यैस्ते (बहु०)। निवातनिष्कम्पतया निर्गतः कम्पः येभ्यस्ते (बहु०) निष्कम्पाः तेषां भावो निष्कम्पता, निवाते निष्कम्पता (तृ० तलु०) तथा । योगाधिरूढा :- योगमधिरूढाः (द्वि० तत्पु०)।

विशेष- योगशास्त्र में योगसन के ८४ भेद (प्रकार) बताए गए हैं उनमें वीरासन भी एक है जिसका लक्षण वशिष्ठ के अनुसार है-

**"एक पादम थैकस्मिन् विन्यस्योरुणि संस्थितम्।
इतरस्मिस्तथा चान्यं वीरासन मुदाहृतम्॥"**

अर्थात् एक पैर को दूसरे पैर की उरु (जड़ता) पर और दूसरे पैर को पहले पैर की उरु पर रख कर सीधे बैठना वीरासन कहलाता है। इसे पर्यङ्क बन्ध भी कहते हैं। हेमाद्रि के अनुसार दिन भर खड़े रहना और रात को बैठे रहना वीरासन कहलाता है-

**"उत्थितस्तु दिवा तिष्ठे दुपविष्टस्तथा निशि ।
एतद्वीरासनं प्रोक्तं महापातकनामशनम् ॥"**

पाताञ्जलयोगदर्शन में योग को चित्तावृत्तिनिरोधात्मक बतलाया गया है- "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"। यहाँ निष्कम्पवृक्षों में ध्यानस्थ योगियों की सम्भावना की गई है अतः उत्प्रेक्ष अलंकार है। छन्द-उपजाति है।

प्रसंग- प्रयागस्थित वटवृक्ष के विषय में सीता को स्मरण कराते हुए राम कहते

**त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।
राशिर्मणीनामिव गारुड़ानां सपद्मरागः फलितो विभाति । । ५३॥**

अन्वय- (हे सीते) त्वया पुरस्ताद्य उपयाचितः श्याम इति प्रतीतः सः अयं वरः फलितः (सन्) सपद्मरागः गारुडानां मणीनां राशिः इव विभाति।

शब्दार्थ- त्वया - तुम्हारे (सीते के) द्वारा। पुरस्ताद पहले (वन जाते समय) । यः = जो। उपयाचितः प्रार्थना किया गया था (जिससे सीता ने प्रार्थना पूर्वक वर याचना की थी)। श्याम इति श्याम नाम से। प्रतीतः प्रसिद्ध था। सः अयम् वही यह। बटः वरगद का वृक्ष। फलितः फलों से सम्पन्न होकर। सपद्मरागः पद्मराग (लाल रंग की) मणियों से युक्त। गारुडानां मणीनाम् हरे वर्ण की मणियों की। राशिः इव = समूह के समान। विभाति सुशोभित हो रहा है।

अनुवाद- (हे सीते) तुम्हारे द्वारा पहले (वन जाते समय) जिसकी प्रार्थना की गई थी, 'श्याम' नाम से प्रसिद्ध यह वही वट वृक्ष (इस समय) फलों से सम्पन्न होकर पद्मराग मणियों से युक्त (हरे रंग की) मरकत मणियों के ढेर के समान सुशोभित हो रहा है।

भावार्थ- राम सीता को याद दिलाते हुए कहते हैं, देवि! यह वही श्याम नाम से प्रसिद्ध वट वृक्ष है, जिससे तुमने वन जाते समय प्रार्थना की थी अब यह फलित होकर पद्मराग सहित मरकत मणियों की राशि के समान शोभा पा रहा है।

संस्कृत टीका- (हे सीते !) त्वया भवत्या पुरस्तात् पूर्व वनगमनकाले यो वटः उपयाचितः प्रार्थितः 'श्याम' इतिनाम्ना प्रथितः प्रसिद्ध सोऽयं वटः न्यग्रोधपादपः (संप्रति) फलितः सञ्जातफलः सन् सपद्मरागः पद्मराग मणिसहितः गारुडानां हरितवर्णानां मरकतमणीनां राशिः समूह इव विशेषेण भाति भोभते इत्यर्थः।

संस्कृत सरलार्थ - रामः सीतां कथयति, देवि सीते! अयं स एव श्याम इति नाम्ना प्रख्यातः वटवृक्षो विद्यते यस्त्वया, मया सह वनगमनकाले स्व परिव्रतरक्षार्थं मुपयाचितः। अयमिदानीं फलितः सन् पद्मरागसहितमकरत मणराशिरिवाभाति।

व्याकरण- उपयाचितः उप याच वत। उपयाचितः शब्द प्रार्थनाऽर्थवाची मात्र न होकर सीता द्वारा की गई याचना के अर्थ को व्यक्त करता है। रामायण में-

उल्लेखानुसार सीता ने अपने पतिव्रत धर्म का निरन्तर पालन करते रहने की याचना की थी, उसी का यहाँ संकेत है। गलितः फल इतच् । सपञ्चरागः - पञ्चरागैः सहित इति सपञ्चरागः। गारुडानाम् - गरुडस्येमे गारुडास्तेषाम् - गरुड + अण् (तस्येदम् सूत्र से)। ९ ९ गारुड मणि का वर्ण हरित है जैसा कि अमरकोश में उल्लेख है- "गारुन्मतं भरकमश्यगभी हरिन्मणिः"।

विशेष- इस श्लोक में कवि ने वट वृक्ष को गारुड मणियों के बेर से उपमित किया है वस्तुतः वट वृक्ष में जो फल आते हैं वे लाल रंग के होते हैं और पत्ते हरे रंग के। दुष्पक विमान के ऊपर से वटवृक्ष के हरे हरे पत्ते और उनके बीच में यत्र तत्र लाल रंग के फल इस प्रकार दिखलाई पड़ते थे जैसे लाल (पञ्चराग) मणियों से युक्त हरित (गारुड) मणियों का ढेर हो। क्योंकि वृक्ष का तना व शाखायें नीचे होने के कारण ऊपर से देखने वाले को दिखलाई नहीं पड़ते। अतएव यह रत्नराशि-सा प्रतीत हो रहा था। इसीलिए इस श्लोक में उपमालंकार है। कुछ लोगों ने इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार माना छन्द-उपजाति है।

प्रसंग- राम सीता से अब प्रयाग में गंगा यमुना के संगम का वर्णन हम श्लोकों में करते कहते हैं-

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनोलेमुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
 अन्यत्र माला सितपंकजनामिन्दीवरेरुत्खचितान्तरेव ॥५४॥
 क्वचित्खागानाम प्रियमनासनाम कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः।
 अन्यत्रकालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भु व्शचंदन कल्पितेव॥५५॥
 क्वचित्प्रभाचान्द्रमसी तमोभि छायाविलीनैः शवलीकृतेज।
 अन्यत्र शुभा शरदभलेखा रन्ग्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा॥ ५६ ॥

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
 पश्यानवद्याङ्गि ! विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥५७॥

अन्वय- अनवद्याङ्गि । क्वचित् प्रभालेपिभिः इन्द्रनीलैः अनुविद्धा मुक्तामयी यष्टिः इव, अन्यत्र इन्दीवरैः उत्खचिताऽन्तरा सितपङ्कजानां माला इव, क्वचित् कादम्ब संसर्गवती प्रियमानसानां खागानां पङ्क्तिः इव, अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भुवः चन्दनकल्पिता भक्तिः इव, क्वचित् छायाविलीनैः तमोभिः शबलीकृता चान्द्रमसी प्रभाव इव, अन्यत्र रन्ध्रेषु आलक्ष्यनभः प्रदेशा शुभ्रा शरदभ्रलेखा इव क्वचित् कृष्णोरगभूषणा भस्माङ्गरागा ईश्वरस्य तनुः इव यमुनातरङ्गैः भिन्नप्रवाहा गङ्गा विभाति, पश्य।

शब्दार्थ- अनवद्याङ्गि ! हे प्रशंसनीय अङ्गों वाली सीते। वक्चित् कहीं पर। प्रभालेपिभिः कान्ति का लेप करने वाली अर्थात् कान्ति को फैलाने वाली। इन्द्रनीलैः इन्द्रनील मणियों से। अनुविद्धा जड़ी हुई। मुक्तामयी श्वेत मोतियों की। यष्टिः इव लड़ के समान (हारावली के तुल्य)। अन्यन्त्र दूसरे स्थान पर। इन्द्रवरैः नील कमलों से। उत्खचिताऽन्तरा मध्य भाग में गुन्थी हुई। सितपङ्कजानां श्वेत कमलों कीः माला इव माला के समान। क्वचित् अन्यत्र कहीं पर। कादम्बसंसर्गवती - नीलेहंसों से युक्त। प्रियमानसानां मानसरोवर के लिये उत्सुक गुरुदत्तपत्रा श्वेतराज हंसों की पङ्क्तिः इव पङ्क्ति के समान। अन्यत्र अन्य स्थान पर। काला कालागुरु से बनाई गई पत्र रचना से युक्त। भवः पृथ्वी की। चन्दनकल्पिता चन्दन से रचित। भक्तिः इव चित्र रेखा के समान। क्वचित् कहीं पर। छायाविलीनैः छाया में छिपे हुए। तमोभिः अन्धकार से। शबलीकृता मिश्रित । चान्द्रमसी चन्द्र सम्बन्धिनी। प्रभा इव चांदनी के समान। अन्यत्र दूसरे स्थान पर रन्ध्रेषु छिद्रों में। आलक्ष्यनभः प्रदेशा दिखाई पड़ रहा है आकाश जिससे ऐसी। शुभ्रा श्वेत रंग की। शरदभ्रलेखा इव शरद् ऋतु की मेघ पङ्क्ति के समान। क्वचित् - कहाँ पर। कृष्णोरगभूषणा काले सर्परूपी आभूषण से युक्त। भस्माङ्गरागा - भस्म से लिप्त। ईश्वरस्य भगवान् शङ्कर के। तनुः इव शरीर को समान। यमुनातरङ्गैः = यमुना नदी की लहरों से। भिन्नप्रवाहा - मिले हुए प्रवाह वाली। गङ्गा गंगा नदी (भागीरथी)। विभाति सुशोभित हो रही है।

अनुवाद- हे अनिन्द्य अङ्गोवाली या प्रशंसनीय अङ्गों वाली सीते ! (प्रयाग में) यमुना की लहरों से मिश्रित प्रवाह वाली गंगा की शोभा इस प्रकार प्रतीत हो रही है) कहीं पर अपनी चमक (प्रभा) को फैलाने वाली इन्द्रनीलमणियों से जड़ी

हुई (श्वेत) मोतियों की लड़ अर्थात् हारावली के समान, दूसरे स्थान पर नीलकमलों से मध्यभाग में गुथी हुई श्वेतकमलों की माला के समान, 'अन्यत्र नालहंसों से युक्त मानसरोवराभिलाषी श्वेत राज हंसों की पंक्ति के समान, दूसरी ओर कालागुरु से बनाई गई पत्र रचना से युक्त पृथ्वी की चन्दन रचित चित्र रेखा के समान, कहीं पर छाया में छिपे हुए अन्धकार से चित्रीकृत चन्द्रमा की चाँदनी के समान, दूसरे स्थान पर छिद्रों से दिखलाई पड़ रहा है आकाश जिससे ऐसी श्वेत (रंग की) शरद् ऋतु की मेघ पंक्ति के समान, कहीं पर काले सर्परूपी आभूषण से युक्त भस्म से लिप्त, भगवान शंकर के शरीर के समान यमुना की लहरों से मिले हुए प्रवाह वाली गंगा विशेष रूप से सुशोभित हो रही है।

संस्कृत टीका- न अवद्यानि निन्दनीयानि अंगानि यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे अनवद्याङ्गि । प्रशंसनीयावयवे सीते। क्वचित् क्वापि, प्रभालेपिभिः कान्तिलेपिभिः, इन्द्रनीलः मरकतमणिभिः अनुविद्ध अनुस्यूता मुक्तामयी मौक्तिकमयी यष्टिः पंक्तिः- हारावलिः इव, अन्यन्त्र- अन्यस्मिन् स्थाने, इन्दीवरैः नीलोत्पलैः उत्खचितमन्तरं यस्याः सा उत्खचितान्तरा उद्गुम्फितमध्यभाग, सितानां श्वेतानां पङ्कजानां कमलानां माला इव सक् इव, क्वचित् क्वापि कादम्संसर्गवती नीलसान्विता प्रियमानसानां प्रियं मानसं येषान्ते प्रियमानसास्तेषामभीष्टमानसरोवराणाम् खगाङ्ग- राजहंसानां पंक्तिरवि आवलिरिव, अन्यत्र च कालं च तत् अगुरुः कालागुरु तेन दत्तानि पत्राणि यस्याः सा कालागुरुदत्तपत्रा कृष्णागुरुरचितमकरिकपत्रा भुवः पृथिव्याः चन्दनेन श्रीखण्डेन कल्पिता रचिता भक्तिरिव रेखेव, क्वचित् क्वापि च छायासु विलीनैः आतपरहितस्यानस्थितैः तमोभिरन्धकारैः शबलीकृता मिश्रीकृता चन्द्रसी चन्द्रसम्बन्धिनी प्रभेव कान्तिरिव, अन्यत्रापरस्मिन् स्थाने रन्ध्रेषु छिन्द्रेषु आ ईषत् लक्ष्याः दृश्याः नभः प्रदेशाः व्योमप्रदेशाः तादृशी शुभ्रा शुक्ला शरदभलेखा इव शरदूतोर्मधमाला इव, क्वचित् क्वापि च कृष्णश्चासौ भस्माङ्गरागा भस्मनाभिलिप्ता ईश्वरस्य भगवतः शंकरस्य तनुरिव शरीरमिव, यमुनायास्तरमै अगः कृष्णोरगः कृष्णसर्पः स चासौ भूषणं यस्याः सा कृष्णोरगभूषणा कृष्णसर्पालंकृता सर्वतनयावीचिभिः भिन्नप्रवाहा मिश्रितजलधारा गङ्गा भागीरथी विभाति शोभते इति पश्य विलोकय।

संस्कृत सरलार्थ - प्रयागे यमुनायाः नीलजलप्रवाहमिश्रितां श्वेतजलां गंगा वर्णयन् रामः सीतां कारयति, देवि सोते, पश्य, क्वचित् सरिदियं मरकतमणिभिः वह गुम्फिता हारावलि रिव, अन्यत्र नीलकमलैः उद्गुम्फितमध्यमणिभिः सह गुम्फिता हारावलि रिव, अन्यत्र नीलकमलैः उद्गुम्फितमध्यभागा पुण्डरीकपंक्तिरिव, क्वचित् कलहंसमिश्रिता राजहंसश्रेणीव, क्वचित् कालागुरुरचितमकरिकापत्रा चन्दनरचितभूतेः रेखेव, कुत्रचित् छायास्थितैरन्धकारैश्चित्रीकृता चान्द्रमसी प्रभेव, अन्यत्र छिद्रेष ईषल्लक्ष्यव्योमप्रदेशा शुक्ला शरन्मेघरेखेव, कुत्रचिच्च कृष्णसर्पालंकारा भस्मानुलिप्ता शम्भुतनुरिव यमनातरङ्गैः मिश्रितप्रवाहा भागीरथी विशोभते।

व्याकरण- अनवद्याङ्गिण अवद्यानि (नञ् तत्पु०) अनवद्यानि अङ्गानि यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहुः) प्रभालेपिभिः- प्रभया प्रभाभिर्वा लिम्पन्ति ये ते प्रभालेविनः तैः। प्रभालेपि-प्रभा लिप् णिनि। अनुविद्धा-अनु व्यध क्त + टाप् । मुक्तामयी - भूयांसो मुक्ताः सन्ति यस्यां सा इस अर्थ में मुक्ता शब्द से प्रचुर अर्थ में "तत्प्रकृत वचने मयट्" सूत्र से मयट् प्रत्यय होकर मुक्तामय शब्द फिर टित् प्रत्यय होने के कारण 'टिड्ढाण्०' आदि सूत्र से डीप् हुआ है। उत्खचितान्तरा-उत्खचितम् अन्तर यस्याः सा (बहु)। सितपङ्कजानाम् - पङ्के जातानि पङ्कजानि सितानि च तानि पङ्कजानि (कर्मधारय) तेषाम्। कादम्बसंसर्गवती- कादम्बानां संसर्गः अस्याः अस्तीति कादम्बसंसर्गवती। कादम्बसंसर्ग शब्द से मतुप् प्रत्यय होकर स्त्रीत्व विवक्षा में डीप् हुआ है। प्रियमानसानाम् - मनसा निर्वृतं मानसं, प्रिय मानसं येषान्तेषाम् (बहु०)। मानस शब्द मनस् शब्द में 'तेन निर्वृत्तम्' सूत्र से अण् होकर बना है। कालागुरुदत्तपत्रा-कालं च तदगुरु कालागुरु (कर्मधाराय) तेन दत्तानि पत्राणि यस्याः साः (तत्पु० बहु०) शवलीकृता-अशबलाः शबलाः कृता इति शबलीकृता (शवला) शब्द से च्चि प्रत्यय कर आ को ई हुआ है। कृ से क्त फिर टाप्) चान्द्रमसी- चन्द्रमस इयम्। चन्द्रमस् + अण् + डीप् । आलक्ष्यनभः प्रदेशा-आ (ईषत्) लक्ष्यः (गति समास) नभसः प्रदेशः (ष० तत्पु०) आलक्ष्यो नभः प्रदेशो यस्यां सा (बहु०)। कृष्णोरंगभूषणा- कृष्णाश्च ते उरगाः कृष्णोरागाः (कर्म०) कृष्णोरागाः भूषणानि यस्यां सा (बहु०) । भस्माङ्गरागः- अङ्गानां रागः अङ्गरागः

(ष० तत्पु०) भस्मएवाङ्गरागो यस्याः सा (बहु०) यमुनातरङ्गैः-यमुनायास्तरङ्गैः (ष० तत्पु०) । भिन्नप्रवाहा-भिन्नः प्रवाहो यस्याः सा (बहु०)।

विशेष- ५४ से ५७ तक के ४ श्लोकों में कवि ने यमुना और गङ्गा के संगम का विविध रूपों में वर्णन किया है। जितनी भी उत्प्रेक्षाएँ या उपमाएँ हैं उनमें कृष्णत्व और गौरत्त्व (श्वेतत्त्व) को आधार बनाया गया है। यमुना का जल कृष्ण वर्ण और गंगा का श्वेत वर्ण होता है यह सर्वविदित है। मानसरोवर के विषय में वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है कि श्री ब्रह्मा ने कैलाश पर्वत पर मानसरोवर की रचना की थी।

"कैलाश शिखरे राम। मनसा निर्मितं सरः।

ब्रह्मणा प्रागिदं यस्मात्तस्मादभून्मानसं सरः॥"

अतएव यही मानस सरोवर मान सरोवर कहलाने लगा। इसमें राजहंस निवास करते हैं यह कवि प्रसिद्धि है कि राजहंस वर्षारम्भ में इसी मान सरोवर में चले जाते हैं।- "जलधर समये मानसं यान्ति हंसाः" राजहंसों के पैर और चोंच लाल तथा पंख श्वेत होते हैं यह अमरकोश के उल्लेख से स्पष्ट है-

"राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सितैः"।

साहित्य दर्पण के अनुसार यह चार श्लोकों का समुदाय 'कलाप' कहलायेगा क्योंकि इन चारों श्लोकों में अनवद्याङ्गि ! सम्बोधन और विभाति तथा पश्य क्रियाओं का सम्बन्ध है।

"छन्दोवद्ध पदं पद्यं, तेनेकेन च मुक्तकम् द्वाभ्यां तु युग्मकं, सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते। लकापकं चतुर्भिः स्यात् तद्वध्वं कुलकं स्मृतम्॥"

इन चारों श्लोकों में 'यमुनातरङ्गैः भिन्नप्रवाहा गङ्गा' इस उपमेय के अनेक उपमान देने के कारण मालोपमा तथा अन्य रूपों में सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस प्रकार दोनों अलंकारों का संयोग संकर अलंकार है। मालोपमा। लक्षण-"मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते"। (सा० द०)

छन्द-इन चारों श्लोकों में उपजाति है।

प्रसंग- "गङ्गा यमुना के संगम में स्नान से अज्ञानियों को भी मोक्ष प्राप्त होता है" इस प्रकार संगम की प्रशंसा करते हुए राम सीता से कहते हैं-

**समुद्रपल्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।
तत्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः । । ५८ ॥**

अन्वय-अत्र समुद्रपल्योः जलसन्निपाते अभिषेकात् पूतात्मनां तत्वावबोधेन विना अपि तनुत्यजां भूयः शरीरबन्धः न अस्ति किल।

शब्दार्थ - अत्र = इस । समुद्रपल्योः समुद्र पत्नी गङ्गा यमुना के। जलसन्निपाते = संगम में। अभिषेकात् = स्नान करने से। पूतात्मनाम् पवित्र आत्मा वाले (व्यक्तियों का)। तत्वावबोधेन विना अपि तत्त्व (सत्या सत्य, धर्माधर्मादि) के ज्ञान के बिना भी। तनुत्यजाम् = शरीर त्याग करने वालों का। भूयः फिर से। शरीरबन्धः = जन्म मरण आदि संसारिक सम्बन्ध। न अस्ति नहीं होता है। किल निश्चय ही।

अनुवाद- इस गंगा-यमुना के संगम में स्नान करने से पवित्रात्मा वाले (व्यक्तियों का) तत्त्वज्ञान (सत्या सत्य, धर्म अधर्म आदि का ज्ञान) न होने पर भी शरीर त्याग करने वालों का फिर से जन्म आदि है। अर्थात् उन व्यक्तियों को मुक्ति हो जाती है जो गंगा-यमुना के संगम में स्थान करते हैं।

त्रयोदशः सर्गः

भावार्थ- प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम का महत्व बतलाते हुने राम सीता से कहते हैं कि इस संग पर स्नान करने वाले तात्या जनों के मरने पर उन्हें अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है अर्थात् तत्त्वज्ञानीजनों को तत्त्वबोध से जो मोक्ष मिलता है वहीं मोक्ष उन लोगों की भी मिलता है जो इस संगम पर स्नान करते हैं।

संस्कृत टीका - अत्रास्मिन् स्थाने संगमे था, समुद्रपल्योः गङ्गायमुनयोः जलसन्निपाते संगमै अभिषेकात् स्नानात्, पूतात्मानां पवित्रान्तःकरणानां जनानां तत्त्वस्य-अयककैचेन ज्ञानेन विनाऽपि अभावेऽपि तनुत्यजां भौतिक शरीरत्यागिनाम् भूयः पुनः शरीरबन्धः देहसम्बन्धः पुनर्जन्म मरणादिकमित्यर्थः

नास्तिक किल न भवतीति निश्चयः संगम जले स्नानात्पवित्रान्तः करणानां जनानां मोक्षो भवतीति सरलार्थः।

संस्कृत सरलार्थ- प्रयागे गंगा-यमुनयोः संगमस्य महत्त्वं प्रतिपादयन् रामः कथयति सीते । अत्र संगमे स्नानात् पवित्रामभिर्जनैः ज्ञानं विनापि मोक्षो लभ्यते।

व्याकरण - समुद्रपत्न्योः समुद्रस्य पत्न्यी तयोः (घ० तत्पु०)। जलसन्निपाते- जलानां सन्निपातः जलसन्निपातः तस्मिन् (ष० तत्पु०), सन्निपात-सम् नि + पत् + घञ् । अभिषेकात् अभि सिय् घञ् (हेत्वर्थे में पञ्चमी विभक्ति 'हेतो' सूत्र से)। पूतात्मनाम् - पूतः आत्मा येषान्ते पूतात्मानः तेषाम् (बहु०) तत्वाबोधेन-तत्त्वस्य अवबोधः तत्वावबोधः तेन (ष० तत्पु०) यहाँ तृतीया विभक्ति 'विना' के योग के कारण "पृथग्विना नानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्" सूत्र से हुई है। शरीरबन्धः - शरीरस्य बन्धः

(ष० तत्पु०)।

विशेष- पुराणों में या साहित्य में नदियों का पति समुद्र को माना गया है इसीलिए समुद्र का नाम 'वाहिनीपति' भी है। यहाँ समुद्रपत्न्योः के द्वारा उत्तर भारत की दो प्रमुख गंगा और यमुना नदियों का उल्लेख किया गया है जिनका संगम स्थल प्रयागराज है। "तत्त्वज्ञानान्मुक्तिः" नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" आदि कथनों के अनुसार मनुष्य की मुक्ति तत्त्व ज्ञान से ही होती है अर्थात् सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म आदि का सम्यक् ज्ञान होने के बाद ही व्यक्ति को मोक्ष मिलता है किन्तु इस प्रयागराज में संगम स्थल पर स्नान करने वाले व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त होता है। अतः इस गंगा-यमुना संगम में स्नान का अत्यधिक महत्व है। शरीर बन्ध का अर्थ पुनर्जन्मादि है। यहाँ 'विनोक्ति' नामक अलंकार है।

छन्द-उपजाति है।

प्रसंग- "अयोध्या को लौटते हुए राम निषादराज (गुह) की नगरी को देखकर सीता से, "वनगमन के समय यहीं जटाबन्धन किया था जिन्हें देख सुमन्त्र रो पड़े थे" आदि का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं-

पुरं निषादाधिपतेरियं तद् यस्मिन्मया मौलिमाणि विहाय ।

गटासु वृद्धास्वरुदत्सुमन्त्रः कैकेयि ! कामाः फलितास्तवेति । । ५९ ।।

अन्वय- निषादाधिपते: तत् पुरम् इदम् यस्मिन् मया मौलिमणि विहाय जटासु बद्धासु सुमन्त्रः कैकेयि ! तब कामाः फलिताः" इति अरुदत् ।।

शब्दार्थ- निषादाधिपते: निषादराज (गुह) का। तत् वह। पुरम् नगर। इदम् = यह है। यस्मिन् जिस नगर में। मया मेरे (राम के) द्वारा। मौलिमण रत्नमुकुट को। विहाय - छोड़कर (परित्याग कर)। जटासु बद्धासु - जटायें बाँध लेने पर। सुमन्त्रः सुमन्त्र नामक दशरथ के मन्त्री। तब तुम्हारे । कामाः = मनोरथ (इच्छायें)। फलितः सफल हो गए। इति ऐसा कहकर। अरुदत् रोये थे।

अनुवाद- यह वह निषादराज गुह की नगरी है जहाँ (वन) गमन के समय) मेरे द्वारा मुकुटमणि को छोड़ कर जटायें बाँधने पर सुमन्त्र "हे कैकेयि ! तुम्हारे मनोरथ सफल हो गए" ऐसा (कहकर) रो पड़े थे।

भावार्थ- राम सीता से कहते हैं देवि! यह वही निषादाधि पति गुह की नगरी (शृङ्गवेरपुर) है जहाँ मैंने जब मुकुटमणि को उतार कर जटायें बाँधी थीं, तब सुमन्त्रः यह कह कर रो पड़े थे कि हे कैकेयि ! अब तुम्हारे मनोरथ सफल हुये।

संस्कृत टीका- निषादानामधि पतिस्तस्य निषादाधिपते: निषादराजस्य गुहस्येदं पुरोदृश्यमानां तत्पुरं नगरमस्ति (शृङ्गवेर पुरमित्यर्थः) यस्मिन् नगरे मया रामेण मौलिमणि मुकुटरत्न विहाय परित्यज्य जटासु सटासु बद्धासु रचितासु सुमन्त्रः अयोध्याराज्यस्य मन्त्री कैकेयि ! हे भरतमातस्व कामाः नोरथाः फलिताः पूर्णा इति इत्थमुक्त्वाऽरुदत् अश्रूणि व्यमुञ्चत् ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः कथयति, सीते ! निषादराजस्य गुहस्येदं तदेव नगरम् यत्र मया मुकुटरत्नं परित्यज्य यदा जटाः रचिताः तदा सुमन्त्रोऽपि, कैकेयि ! इदानीं तव मनोरथाः सफला जाता इति कथयित्वा अरोदीत् ।

व्याकरण - निषादानामधिपतिः (ष० तत्पु०)। मौलिमणिम् मौलेः मणि (ष० तत्पु०)। विहाय - वि + हर त्वा (ल्यप्) बद्धासु बन्ध क्त टाप् । कैकेयि ! = केकयस्थ अपत्यं स्त्री कैकेयी तत्सम्बुद्धौ। जनपदवाची केकय शब्द से जनपद

शब्दात् 'क्षात्रियादञ्' सूत्र से अञ् प्रत्यय होकर टिड्ढाणल् से डाच् प्रत्यय हुआ कैकयी।

विशेष- वनगमन के समय राम ने अपने मित्र निषादराज गुह के नगर शृङ्गवेर पुर में पहुँचकर राजसी आभूषणों व वस्त्रों का परित्याग कर वानप्रस्थी वेश धारण करते समय मुकुट को हटाकर जब केशों को जटाओं के रूप में बाँधा था उस समय दशरथ के मन्त्री जो इस समय राम के सारथी बनकर आए थे, राम की इस दशा को देखकर रो पड़े थे। 'निषाद' जाति धीवर या मल्लाहों की थी। कुछ टीकाकारों ने 'निषाद' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है- "निषीदति पापम् एषु इति निषादाः" अर्थात् जिनमें पाप निवास करता है वे निषाद होते हैं। सम्भवतः मत्स्य आदि को नित्य पकड़ने से होने वाली प्राणि हिंसा के कारण ही इनमें पाप का निवास माना गया हो। सिन्धु नदी का तटवर्ती (पंजाब) प्रदेश ही पहले केकय जनपद कहलाता था। केकय देश के राजा की पुत्री कैकेयी भरत की माता थी।

यहाँ शृङ्गवेरपुर को देखकर सुमन्त्र के रोने आदि का स्मरण आने के कारण स्मरणालंकार है।

छन्द-उपजाति है।

प्रसंग-अयोध्या की ओर अग्रसर पुष्पकविमान से सरयू नदी को देख कर राम सीता से उसका वर्णन करते हैं।

पयोधरैः पुण्यजनाङ् गनानाम् निर्विष्ट हेमाम्बुजरेणु यस्याः ।

ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो, बुद्धे रिवाव्यक्तमुदाहरन्ति । । ६० ॥

अन्वय - पुण्यजनाङ्गनानाम् पयोधरः निर्विष्ट हेमाम्बुजरेणु ब्राह्मं सरः बुद्धे अव्यक्तम् इव यस्याः कारणम् आप्तवाचः उदाहरन्ति।

शब्दार्थ - पुण्यजनाङ्गनानां यक्ष सुन्दरियों के। पयोधरैः स्तनों के द्वारा। निर्विष्ट हेमाम्बुजरेणु = जिसके स्वर्णकमलों के पराग को उपभोग किया गया है- ऐसे। ब्राह्मसरः = मानसरोवर को। बुद्धेः बुद्धि का। अव्यक्तम् प्रकृति। इव = समान। यस्याः = जिस सरयू का। कारणम् जन्म स्थान। आप्तवाचः सत्य वक्ता मुनिजन। उदाहरन्ति = कहते हैं।

अनुवाद- यक्ष सुन्दरियों के स्तनों द्वारा जिसके स्वर्ण कमलों के पराग का उपभोग किया गया है ऐसे मानसरोवर को बुद्धि के कारण अव्यक्त (प्रकृति) के समान जिस सरयू नदी का कारण (जन्मस्थान) मुनियों ने प्रतिपादित किया है।

अर्थात् जिस प्रकार बुद्धि का कारण (जन्मदाता) अव्यक्त अर्थात् प्रकृति है उसी प्रकार सरयू नदी का कारण मानसरोवर है। ऐसा विद्वानों का कथन है।

भावार्थ- जिस प्रकार बुद्धि का उत्पत्ति स्थान अव्यक्त प्रकृति को माना है उसी प्रकार इस सरयू नदी का उत्पत्ति स्थान मानसरोवर को माना गया है इस मानसरोवर के स्वर्ण कमलों को पराग को यक्ष सुन्दरियाँ अपने स्तनों पर लगाती हैं।

संस्कृत टीका- पुण्यजनाङ्गनानाम् = यक्षसुन्दरीणाम् पयोधरैः स्तनैः, निर्विष्टः उपभुक्तो हेमाम्बुजानां स्वर्णकमलानां रेणुः परागः यस्य तत् निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु ब्राह्म्यं प्रजापतिसम्बन्धि सरः सरोवरं मानसरोवरं यस्याः 'सरयू' इति नद्याः सरब्द्याः इत्यर्थः बुद्धेः महत्तत्त्वस्याव्यक्तमिव प्रकृतिमिव कारणं हेतुमुत्पत्तिस्वानमिति आप्तवाचः क्षत्यवक्तारो मुनयो वेदा वा उदाहरन्ति कथयन्ति।

सरलार्थ - सांख्यशास्त्रोत्तस्य महत्त्वस्पोत्पत्तिस्थानं यथा अव्यक्तम् तथैव सरब्द्याः नद्यारुद् गम स्थानं मानसरोवरमिति विदुषां वेदानाञ्चाभिमतम् ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः कथयति सीते! मुनिजना अस्याः सरब्द्याः प्रभवं मानसरोवरं प्रतिपादयन्ति यथा ते बुद्धे रूपात्तिकरण भव्यक्त मुद्राहरन्ति । मानसरोवरेऽस्मिन् स्वर्ण कमलान्युद् भवन्त येषां परागं यक्षरमण्यः स्वपयोधरैरुपयोगमानयन्ति ।

व्याकरण-पुण्यजनाङ्गनानाम् - पुण्याश्च ते जनाः पुण्यजनाः (कर्म धा०) तेषामङ्गनाः पुण्याजनाङ्गनाः (ष० तत्पु०) तासाम्। पयोधरैः पयसां धराः पयोधराः तै (ष० तत्पु०)। निर्विष्ट हेमाम्बुजरेणु-हेम्नः अम्बुजानि हेमाम्बुजानि (ष० सत्पु०) हेमाम्बुजानां रेणुः हेमाम्बुजरेणुः (ष० तत्पु०) निर्विष्टो हेमाम्बुजरेणुर्यस्य तत् (बहु०)। निर्विष्ट-निर विण् + क्त। ब्राह्मम्-ब्राह्मणः इदं ब्राह्मम् - ब्रह्मन् + अण्। आप्तवाचः- आप्ता वाक् येषान्ते आप्तवाचः (बहु०)।

विशेष-यहाँ सांख्य शास्त्रीय उपमा दी गई है। सांख्यशास्त्र में २५ तत्व माने गये हैं जिनमें प्रधान तत्व अव्यक्त या प्रकृति से बुद्धि (महत्तत्त्व) की उत्पत्ति मानी गई है। अतः बुद्धि का कारण प्रकृति (अव्यक्त) है उसी प्रकार सरयू नदी का उत्पत्ति स्थान (कारण) मानसरोवर है। ऐसी मान्यता है कि मानसरोवर की रचना ब्रह्मा की मानसी सृष्टि है। इसीलिए इसे ब्राह्मसर कहा गया है। यह भी प्रसिद्ध है कि मानसरोवर में स्वर्णकमल होते हैं। पुण्यजन शब्द विश्वकोष के अनुसार यक्ष वाची भी है। "भवेत्पुण्यजनो पक्षे राक्षसे सज्जनेऽपि च"। यहाँ पुण्यजन का अर्थ यक्ष ही कवि को अभिप्रेत है क्योंकि यक्षसुन्दरियों में विलासिता का भाव अधिक होने के कारण मानसरोवर के स्वर्णकमलों के पराग को स्तनों पर वे मलती थीं। कालिदास ने मेघदूत में यक्षपत्नी का चित्रण करते समय यक्षसुन्दरियों की विलासिता का सूक्ष्म चित्रण किया है। आप्तावाचाँ संस्कृत विद्वानों की दृष्टि में आप्त शब्द परमात्मा और यथार्थ (सत्य) दो अर्थों का वाचक है। इस प्रकार यथार्थवक्ता के रूप में आप्तवाचः शब्द मुनियों का वाचक है। आप्त शब्द का अर्थ परमात्मा करने पर उसकी वाणी अर्थात् 'वेद' आप्तवाचः का वाच्य है।

यहाँ उपमालंकार एवं उपजाति छन्द है।

सही जोड़ी बनाओ

(क) अयोध्या	-	(क) समुद्र
(ख) लंका	-	(ख) अत्रि
(ग) मंदाकिनी	-	(ग) सरयू
(घ) अनसूया	-	(घ) चित्रकूट

3.4 सार - संक्षेप

रघुवंश में श्लोकों के द्वारा राम सीता संवाद तथा इनसे सम्बद्ध दृश्यों को प्रस्तुत किया गया है, उनके काव्यतत्त्वों, व्याकरणिक दृष्टि से अध्ययन कर इस इकाई में समन्वित किया है । रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में 40 श्लोक पर्यंत व्याख्या कर इनके माध्यम से राम सीता संवाद में वर्णित तत्त्वों का अध्ययन किया गया है। राम सीता संवाद के अंतर्गत अयोध्या तक के मार्ग में समुद्र, आकाश, वन तथा अन्य प्राकृतिक तत्त्वों का जो वर्णन किया गया है, उनसे सम्बद्ध श्लोक के माध्यम से सप्रसंग व्याख्या कर उन दृश्यों को सार रूप में संस्कृत भाषा में प्रस्तुत किया गया है । जिनकी हिन्दी व्याख्या से इनके विविध पक्षों अन्वय, टिप्पणी द्वारा इकाई में समन्वित किया गया है ।

3.5 मुख्य शब्द

1. भुजम्- भुज को
2. चिराय -बहुत समय तक
3. सरित् - नदी
4. आदाय- लेकर
5. अत्र-यहां

3.6स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

- 1.ग
- 2.क
- 3.घ
- 4.ख

3.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्री चंद्रबली पाण्डेय, कालिदास, मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1954 ।
2. रमाशंकर तिवारी ,महाकवि कालिदास, चौखंबा विद्या भवन ,वाराणसी 1961।
3. रेवा प्रसाद द्विवेदी, कालिदास ग्रंथावली, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,1976 ।
4. आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी,कालिदास ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश संस्कृत

संस्थान ,लखनऊ, 2014।

5. डॉ शोभा भरद्वाज, रघुवंशम- महाकवि कालिदास , युवराज पब्लिकेशन,
आगरा, 2021

3.8अभ्यास प्रश्न

- 1.पंच अग्नि तप का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
- 2.सुतीक्षा ऋषि का परिचय दीजिए।
- 3.चित्रकूट से संबंधित प्राकृतिक तत्वों का वर्णन कीजिए।
- 4.त्रयोदश सर्ग के अनुसार अनुसूया के चरित्र का वर्णन कीजिए।

इकाई -4

रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 61 से 79 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 61 से 79 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

4.4 सार संक्षेप -

4.5 मुख्य शब्द

4.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.8 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

गत इकाइयों में रघुवंश के त्रयोदश सर्ग की कथा को विभिन्न भावों, संवादों के आधार पर वर्णित किया गया है। प्रस्तुत इकाई में इस सर्ग की कथा को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जायेगा। रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग में वर्णित तथ्य अयोध्या पुनर्गमन का वर्णन इस इकाई में श्लोक तथा उनके अन्वय, व्याख्या आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया जायेगा। इसी क्रम में श्लोक के माध्यम से अयोध्या आगमन पर राम तथा भरत के मिलन की सुंदर चित्रण किया गया है।

4.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. रघुवंश के श्लोकों की व्याख्या समझी जा सके।
2. रघुवंश के प्रमुख श्लोक के उच्चारण आदि का ज्ञान हो सके।
3. श्लोकों की व्याख्या से महाकाव्य के सैद्धांतिक पक्ष अभिज्ञान हो सके।
4. श्लोकों के सारगर्भित अध्ययन द्वारा उन में विद्यमान काव्य तत्वों का विवेचन कर सके।

4.3 रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से 61 से 79 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

प्रसंग - "इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं से पवित्रीकृत जल को यह सरयू नदी अयोध्या पहुँचाती है" इस तथ्य का निरूपण करते हुए राम सीता से कहते हैं-

**जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्योध्यमनुराजधानीम्।
तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि ॥ ६१ ॥**

अन्वय-तीरनिखातयूपा या तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः इक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतान जलानि राजधानीम् अयोध्याम् अनुवहति ।

शब्दार्थ- तीरनिखातयूपा तटपर गाड़े गए यूपों (यज्ञस्तम्भों) वाली। या = जो सरयू नदी। तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः अश्वमेध यज्ञ के वभृथ (यज्ञान्त) स्नान के लिए उतरे हुए। इक्ष्वाकुभिः = इक्ष्वाकुवंशीय पूर्वज राजाओं के द्वारा।

पुण्यतरी कृतानि -अत्यधिक पवित्र किए गए। जलानि = जलों को। राजधानी अयोध्याम् = राजधानी अयोध्या के। अनु = समीप। वहति ले जाती है (पहुँचाती है)।

अनुवाद- तीर पर गाड़े गये यज्ञीय स्तम्भों से युक्त जो सरयू नदी अश्वमेध यज्ञ हे अवभृथ स्नान अर्थात् यज्ञ की पूर्णता पर किये जाने वाले स्नान के लिए (सरयू में) सरे हुए इक्ष्वाकुवंशीय पूर्वजों के द्वारा अत्यधिक पवित्र किये गये जल को राजधानी अयोध्या के समीप पहुँचाती है यह वही सरयू है।

भावार्थ- राम सीता से कहते हैं, देवि! यह वही सरयू नदी है जो कि यज्ञान्त स्नान के लिए नदी में उतरे हुए इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के द्वारा अत्यधिक पवित्रीकृत जलों को राजधानी अयोध्या के समीप तक पहुँचाती है। इसी नदी के किनारे पर अश्वमेधीय यज्ञस्तम्भ गाड़े गये हैं, इस प्रकार यह एक अति पवित्र नदी है। सा तीरनिखातयूपा, या सरयू नदी तुरङ्गमेधस्य अवश्वमेधयज्ञस्यावभृथाय

संस्कृत टीका- तीरे तटे निखाताः स्थापिताः यूपाः यज्ञमसम्बन्धिस्तम्भाः यस्याः यज्ञान्तस्नानायावतीर्णैः सरयूमवरूढैः रिक्ष्वाकुभिरिक्ष्वाकुवंशीयैः पूर्वजैः राजभिः पुण्यतरीकृतानि पवित्रतरीकृतानि जलान्युदकानि राजधानीमयोध्याम् एतदाख्यां नगरीम् अनु समीपे बहति प्रापयति ।

संस्कृत सरलार्थ - सरयू वर्णयन् रामः कथयति, सीते ! यस्यास्तटे यज्ञयूपा निखाताः सन्ति, सा एषा सरयू नदी यज्ञान्तस्नानपरैः इक्ष्वाकुवंशीयैः राजभिः पवित्रीकृतानि जलानि अयोध्यासमीपं प्रापयति ।

व्याकरण - तरीरनिखातयूपाः- तोरे निखाताः। यूपाः यस्याः सा (बहु०) निखात-नि खन् + क्त। तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः- तुरङ्गो मेध्यतेऽस्मिन्निति तुरङ्गमेधः (उपपद समास) तुरङ्गमेधस्य अवभृथाय अवतीर्णैः (तृतीया० चतु० तत्पु०) अवतीर्णैः- अव + तृ + क्त । इक्ष्वाकुभिः- इक्ष्वाकूना मपत्यानि पुमांसः

इक्ष्वाकवस्तैः। पुण्यतरीकृतानि -अतिशयेन पुण्यानि पुण्यतराणि-पुण्य तरप्। अपुण्यतराणि पुण्यतराणि कृतानि इति पुण्यतरीकृतानि - पुण्यतर च्वि कृ क्त। अयोध्याम् में 'अनु' के योग से द्वितीया विभक्ति हुई है।

विशेष- इक्ष्वाकुवंशीय राजा सरयूनदी के तट पर यज्ञ किया करते थे। यज्ञ के स्तम्भों की स्थापना की जाती थी। अश्वमेध यज्ञ में दिग्विजय की कामना से कोई राजा एक बलिष्ठ गतिशील अश्व को मन्त्राभिषिक्त कर छोड़ता था, उसके पीछे राजा की सेना चलती थी। जो व्यक्ति उस अश्व को पकड़ता था, उससे अनुनायी सैनिकों का युद्ध होता था, पराजित होने पर वे उस राजा के अधीन हो जाते थे। इस प्रकार जहाँ तक अश्व घूम आता था वह उस अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजा का क्षेत्र होता था। अन्त में उस अश्व की बलि देकर यज्ञ कार्य सम्पन्न होता था तपश्चात् वे नदी में स्नान करते थे। इस प्रकार यह स्नान अवभृथ स्नान कहलाता था। इस स्नान से न केवल वे व्यक्ति अपितु जल भी पवित्र हो जाते थे, ऐसी मान्यता है। यहाँ उपजाति छन्द है।

प्रसंग- राम सरयू नदी को अयोध्या के राजाओं की धाय माँ के रूप में सम्भावित करते हुए कहते हैं-

यां सैकतोत्संगसुखोचितानाम् प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् ।

सामान्य धात्रीमिव मानसं मे सम्भावयत्युत्तर कोसलानाम् । । ६२॥

अन्वय- याम् मे मानसं सैकतोत्सङ्गसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् उत्तरकोशलानां सामान्यधात्रीम् इव सम्भावयति ।

शब्दार्थ- याम् - जिस सरयू नदी को। मे मुझ राम का। मानसम् चित (अन्तःकरण)। सैकतोत्सङ्ग सुखोचितानां वालुकामय (तट) रूपी गोद में सुख से रहने वाले। प्राज्यैः पर्याप्त। पयोभिः जल से (दुग्ध से)। परिवर्धितानाम् - पले हुए (बड़े हुए)। उत्तरकोशलानां उत्तरकोशल प्रदेश के (अयोध्या के) लोगों की।

सामान्य धात्रीमिव साधारण माँ के समान (धायमाता के समान)। सम्भावयति सत्कार करते हैं।

अनुवाद- जिस सरयू नदी को मेरा अन्तःकरण बालुकामय तट रूप गोद में अर्थात् तट रूपी गोद में सुख का अनुभव करने वाले, पर्याप्त जल से (दुग्ध से) पले हुए अर्थात् बड़े हुए उत्तर कौशल प्रदेश के लोगों (विशेषतः राजाओं) की धाय माँ के समान सत्कार करता है अर्थात् माँ के रूप में सरयू नदी का आदर करता है।

भावार्थ- राम सीता से कहते हैं कि मेरा मन इस सरयू नदी को उपमाता के समान आदर की दृष्टि से देखता है क्योंकि इक्ष्वाकुवंशीय हमारे पूर्वजों ने इस नदी की तट रूप गोद में सुख का अनुभव किया था और इसके ही जल रूप दूध से पलकर बड़े हुए थे। अतएव यह हमारे लिए उपमाता के समान आदर का पात्र है।

संस्कृत टीका- याम पुरोदश्यमानां सरयूं में रामस्यस मानसं चित्तमन्तःकरणं वेति सैकतोत्सङ्गसुखो-चितानाम् बालुकामयोत्सङ्गे सुखोचितानां लब्धसुखानाम् प्राज्यैः = पर्याप्तैः पयोभिर्जलैः पक्षे दुग्धैः परिवर्धितानाम् पुष्टयानाम् उत्तरकोशलानामेतन्नाम जनपदस्य जनानाम् विशेषतः अयोध्यायाः राज्ञां सामान्य धात्रीमिव साधारणमातरमिव सम्भावयति सत्करोति ।

संस्कृत सरलार्थ- रामः कथयति सीते ! इमां सरयूनदीं मम चित्त मुनमातरवि सत्करोति, यतोऽस्माकं पूर्वजा अस्या एव सैकतोत्सङ्गे जननी क्रोड इव सुख मन्वभवन् एवमस्या एवं जल रूपदुग्धेन सम्बर्धिता वभूवुः इति एवेयमस्माक मुपजननीद वन्दनीयास्ति।

व्याकरण - सैकतोत्सङ्गसुखोचितानाम्, सिकतायाः इदं सैकतं - सिकता + अण् सैकतम् एव उत्सङ्गः सैकतोत्सङ्गः तस्मिन् सुखे उचिता तेषाम् (सप्त० तत्पु०)। परिवर्धितानाम् - परि + वृध् + णिच् + क्त षष्ठी बहु०। उत्तर कोशलानाम्-उत्तरं च तत् कोशलं (कर्म धा०) उत्तरकोशलं निवासो येषान्ते

उत्तरकोशलाः (बहु०) तेषाम् । सामान्यधात्रीम्-दधातीति धात्री, सामान्य चासौ धात्रीति सामान्यधात्रीम् (कर्मधा०) ताम्।

विशेष- यहाँ कवि ने मुख्यतः सरयू नदी के सामान्य माता के सादृश्य का प्रतिपादन किया है अतः उपमालंकार है। क्योंकि सरयू उपमेय, सामान्य धात्री उपमान, इव उपमावाचक एवं उत्सङ्ग सुखोचितानां तथा पयोभिः शब्द साधारण धर्मवाची है अतः पूर्णोपमा है। पयोभिः शब्द जल और दुग्ध दोनों अर्थों का वाचक होने से श्लिष्ट है। साधारण धर्म श्लिष्ट होने पर श्लेषोपमा होती है अतः यहाँ श्लेष्युक्त उपमा है। सैकतोत्सङ्ग पद में सैकत में उत्सङ्ग का आरोप करने के कारण रूपक है। यह रूपक मुख्य उपमा का सहायक है अतः उपमा का अङ्गरूप है फलतः रूपक और उपमा का अङ्गाङ्गि भव संकर अलंकार है। सामान्यधात्री का अर्थ सामान्य माता है। वस्तुतः जन्मदात्री माँ और पालयित्री माँ के रूप में दो प्रकार की होती है। सरयू नदी अपनी तटभूमि एवं जल से अयोध्या के राजाओं का लालन पालन करती रही है इसलिए वह पालयित्री माँ के रूप में थी। हिन्दी में इसे धाय माँ की संज्ञा दी जाती है। विश्वकोश से भी धाय माँ के स्वरूप की पुष्टि होती है।

छन्द-इन्द्रवज्रा ।

"धात्री जनन्यामलकीधसुमत्युपमातृषु"

प्रसंग-सरयू नदी की तरङ्गों में भुजालिङ्गगन की भावना करते हुए राम सीता से कहते हैं-

सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राजा सरयूर्वियुक्ता ।

दूरे वसन्तं शिशिराललैर्मातरंगहस्तै रूपगूहतीव । । ६३ ॥

अन्वय- मदीया जननी इव मान्येत तेन राजा वियुक्ता सा इयं सरयूः दूरे वसन्तं मां शिशिरानिलैः तरङ्गहस्तैः उपगूहति इव।

शब्दार्थ- मदीया = मेरी (राम की) जननी। इव माता के समान। मान्येन = पूज्य (सम्माननीय)। तेन उन। राजा राजा दशरथ से। वियुक्ता विरहित (रहित)। सा इयं वह यह, दशरथ की पत्नी रूपा इस समय विरहिणी। सरयूः = सरयू नदी। दूरे वसन्तम् = बहुत दूर रहने वाले। माम् मुझ राम का। शिशिरानिलैः - शीतल वायु वाले। तरङ्गहस्तैः लहर रूपी हाथों से। उपगूहति इव मानो आलिङ्गन कर रही है।

अनुवाद- मेरी माता (कौशल्या) के समान, सम्माननीय राजा दशरथ से (इस समय) विरहित वही यह सरयू नदी (बहुत दिनों से) बहुत दूर रहने वाले मुझ राम का शीतल हवा से युक्त अपने तरंग रूपी हाथों से मानो आलिङ्गन कर रही है अर्थात् वात्सल्य भाव से मुझे गले लगा रही है।

भावार्थ- राम सीता से कहते हैं कि यह सरयू नदी इस समय उसी प्रकार उस सम्मान्य राजा दशरथ से विरहित है जैसे मेरी जननी कौशल्या। अतएव दूर रहने वाले मुझे यह वात्सल्यभाव से अपने तरंग रूपी हाथों से मानो मेरा आलिङ्गन कर रही है।

संस्कृत टीका- मदीया ममकीना जननीव माता कौशल्या सदृशा मान्येन सम्माननीयेन तेन राजा दशरथेन वियुक्ता विरहिता सेय पूर्व पति युक्ता संपृति विधवा सरयूः एतन्नामिका सिन्धुः (नदी) दूरे वसन्तं चिरात् विप्रकृष्टदेशे निवासिनं (साम्प्रतमत्रागतम्) माँ रामम् शिशिरानिलैः- शीतवातैः तरङ्गहस्तैः वीचिरूपैः करैः उपगूहतीव आलिङ्गतीव इत्युत्प्रेक्षा । **संस्कृत सरलार्थ-**रामः कथयति सौते । मदीया माता कौशल्येव पूज्येन पित्रा राजा दशरथेन विरहिता सती इयं सरयूः अयोध्यात्तः दूरे वसन्तं मां पुत्रवात्सल्येन स्वतरङ्ग गहस्तैः रालिङ्गतीव।

व्याकरण- मदीया-अस्मद् छ (ईयू) टाप् । वियुक्ता वि युज् + क्त टाप्। वसन्तम्-बस शतू (द्वितीया एक० व०)। शिशिरानिलैः - शिशिरः अनिलः येषां तैः

(बहु०)। तरंगहस्तेः-तरंगा एव हस्तास्तैः। उप गुह (आलिङ्गनार्थक) + लट् (प्रथम० एक० व०)।

विशेष- यहाँ जननीव में उपमा अलंकार एवं उपगृहीतव में उत्प्रेक्षा अलंकारों को परस्पर निरपेक्ष स्थिति होने के कारण संसृष्टि अलंकार है। जैसे किसी माँ का बेटा बहुत दिनों बाद कहीं दूर विदेश में रहकर लौटा हो तो माँ उसको गोद में भरकर स्नेह करती है, उसी प्रकार यह सरयू नदी अपनी शीतल लहर रूपी भुजाओं से मानो राम का आलिङ्गन कर रही है।

छन्द-उपजाति है।

प्रसंग - "हनुमान से सूचना प्राप्त कर भरत राम की अगवानी करने के लिए सेना सहित आ रहे हैं" इस बात को कवि राम के शब्दों में कहता है-

विरक्तसन्ध्याकपिशं पुरस्ताद्यतो रजः पार्थिव मुज्जिहीते।

शङ्के हनूमत्कथिप्रवृत्तिः प्रत्युद् गतो मां भरतः ससैन्यः । । ६४ ।।

अन्वय- विरक्तसन्ध्याकैपिशम् पार्थिवं रजः पुरस्तात् यतः उज्जिहीते हनूमत्कथित-प्रवृत्तिः भरतः ससैन्यः माम् अभ्युपैति (इति) शङ्के।

शब्दार्थ- विरक्तसन्ध्याकपिशम् **विशेष** रूप से लाल वर्णवाली संध्या के समान रक्त वर्ण वाली। पार्थिवम् पृथ्वी की। रजः धूलि । पुरस्तात् = आगे से। यतः = जो। उज्जिहीते = उठ रही है। हनूमत्कथित प्रवृत्तिः हनुमान के कथनानुसार मेरे आगमन वृत्तान्त को जानकर। भरतः कैकेयी पुत्र भरत। ससैन्यः सेना के साथ। माम् - मुझ राम की। अभ्युपैति अगवानी करने आ रहे हैं। शङ्के अनुमान करता है।

अनुवाद- (राम सीता से कहते हैं) **विशेष** रूप से लाल वर्ण वाली सन्ध्या के समान रक्त वर्ण, पृथ्वी की धूल सामने जो उठ रही है। (उससे) हनुमान के

कथनानुसार मेरे आगमन वृत्तान्त को जानकर भरत जी सेना के सहित मेरी अगवानी करने आ रहे हैं। (ऐसा मैं) अनुमान करता हूँ।

भावार्थ- राम कहते हैं सीते! पृथिवी की धूलि जो सामने उठ रही है, इससे मैं अनुमान करता हूँ, कि हनुमान से मेरे आगमन का वृत्तान्त जानकर भरत सेना सहित स्वागत करने आ रहे हैं।

संस्कृत टीका- विरक्ता विशेषेण लोहितवर्णा चासौ सन्ध्या सा इव कपिशं ताम्नवर्णं विरक्तसन्ध्याकपिशम्, पृथिव्या इदं पार्थिवं, पृथ्वीसम्बन्धि रजो धूलिः पुरस्तादग्रे सम्मुखमित्यर्थः यतः यस्मात् कारणात् उज्जिहीते उद्गच्छति तस्मात् हनुमता पवनपुत्रेण कथिता उक्ता प्रवृत्तिः मदागमनवृत्तान्तः यस्मै सः हनुमत्कथितप्रवृत्तिः भरतः कैकेयीनन्दनः ससैन्यः सैनिकः सहितः सन् मामग्न्यजं रामं प्रत्युद्गतः स्वागतार्थं समागत इति शङ्के तर्कयाभि।

संस्कृत सरलार्थ- रामः कथयति, सीते । यतः अतिरक्तवर्णा पृथिव्या धूलिरग्रे समुद्रगच्छति, अतोऽनुमीयते यत् हनुमन्मुखान्ममागमनवृत्तान्तमुपलभ्य ससैन्यो भारतो मां प्रत्युद्गच्छति।

व्याकरण- विरक्तसन्ध्याकपिशम् - विशेषेण रक्ता विरक्ता, विरक्ता चासौ सन्ध्या विरक्तसन्ध्या सा इव कपिशम् (कर्मधा०)। पार्थिवम्- पृथिव्या इदं पार्थिवम्- पृथिवी + अण् (भावार्थक)। उज्जिहीते-उद् ओहाङ् लट् प्र० पु० एकवचन (आत्मनेपदी) । हनुमत्कथितप्रवृत्तिः- हनुः अस्यास्तीति हनुमान् तेन कथितां प्रवृत्तिः यस्मै सः (तत्पु० पुरुषगर्भित बहु०)। प्रत्युद्गतः - प्रति + उद् + गम् + क्त ।

विशेष- यहाँ हनुमान जी द्वारा सूचना पाकर भरत राम की अगवानी सेना के साथ करने जा रहे हैं। इसका वर्णन किया गया है। विरक्त सन्ध्या कपिशम् में उपमा तथा धूलि को देखकर भरत के आगमन का अनुमान करने के कारण अनुमान अलंकार है।

छन्द-उपजाति है।

प्रसंग- सीता के समर्पण की भाँति भरत भी राज्यलक्ष्मी राम को सौंप देंगे इसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है-

अद्धा श्रियं पालितसंगराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनधां स साधुः ।
हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन् संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे ॥ ६५ ॥

अन्वय- साधुः सः पालितसंगराय मृधे खरादीन् हत्वा निवृत्ताय मे लक्ष्मणः संरक्षिताम् अनधां त्वाम् इव श्रियं प्रत्यर्पयिष्यति अद्धा।

शब्दार्थ - साधुः सः सज्जन वह भरत। पालितसंगराय - प्रतिज्ञा का पालन करने वाले। मृधे = युद्ध में। खरादीन् खरदूषण आदि राक्षसों को। हत्वा मार कर। निवृत्ताय = लौटे हुए। मे मेरे (राम के) लिए। लक्ष्मणः लक्ष्मण ने। संरक्षिताम् - रक्षा की गई। अनधाम् = निष्पाप (निर्दोष)। त्वाम् इव तुम्हारे (सीता के) समान। श्रियम् = राज्यलक्ष्मी को। प्रत्यर्पयिष्यति लौटा देंगे या सौंप देंगे। अद्धा निश्चय ही।

अनुवाद- हे सीते । प्रतिज्ञा का पालन करने वाले, युद्ध में खरदूषण आदि को मार कर लौटे हुए मेरे लिए लक्ष्मण ने संरक्षित निर्दोष तुमको जिस प्रकार मुझे सौंपा था, उसी प्रकार वह सज्जन भरत मुझे संरक्षित निर्दोष राज्यलक्ष्मी को सौंप देंगे यह निश्चय है।

भावार्थ- राम सीता से कहते हैं, देवि सत्स्वभाव वाले भरत, अब प्रतिज्ञा पालन कर चुकने वाले मुझको, अपने द्वारा संरक्षित एवं निर्दोष राज्यलक्ष्मी को उसी प्रकार समर्पित कर देंगे, जैसे लक्ष्मण ने, खर आदि राक्षसों का वध करने वाले मुझे संरक्षित एवं निर्दोष तुम्हें समर्पित कर दिया था। **संस्कृत टीका-** साधुः सज्जनः सः भरतः पालितसंगराय रक्षितपितृ प्रतिज्ञाय, मृधे-युद्धे खरादीन्

एतन्नामकान् राक्षसान् हत्वा व्यापाद्य निवृत्ताय परावृत्ताय में रामाय लक्ष्मणः सुमित्रानन्दनः संरक्षिताम् ग्रम्यक् पालिताम् अनधां निर्दोषां त्वामिव सीतामिव श्रियमयोध्यायाः राज्यलक्ष्मी प्रत्यर्पयिष्यति समर्पयिष्यतीति अद्धा सत्यम् निश्चयो वा। अर्थात् यथा लक्ष्मणन संरक्षिता निर्दोषा सीता रामाय समर्पिता तथा भरतोऽपि साम्प्रतं निर्दोषां संरक्षित राज्यलक्ष्मी समर्वविष्यतीति सत्यम् ।

संस्कृत सरलार्थ- रामः कथयति सीते । साधुस्वभावो भरतो रक्षित पितृप्रतिज्ञाय मह्यम्, निर्दोषाम् भोगाभावादनुच्छिष्टाम् अपितु अद्यावधि पालितं राजश्रियं, युद्धे खरादिराक्षसान् हत्वा परावृत्ताय मह्यम् तथैव समर्पयिष्यति यथा लक्ष्मणः राक्षसेभ्यः संरक्षिताम् सर्वदोषरहितां कल्याणमयीं भवतीं मह्यम् समर्पयत्।

व्याकरण- पालितसंगराय- पालितः संगरी येन तस्मै (बहु०)। हत्वा -हन् + क्त्वा। निवृत्ताय-नि + वृत् + क्त (चतु० ए० व०)। संरक्षिताम् - सम्यक् रक्षिता संरक्षिता ताम् (गति समास) अनघाम्-अविद्यमानं अधं यस्याः सा ताम् (नञ् बहु०) अद्धा- "तत्त्वे त्वद्धाऽञ्जसा द्वयम् इत्यमरः ।

विशेष- इस श्लोक में कवि ने राज्यलक्ष्मी की सीता से उपमा दी है। इससे सीता की पवित्रता भी स्वतः ही प्रकट हो जाती है। इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं इन्द्रवज्रा छन्द है। +

प्रसंग- अगवानी के लिए आते हुए भरत का वर्णन करते हुए राम कहते हैं-

असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः, पश्चादवस्थापितवाहिनीकः ।

वृद्धै रमात्यैः सह चीरवासा, मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति । । ६६ ॥

अन्वय-पदातिः चीरवासाः असौ भरतः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः गुरुं पुरस्कृत्य वृद्धैः अमात्यैः सह अर्घ्यपाणिः सन् माम् अभ्युपैति ।

शब्दार्थ- असौ यह (भरत)। पदातिः पैदल चीवासाः वल्कल वस्त्रधारी। भरतः कैकेयी पुत्र। पश्चादवस्थापितवाहिनीकः सेना को पीछे रखकर । गुरुम् = वशिष्ठ को। पुरस्कृत्य आगे रखकर। वृद्धैः वृद्ध। अमार्त्यः = मन्त्रियों के। सह = साथ। अर्घ्यपाणिः हाथों में पूजा की सामग्री लिए हुए। माम् = मुझ राम की ओर। अभ्युपैति - आ रहे हैं।

अनुवाद- पैदल चलने वाले, वल्कलवस्त्र पहने हुए, ये भरत जी सेना को पीछे रखकर गुरु (वशिष्ठ) को आगे करके वृद्ध मन्त्रियों के साथ हाथों में पूजा की सामग्री लिए हुए मेरी (राम की) ओर आ रहे हैं।

भावार्थ- राम सीत से कहते हैं देवी ! तस्कलधारी एवं पैदल चलने वाले भरत, सेना को पीछे छोड़कर, गुरु वशिष्ठ को आगे करके, वृद्ध मन्त्रियों के साथ, अर्घ्य को हाथ में लिए हुए मेरी ओर आ रहे हैं।

संस्कृत टीका- पदातिः पदचारी चीरवासाः वल्कलवसनः असौ - विप्रकृष्टस्थः भरतः = कैकेयीसुतः। पश्चाद् पृष्ठतः अवस्थापिता संस्थायिता वाहिनी येन सः पृष्ठस्थापितसेनः गुरुं वशिष्ठञ्च पुरस्कृत्याग्रनो विधाय वृद्धैः प्रवयोभिरमार्त्यैः मन्त्रिभिः वहितः अर्घ्यपाणिः करस्थापितपुजाद्रव्यः माम् रामं प्रति अभ्युपैति सम्मुखमागच्छति ।

संस्कृत सरलार्थ - भरतं स्वाङ्गुल्या निर्दिशन् रामः कथयति, सीते । पदाचारी अल्कलवसनः असौ भरतः सेना पृष्ठतः संस्थाप्य, गुरुं वशिष्ठञ्चाग्रतो विधाय वयोभिर्मन्त्रिभिः सह करस्थापितार्घ्यद्रव्यः ममाभिमुख मायाति ।

व्याकरण- पदातिः- पदाभ्याम् अततीति पदातिः (उपपद समास) इस अर्थ में उपपद अत् (सातत्य गमने) धातु से इण् प्रत्यय करने पर पाद को पद आदेश होकर ददाति शब्द बना है। चीरवासाः- चीरे वाससी यस्य सः (बहु०) पश्चादवस्थापितवाहिनीकः पश्चात् यथा स्थात्तथा अवस्थापिता वाहिनी येन सः (बहु०) यहाँ समासान्त कप् प्रत्यय हुआ है। अमरकोश के अनुसार ध्वजायुक्त सेना वाहिनी कहलाती है जैसे- ध्वजिनी वाहिनी देना पृतनाडीकिनी चूमः"

पुरस्कृत्य पुरः कृ त्वा (ल्यप्)। अर्घ्यपाणिः अर्घार्थम् इति अर्घ्यम् अर्घ्य पाणी यस्य सः (बहु०) अभ्युपैति अभि उप इण् लट् तिप् । अभ्युप + एति + (एत्येधत्यूट्स) से वृद्धि सन्धि।

विशेष- राम के वनगमन से लेकर आगमन तक भरत ने राज्यलक्ष्मी का पालन पूर्णतः विरक्त भावना से किया था उन्होंने इन १४ वर्षों में न तो पैरों में जूते खड़ाऊँ आदि पहने थे और न ऊनी सूती आदि वस्त्र ही पहने थे, ऋषितुल्य छाल के (वल्कल) वस्त्र ही धारण करते थे। भारतीय संस्कृति के अनुसार किसी महापुरुष आदि से मिलने के लिए जाते समय गुरुजनों एवं सेना को साथ लेकर जाना चाहिए वही आचरण भरत ने किया।
छन्द-उपजाति है।

प्रसंग- राम सीता से भरत की राजलक्ष्मी के प्रति विरक्त भावना का चित्रण करते हुए कहते हैं-

पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता ।

इयन्ति वर्षाणि तथा सहोऽग्रमन्यस्यतीव व्रतमासिधारम् । । ६७ ॥

अन्वय- पित्र विसृष्टाम् अङ्कगताम् अपि श्रियं युवा अपि मदपेक्षया अभोक्ता यः इयन्ति वर्षाणि तथा सह उग्रम् आसिधारव्रतम् अभ्यस्यति इव ।

शब्दार्थ- पित्रा - पिता दशरथ के द्वारा। विसृष्टाम् दी गई। अङ्क गताम्

-

गोद में आई हुई। अपि भी। श्रियं राजलक्ष्मी को। युवा अपि युवक होने पर भी। मदपेक्षया मेरे कारण (मेरे प्रति भक्ति के कारण)। अभोक्ता भोग न करने वाले। यः = भरत जी । इयन्ति इतने। वर्षाणि १४ वर्षों तक। तथा सह उस राजलक्ष्मी

के साथ। उग्रम् अपि कठिन (भयंकर)। आसिधाराव्रतम् - तलवार की धार पर चलने वाले असिधारा व्रत का। अभ्यस्यति इव मानो पालन-सा कर रहे हैं।

अनुवाद- पिता दशरथ के द्वारा दी गई, गोद में आई हुए भी राजलक्ष्मी को, (स्वयं) युक्त होने पर भी मेरे कारण भोग न करने वाले भरत जी इन १४ वर्षों तक उस राजलक्ष्मी के साथ (रहते हुए) भयंकर असिधारा व्रत का मानो पालन सा करते रहे हैं।

भावार्थ - राम सीता से कहते हैं। पिता दशरथ के द्वारा प्रदत्त एवं स्वयं ही गोद में आई हुई भी राज्यलक्ष्मी का, युवक अर्थात् समर्थ होने पर भी, मेरे प्रति श्रद्धा के कारण, न भोग करने वाले भरत, इन चौदह वर्षों तक उस राज्यलक्ष्मी के साथ मानो उसे आसिधाराव्रत का पालन-सा करते रहे हैं।

संस्तुत टीका- पिता राजा दशरथेन विसृष्टाम् प्रदत्ताम् अङ्कगताम् उत्सङ्गप्राप्तामपि श्रियं राज्यर ।क्ष्मी युवाऽपि तरुणः सन्नपि मदपेक्षया मयि भक्त् या अभोक्ता अनुपयोक्ता यो भरतः ३.यन्ति एतावन्ति चतुर्दश वर्षाणि पर्यन्तं तथा राजलक्ष्या सह उग्रमति दुष्करम् आसिधाराद्र। तम् तीक्ष्णकृपाणधारासंचासनात्मकमसिधारव्रतम् अभ्यस्यतीव आचरतीव ।

संस्कृत सरलार्थ - भरतस्य विरक्तिभावस्य तपस्विव्रतस्य च महत्वं निर्दिशन् रात्रः कथयति देवि ! पितृप्रदत्तां स्वयमङ्कागतामपि राज्यलक्ष्मी युवा अपि भूत्वा मदपेक्षया अभोक्ता अयं भरतः चतुर्दश वर्षाणि यावत् तथा सह दुश्चर मासिधारं नाम व्रतं आचरतीव।

व्याकरण-विसृष्टाम्-वि सृज् क्त टाप् । अङ्कगताम् अङ्क गता इति अङ्कगता ताम् (द्वितीया तत्पु०)। मदपेक्षया-मम अपेक्षा मदपेक्षा तथा (प० तत्पु०)। अभोक्ता भुनक्तीति भोक्ता, न भोक्ता अभोक्ता (नञ्) भोक्ता भुज् तृन्। वर्षाणि में 'का लाध्वनोरत्यन्त संयोगे' सूत्र के अनुसार द्वितीया विभक्ति हुई है। आसिधार तम्-असेः धातु असिधारा (ष० तत्पु०) असिधारायाः इदम् आसिधारम् आसिधारं च तद् व्रतम् सिधारव्रतम् ।

विशेष- "युवा युवत्या सार्धं यसन्मुग्धभतं वदाचरेत् । अन्तर्निवृत्तसङ्गः स्यावासिधारव्रतं हि तत्॥"

इस उक्ति के अनुसार युवा-युवती का एक साथ रहते हुए पति पत्नी भाव रखते हुए परस्पर आसक्ति और भोग न करना असिधाराव्रत होता है। यहाँ युवक भरत और स्त्री रूपा राज्यलक्ष्मी दोनों में पति-पत्नी भाव होते हुए भी भरत का उसे भोग न करना, असिष् गारा व्रत के पालन सदृश है। यहाँ राज्यलक्ष्मी और भरत के व्यवहार से युवा युवती के व्यवहार की प्रतीति होने के कारण उसमें असिधाराव्रत आचरण रूप क्रिया की संभावना की गई है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द-उपजाति है।

प्रसंग- राम का पुष्पक विमान राम की इच्छा के अनुरूप भूमि पर उतर गया इसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है-

एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीयामिच्छां विमानमधि देवतया विदित्या।
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयाभि रुद्वीक्षितं प्रकृतिभिर्भरतानुगाभिः॥६८॥

अन्वय- दाशरथौ एतावदुक्तवति, तदीयाम् इच्छाम् अधिदेवतया विदित्वा सविस्मयाभिः भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः उद्वीक्षितं विमानं ज्योतिष्यथात् अवततार।

शब्दार्थ- दाशरथौ दशरथ पुत्र राम के। एतावत् उक्तवत्ति - इतना कहने पर। तदीयाम् उन राम की। इच्छाम् इच्छा को। अधिदेवताया विमान की अधिष्ठात्री देवी के द्वारा। विदित्वा जानकर सविस्मयाभिः आश्चर्य युक्त। भरतानुगाभिः भरत का अनुसरण करने वाली। प्रकृतिभिः प्रजाओं के द्वारा।

वीक्षितम् ऊपर देखा जाता हुआ। विमानम् पुष्पक विमान। ज्योतिष्यथात् - आकाश मार्ग से। अवततार नीचे उतरा।

अनुवाद- दशरथ पुत्र राम के ऐसा कहने पर, उनकी इच्छा को (भूमि पर विमान उतरने की इच्छा को) विमान की अधिष्ठात्री देवता से जानकर, भरत के अनुगामी प्रयोजनों के द्वारा विस्मयपूर्वक देखा जाता हुआ पुष्पक विमान आकाश से भूमि पर उतरा।

भावार्थ- जब राम ने सीता से भरत के विषय में यह सब कहा, तब राम की इच्छा को जानकर अर्थात् विमानाधिष्ठात्री देवी के प्रभाव से यह जानकर कि राम यहाँ उतरना चाहते हैं, वह पुष्पक विमान वहाँ उतर गया, उस समय भरत के साथ आने वाले प्रजाजन विस्मयपूर्वक विमान को उतरता हुआ देख रहे थे।

संस्कृत टीका- दाशरथौ दशरथस्यात्मजे रामचन्द्रे एतावत् पूर्वोक्तम् उक्तवति कथिते सति तदीयां रामसम्बन्धिनीय इच्छामभिलाषाम् अधिदेवतया विमानाधिष्ठातृदेवताप्रभावेण विदित्वा ज्ञात्वा भरतस्य कैकेयिसुतस्यानुगामिः पृष्ठानुसारिणीभिः प्रकृतिभिः सविस्मयाभिः आश्चर्यचकिताभिः यथास्यात्तथाउद्दीक्षितम् ऊर्ध्वं दृष्टं सत् विमानम् ज्योतिषां नक्षत्राणां पथात् मार्गात् आकाशादित्यर्थः अवततार भूमण्डलमवातरत् इत्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ- यदा रामः भरतविषये पूर्वोक्तप्रकारेण सीता मकथयत् तदा विमानाधिष्ठतदेवताप्रभावेण रामस्यावतरणेच्छा मभिजाय भरतानुगामिभिः प्रजाजनै रुवीक्ष्यमाणं तत्पुष्पकविमानम् आकाशमार्गात् अवततार।

व्याकरण- दाशरथौ दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः तस्मिन् दशरथ शब्द से अपत्याथं में इज प्रत्यय आदिवृद्धिः। एतावत्- एतद् + मतुप् परिमाण अर्थ में। उक्तवति-वच् + क्तवतु (सप्तमी) तदीयाम् - तद् छ 'ईयू' टाप् (द्वितीया)। अधिदेवतया-दीव्यतीति देवः, देव एव देवता, अधिका देवता अधिदेवता, तया (गात समास)। सविस्मयाभिः विस्मयेन। सहिताः ताभिः। भरतानुगामिभिः अनु गच्छन्तीति अनुगाः भरतस्यानुगाः भरतानुगा ताभिः (ष० तत्पु०)। उद्दीक्षितम्-उद्

वि ईक्ष + क्त। ज्योतिष्पथात् - ज्योतिषां पन्थाः तस्मात् (ष० तत्पु०)। अवततार-अव तृ + लिट् (प्रथ० पु० एक०)। **विशेष-**पुष्पक विमान स्वचालित था। वह मानसिक भावनाओं के आधार पर ही संचरण करता था ऐसी मान्यता है। राम ने भरत से मिलने और उनके सत्कार को स्वीकार करने की इच्छा की इस बात को उसने स्वाधिष्ठातृ देवता के माध्यम से जान लिया अतः आकाश से नीचे भूमि पर उतर गया। दशरथ का नाम अन्वर्थक था। "दशसु (दिक्षु) रथो यस्य सः दशरथः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार दशरथ का रथ दशों दिशाओं में समान गति से चलता था और सर्वत्र अप्रतिहतगति था यह विदित होता है। अयोध्या के निवासियों द्वारा स्वचालित विमान कभी न देखा गया था। अतः उनमें आश्चर्य का उदय होना स्वाभाविक है।

छन्द-इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण-उक्ता वसन्ततिलका तभजा जागौगा। प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण, दो गुरु होते हैं।

रूप - **SS1 S11 1S11S1SS**

प्रसंग- 'विभीषण और सुग्रीव के साथ राम पुष्पक विमान से उतरे इस विषय में कवि कहता है-

तत्मात्पुरस्सरविभीषणदर्शितेन सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः ।

यानादवातरुद् दूरमहीतलेन मार्गेण भङ्गिरचितस्फटिकेन रामः । । ६९ ॥

अन्वय - सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः रामः पुरस्सरविभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेख भङ्गिरचितस्फटिकेन मार्गेण तस्मात् यानात् अवातरत् ।

शब्दार्थ - सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः सेवा में निपुण वानरराज सुग्रीव के हाथ के सहारे। रामः = भगवान् राम। पुरस्सरविभीषणदर्शितेन अग्रगामी विभीषण द्वारा निर्दिष्ट। अदूरमहीतलेन समीपस्थ भूमितल चाले।

भङ्गिरचितस्फटिकेन -बीच में स्फटिक मणियों से जटित। मार्गेण सोपान मार्ग से (सीढ़ियों से)। तस्मात् = उस । यानात् = पुष्पक विमान से। अवातरत् उतरे।

अनुवाद- सेवा में निपुण वानरराज सुग्रीव के हाथ का सहारा लिए हुए राम अग्रगामी विभीषण द्वारा निर्दिष्ट समीपस्थ भूमि तल वाले, बीच-बीच में स्फटिक मणियों से जटिल सोपान मार्ग से उस पुष्पक विमान से उतरे।

भावार्थ- कवि कहता है कि जब पुष्पक विमान भूमि पर उतरा तब सेवानिपुण विभीषण ने राम को उतरने के लिए अपने हाथ का सहारा दिया, विभीषण ने आगे बढ़ कर मार्ग दिखलाया, और तब राम भूमि के पास ही स्फटिकमणिजटित सोपान मार्ग से नीचे उतरे।

संस्कृत टीका- सेवायां परिचरणे विचक्षणेन निपुणेन हरीश्वरेण वानरराजेन सुग्रीवेण दत्तहस्तः दत्तहस्तावलम्बः तैयान्क्षिणहरीश्वदत्तहस्तः, रामः रामचन्द्रः पुरस्सरेणाग्रगामिना विभीषणेन रावणानुजेन दर्शितेन निर्दिष्टेन, पुरस्सरविभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेनासन्नभूतलेन, भङ्गिरचितस्फटिकेन भङ्गिभिः प्रकारविशेषैः रचिताः, जटिताः स्फटिकाः शुभाः स्फटिकमणयो यस्मिन् तेन भङ्गिरचितस्फटिकेन मार्गेण पथा तस्मात् पर्ववणितात् यानात् पुष्पक विमानस्थ अवातरत् भूमाववतीर्णः।

संस्कृत सरलार्थ- कविः कथयति, भूमिसमीपमागते विमाने, परिचरण निपुणसुग्रीवप्रदत्तहस्तावलम्बः रामः अग्रेसरविभीषणप्रदर्शितेन आसन्नभूतलेन विशिष्टतिनिर्मितस्फटिकेन पथा, तस्माद् विमानादवतीर्णः ।

व्याकरण- सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः सेवायां विचक्षणः सेवाविचक्षणः (सप्त० तत्पु०) हरीणामीश्वरः (८० तत्पु०) हरीश्वरः सेवाविचक्षणश्चासौ हरीश्वरः सेवाविचक्षणहरीश्वरः तेन (कर्मधा०) दत्तो हस्तो यस्य सः सेवाविचक्षणेन हरीश्वरेण दत्तहस्तः (तृ० तत्पु०)। पुरस्सरविभीषणदर्शितेन पुरः सरतीति पुरः सरः पुरस्सरचासी विभीषणः (कर्मधा०) पुरस्सरविभीषणः तेन दर्शितः तेन

पुरस्सरविभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेन-न दूरम् अदूर (नञ् तत्पु०) मह्याः तलम् महीतलम् (घ० तत्पु०) अदूरं महीतलं यस्य तेन अदूरमहीतलेन (बहु०)। भङ्गिरभिस्फटिकेन- भङ्गिभिः रचिताः स्फटिकाः यस्मिन् (बहु०) तेन (तृ० तत्पु०)। याव-या ल्युट्। अवातरत्- अव + तृ + लङ् (प्र० पु० एक०)।

विशेष- पुष्पक विमान की रत्नजड़ित सीढ़ियों से भगवान राम उतरे। यहाँ सुग्रीव के हाथ का सहारा लेने से सख्यभाव की प्रतीति तथा विभीषण को आगे कर उससे मार्ग निर्देश प्राप्त करने में विभीषण के प्रति अतिविश्वास का भाव ध्वनित होता है।

छन्द-इस श्लोक में भी वसन्ततिलका है।

प्रसंग- "राम ने गुरु को प्रणाम कर भरत को गले लगाया" इसका भावुकतापूर्ण वर्णन करते हुए कवि कहता है-

इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य स भ्रातरं भरतमर्द्धपरिग्रहान्ते ।
पर्यश्रुस्वत मूर्धनि चोपजघ्नौ तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके । । ७० ॥

अन्वय- प्रयतः सः इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रणम्य अर्द्धपरिग्रहान्ते पर्यश्रुः भ्रातरं भरतं अस्वजत् तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके मूर्धनि उपजघ्नौ च।

शब्दार्थ- प्रयतः = पवित्र एवं तत्पर। सः रामचन्द्र ने। इक्ष्वाकुवंश गुरवे = इक्ष्वाकु कुल के गुरु वशिष्ठ को। प्रणम्य प्रणाम करके। अर्द्धपरिग्रहान्ते अर्द्ध को स्वीकार करने के पश्चात् । पर्यश्रुः आँसुओं से पूर्ण होकर। भ्रातरं भाई। भरतम् -भरत का। अस्वजत = आलिंगन किया। तद्भक्त्यपोढ पितृराज्यमहाभिषेके = राम के प्रति भक्ति से पिता के द्वारा दिये गये राज्य के

महाभिषेक का त्याग करने वाले। मूर्धनि = भरत के सिर को। उपजघ्नौ = सँघा।

अनुवाद- पवित्र राम ने इक्ष्वाकुवंश के कुलगुरु वशिष्ठमुनि को प्रमाण करके भरतकृत पूजा को स्वीकार करने के पश्चात् आँसुओं से भरे हुए उन्होंने भाई भरत का आलिंगन किया और पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य के महाभिषेक का राम के प्रति भक्ति होने के कारण परित्याग करने वाले भरत के सिर को सँघा।

भावार्थ- विमान से उतर कर पवित्रात्मा राम ने सर्वप्रथम इक्ष्वाकु कुल के गुरु वशिष्ठ को प्रमाण करके, भरत द्वारा कृत पूजाविधि को स्वीकार करने बाद, आनन्दश्रूपूरित नेत्र होकर उन्होंने भरत के उस मस्तक को सँघा। जिसके द्वारा रामभक्तिवशात् पितृराज्य के महाभिषेक का त्याग कर दिया गया था। प्रणम्य नमस्कृत्यार्श्वपरिग्रहान्ते भरतकुतपूजास्वीकारावस ने, पर्यवः परिगतानन्दवापः मन्

संस्कृत टीका- प्रयतः परिवत्र सः रामः इक्ष्वाकुवंशगुरवे इक्ष्वाकुकुलगुरवे वशिष्य भ्रातर मनुर्ज भरतं कैकयीसुतं अस्वजतालिङ्गितवान् । तद्भक्तया रामंप्रति भक्तिभावनया अपोढः परित्यक्तः पितुः राजस्य महाभिषेकः येन तस्मिन् तादृशे मूर्धनि भरतशिरवि उपजघ्नौ चाद्यातवांश्च।

संस्कृत सरलार्थ - विमानादवतरणानन्तरं पवित्रात्मा रामः सर्वप्रथमम् इक्ष्वाकुवंशाचार्याय वसिष्ठाय प्रणिपत्य, आनन्दाश्रूतूरितमुखः सन् भरतकृतपूजाविधि स्वीकृत्य, रामभक्तिपरित्यक्तपितृराज्यमहाभिषेके भरतमस्तके समाजिद्यत् ।

व्याकरण- प्रयतः- प्र + यम् क्त। इक्ष्वाकुवंशगुरवे - इक्ष्वाकोः वंशः इक्ष्वाकुवंशः (घ० तत्पु०) तस्य गुरवे (घ० तत्पु०) प्रणम्य-प्र नम् + क्त्वा (ल्यम्)। अर्घ्यपरिग्रहान्ते-अर्घार्थ अर्घ्यं, अर्घ्यस्य परिग्रहः अर्घ्यपरिग्रहः तस्यान्ते (घ० तत्पु०) पर्यश्रुः- परिगतानि अश्रूणि यस्य सः (बहु०)। तद्भक्त

यपोढपितृराज्यमहाभिषेके, तस्मिन् भक्तिः तद्भक्तिः (सप्त० तत्पु०) तद्भक्त्या अपोढः, महाभिषेकः, पितुः राज्यं पितृराज्यम् (ए० तत्पु०) महांशचासी अभिषेकः, महाभिषेकः पितृराज्ये महाभिषेकः पितृराजमहाभिषेकः (सप्त० तत्पु०) तद्भक्त्यपोढः पितृराज्यमहाभिषेको येन सः तस्मिन् (बहु०)। उपजघ्नौ-उप घ्रा (लिट् प्र० पु० एक०)।

विशेष- राम ने शिष्टाचार का पालन करते हुए सर्वप्रथम गुरु को प्रणाम किया तदनन्तर भाई भरत की पूजा स्वीकार कर आलिंगन किया और सिर सँघा। भारतीय शिष्टाचार के अनुसार चिर प्राप्त पुत्र व छोटे भाई का सिर सँघा जाता है। भरत ने पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य को भाई राम के प्रति अतिश्रद्धा के कारण स्वीकार नहीं किया और स्वयं एक सेवक की भाँति १४ वर्षों तक राम की धरोहर समझ कर राज्य का संचालन करते रहे। उस भरत के मस्तक को राम ने सँघा यह भाव अभिप्रेत है। इस श्लोक में भी वसन्ततिलका छन्द है।

प्रसंग-राम ने वृद्ध मन्त्रियों के प्रमाण को स्वीकार कर उसने कुशलक्षेम पूछा-

शमश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रयांश्चप्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान् ।

अन्वगृहीत् प्रणमतः शुभदृष्टिपातैर्वार्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा॥७१॥

अन्वय - शमश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियात् प्ररोहजटिलान् प्लक्षान् इव प्रणमतः मन्त्रिवृद्धान् च शुभदृष्टिपातैः पार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा अन्वगृहीत्।

शब्दार्थ - शमश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान् - दाढ़ी मूँछ आदि के बढ़ जाने से विकृत मुख वाले। प्ररोहजटिलान् शाखाओं से निकली जटाओं से जटिल। प्लक्षान् से। वार्तानुयोगमधुराक्षरया बरगद (वट) के वक्षों के समान । प्रणमतः प्रमाण करने वाले। मन्त्रिवृद्धान् -मन्त्रियों को। शुभदृष्टिपातैः मङ्गलमय

अवलोकनों से कुशलक्षेम आदि के प्रश्न से मधुर वर्षों वाली। वाची वाणी से। अन्वग्रहीत्-अहीत किया।

अनुवाद- (राम ने) दाढ़ी मूँछ आदि के बढ़ जाने से विकृत मुख वाले, शाखाओं से निकली जटाओं से जटिल बरगद (वट) के वृक्षों के समान (प्रतीत होने वाले) प्रणाम करने वाले वृद्ध मन्त्रियों को (अपने) मङ्गलमय अवलोकनों से (तथा) कुशल क्षेम आदि के प्रश्नों से मधुर वणों वाली वाणी (बोलकर) अनुगृहीत किया।

भावार्थ- भरत के आलिङ्गन के बाद राम ने उन मन्त्रिवृद्धों को भी अपने कल्याणमय अवलोकनों से तथा कुशल प्रश्न में प्रयुक्त मधुराक्षरा वाणी से अनुगृहीत किया, जिनका मुख दाढ़ी मूँछों के बढ़ जाने से विकृत हो गया था अतएव जो कि शाखाओं से लटकन...

दुर्जातबन्धुरयमृक्ष हरीश्वरो मे पौलस्त्य एष समरेषु पुरः प्रहर्ता।
इत्यादूतेन कथितौ रघुनन्दनेन व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे । ।
इति आदूतेन रघुनन्दनेन कथियौ उभौ लक्ष्मणं व्युत्क्रम्य ७२॥

अन्वय-"अयं मे दर्जातबन्धुः ऋक्षहरीश्वरः एष समरेषु पुरः प्रहर्ता पौलस्त्यः" भरतः ववन्दे ।

शब्दार्थ - अयम् - यह। मे मेरे। दुर्जातिबन्धुः आपत्ति के समय बन्धुतुल्य। ऋक्षहरीश्वरः- भालू एवं बन्दरों के स्वामी सुग्रीव हैं। एष यह। समरेषु युद्धों में। पुरः प्रहर्ता - सबसे पहले प्रहार करने वाले। पौलस्त्यः पुलस्त्य के नाती विभीषण है। इति - इस प्रकार। आदूतेन - आदर भाव से। रघुनन्दनेन राम के द्वारा। कथितौ कहे गये (बतलाये गये)। उभौ दोनों विभीषण व सुग्रीव की।

लक्ष्मणम् = सुमित्रा नन्दन लक्ष्मण की। व्युत्क्रम्य लाँघ कर, छोड़ कर। भरतः = भरत ने। ववन्दे। वन्दना की।

अनुवाद- यह मेरे आपत्ति के बन्धु, भालू व बन्दरों के स्वामी सुग्रीव हैं, यह युद्ध में सर्वप्रथम प्रहार करने वाले विभीषण हैं इस प्रकार आदरपूर्वक राम के द्वारा बतलाये गये इन दोनों सुग्रीव व विभीषण की लक्ष्मण को छोड़कर (पहले) भरत ने वन्दना की अर्थात् अभिवादन किया।

भावार्थ - यह मेरे आपत्तिकालसहायक भालू एवं वानरों के अधिपति सुग्रीव हैं, तथा संग्रामों में आगे प्रहार करने वाले यह पुलस्त्य नप्ता विभीषण हैं, जब इस प्रकार राम ने दोनों का परिचय दिया तब भरत ने लक्ष्मण को छोड़कर पहले इन दोनों की वन्दना की।

संस्कृत टीका- अयं पुरोदृश्यमानः मे मम रामस्यस दुर्जातबन्धुः आपद् बन्धुः ऋक्षहरीश्वरः भल्लूकवानराधीशः सुग्रीवः, एष निकटस्थ्यश्च सभरेषु पुरः प्राक् प्रहर्ता प्रहारकर्ता पौलस्त्यः पुलस्त्यगोत्रापत्यः पुमान् विभीषणः इति एवं प्रकारेण आदृतेन आदरवता रघुनन्दनेन भगवता रामेण कथितौ उक्तौ उभौ सुग्रीवविभीषणौ लक्ष्मणं सुमित्रात्मजं व्युत्क्रम्यातिक्रम्य भरतः ववन्दे अभिवन्दितवान् । राममुखादादरपूर्वकं सुग्रीवविभीषणयोः परिचयं प्राप्य भरतः लक्ष्मणसीतादेः प्राक् उभौ अभिवन्दितवान्।

संस्कृत सरलार्थ-अयं ममाद्बन्धुः सुग्रीवः, अयञ्च वीराग्रणीः विभीषणः इत्याद्वकारिणा रामेण कथितो तौ सुग्रीवविभीषणी, भरतः लक्ष्मणं मप्युत्सृज्य, ववन्दे।

व्याकरण- दुर्जातबन्धुः- दुष्टं जातं यस्य तत् दुर्जातम् (बहु०) दुर्जाते बन्धुः (सप्त० तत्पु०) । ऋक्षहरीश्वरः- ऋक्षाश्च हरयश्च तेषामीश्वरः इति ऋक्षहरीश्वरः (ष० तत्पु०) प्रहर्ता - प्र + हृ + तृच् । पौलस्त्यः- पुल स्त्यस्यगोत्रापत्यं पुमान् - पुलस्त्य + अण्। व्युत्क्रम्य-वि + उद् क्रम् क्त्वा (ल्यप्) ।

विशेष - भरत जी 'वनवास की १४ वर्ष की अवधि समाप्ति के पश्चात् लौटे हुए राम आदि का अभिवादन कर रहे हैं। राम की वन्दना के पश्चात् वे लक्ष्मण से मिले इसके पूर्व राम के द्वारा आपत्तिकाल में सहायक वानरराज और विभीषण का परिचय प्राप्त कर उनका अभिवादन करना भरत के लिये अत्यावश्यक और व्यवहारोपयोगी था, अतः उन्होंने लक्ष्मण की अपेक्षा सुग्रीव आदि का अभिवादन पहले किया।

छन्द-यहाँ वसन्ततिलका है।

प्रसंग-भरत जी ने लक्ष्मण का आलिङ्गन किया-

सौमित्रिणा तदनु संसृजे स चैन मुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग ।
क्लिशनन्निवास्य भुजमध्यमुरः रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणककशेनस्थलेन ॥ ७३ ॥

अन्वय तदनु सः सौमित्रिणा संसृजे, नम्रशिरसम् एनम् उत्थाप्य च रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणककशेन अस्य उरः स्थलेन भुजमध्यं क्लिशनन् इव भृशम् आलिलिङ्ग ।

शब्दार्थ - तदनु - इसके बाद (सुग्रीवादि को अभिवादन के पश्चात्। सः भरत जी। सौमित्रिणा = लक्ष्मण से। संसृजे मिले। नम्रशिरसम् - और प्रणामार्थ नीचे को सिरे झुकाए हुये। एनं = लक्ष्मण को। उत्थाप्य = उठाकर । रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणककशेन - मेघनाद के प्रहार से उत्पन्न घावों (व्रणों) से कठोर। अस्य उन लक्ष्मण के। उरः स्थलेन = वक्षस्थल से। भुजमध्यम् अपने वक्षः स्थल को। क्लिशनन् इव = पीड़ित करते हुए से (गाढालिङ्गन से)। भृशम् अत्यधिक (कसकर)। आलिलिङ्ग = आलिङ्गन किया।

अनुवाद - सुग्रीवादि की अभिवादन करने के पश्चात् भरत जी लक्ष्मण से मिले और (प्रणामार्थ) नीचे को सर झुकाये हुये लक्ष्मण को उठा कर मेघनाद के

प्रहार से उत्पन्न घावों से कठोर उनके वक्ष से अपने वक्ष को पीड़ित करते हुए भली प्रकार से उनका आलिङ्गन किया।

भावार्थ- सुग्रीवादि के अभिवादन के बाद, भरत लक्ष्मण से मिले। तब भरत ने, प्रमाणार्थ सिर झुकाये हुए लक्ष्मण को उठाकर, उनके उस वक्षःस्थल से अपने वक्षःस्थल को पीड़ित-सा करते हुये गाढालिङ्गन किया, जो कि मेघनाद के प्रहारों के घावों से कर्कश हो गया था।

संस्कृत टीका- तदनु तत्पश्चात् सुग्रीवभीषणयोरभिवादनानन्तरं सः भरतः सौमित्रिणा लक्ष्मणेन संससूजे संगतः मिलितः नम्रशिरसम् प्रणतम् एनं लक्ष्मणम् उत्थाप्य चोन्नमय्य च रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन रूढम् उत्पन्नं यत् इन्द्रजितः मेघानादस्य ग्रहरणेन आयुधेन व्रणं क्षत्रं तस्मात् कर्कशेन कठोरेण अस्य लक्ष्मणस्य उरः स्थलेन वक्षःस्थलेन स्वीक्रीयं भुजमध्यम् वाहुमध्यं वक्षस्थलमित्यर्थः क्लिशनन् इन पीडयन्निव भुशं गाढं यथास्यात्तया आलिलिङ्ग आलिङ्गितवांश्च ।

संस्कृत सरलार्थ - सुग्रीवादयभिवादनानन्तरं भरतः नम्रीभूतं लक्ष्मणमुत्थाप्य, मेघनादप्रहारव्रण कठोरेण लक्ष्मणवक्षः स्थलेन स्ववक्षः पीडयन्निव तं गाढमालिङ्गितवान् ।

व्याकरण- सौमित्रिणा - सुमित्रायाः अवत्यं पुमान् सौमित्रिः तेन। सुमित्रा + इञ् (आदि वृद्धिः)। नम्रशिरसम्- नम्रं शिरो यस्यस तम्। उत्थाप्य उद्+ स्थाणिच् + त्वा (ल्यप्) रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन- इन्द्रं जयतीति इन्द्रजित्, इन्द्रजितः प्रहरणानि इन्द्रजित्प्रहरणानि (५० तत्पु०) तैः व्रणानि इन्द्रजित्प्रहरणव्रणानि रूढानि च तानि ब्रतानि तैः कर्कशं तेन (तृ० तत्पु०) उतरः स्थलम् उरसः स्थलम् (५० तत्पु०)। क्लिशनन् - क्लिश् शतू। आलिलिङ्ग-आलिङ्गि लिट्।

विशेष- यहाँ क्लिशनन्निव पद में क्रियोत्पेक्षा है।

छन्द-इसमें वसन्ततिलका है।

प्रसंग-रामाज्ञा से वानरों ने मानुष रूप धारण कर हाथियों की सवारी की-

रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं कृत्वा मनुष्यवपुः आरुरुह्य गजेन्द्रान् ।
तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरे ते ॥७४॥

अन्वय- तदानीं हरिचमूपतयः रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा गजेन्द्रान्
आरुरुहुः बहुधा मदवारिधाराः क्षरत्सु तेषु ते शैलाधिरोहणसुखानि उपलेभिरे।

शब्दार्थ - तदानीम् - उस समय। हरिचमूपतयः वानर सेनापति। रामाज्ञया
= राम की आज्ञानुसार। मनुष्यवपुः मनुष्य का शरीर। कृत्वा = धारण कर।
गजेन्द्रान् -हाथियों पर। आरुरुहुः चढ़ गये। बहुधा बहुत अधिक। मदवारिधाराः
मदजल की धाराओं को। क्षरत्सु वहाने वाले। तेषु उन हाथियों पर। ते उन वानर
सेनापतियों ने। शैलाधिरोहण सुखानि पर्वतों पर चढ़ने के सुखों को। उपलेभिरे =
प्राप्त किया।

अनुवाद- उस समय वानर सेनापति राम को आज्ञानुसार मनुष्य शरीर
धारण कर हाथियों पर सवार हो गये (तथा) बहुत अधिक मदजल धाराओं को
बहाने वाले उन हाथियों पर वानर सेना नायकों ने पर्वतों पर चढ़ने के सुखों को
प्राप्त किया।

भावार्थ- उस समय वानर सेनापति राम की आज्ञा से मनुष्य शरीर धारण
कर गजराजों पर चढ़ गये, उन मदनावी हाथियों पर चढ़कर उन्हें वैसा ही
आनन्द प्राप्त हुआ जैसा कि पर्वतों पर चढ़कर प्राप्त होता था।

संस्कृत टीका- तदीनाम् तस्मिन् काले हरिचमूपतयः वानरसेनापतयः
रामाज्ञया रामचन्द्रादेशेन मनुष्यवपुः नरशरीरं कृत्वा विधाय गजेन्द्रान् हस्तिनः
आरुरुहुः आरुढवन्तः बहुधा प्रायशः मदवारिधाराः दानवारिधाराः क्षरत्सुवर्षत्सु तेषु

हिस्तषु ते वानरसेनापतयः शैलाधिरोहणसुखानि पर्वतारोहणानन्दान् उपलेभिरे प्राप्तवन्तः अनुभूतवन्त इत्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ- तदा वानरसेनापतयः रामाक्षया मनुष्यशरीरं गृहीत्वा गजेन्द्रानारूमहुः। अनेकशः मदधारा, क्षरत्सु तेषु गर्जषु ते पर्वतारोहणसुखानि प्राप्तवन्तः ।

व्याकरण- हरिचमूपतयः- हरीणां चम्बाः (ष० तत्पु०) हरिचमूनां पतयः (ष० तत्पु०)। रामाक्षया-रामस्य आज्ञा रामाज्ञा (ष० त०) तथा। आरूढः- आ + रूह + लिट् (प्र० पु० बहु०)। मदवारिधाराः- मदस्यस्य वारीणि मदवारीणि (ष० तत्पु०) तेषां धाराः ताः शैलाधिरोहणसुखानि - शैलेषु अधिरोहणानि (स० तत्पु०) शैलाधिरोहणानां सुखानि तानि (घ० तत्पु०)। उपलेभिरे-उप डुलभश्च लिट् (प्र० पु० बहु० व०)।

विशेष- अयोध्या में वानरसेनापतियों ने रामाज्ञा से मनुष्य का शरीर धारण कर हाथियों की सवारी की। स्वभाव से वानर होने के कारण उन हाथियों पर उन्हें पर्वतारोहण का सा आनन्द मिला। वस्तुतः पर्वत पर झरने आदि होते हैं यहाँ हाथियों के मदजल की धारायें बह रही थीं। अतः वे हाथी पर्वत तुल्य थे। ऐसी मान्यता है कि उत्तम गज के अङ्गों से मदजल निकलता है-दोनों नाक से, दोनों कपोलों से, दोनों नेत्रों से एवं मूत्रेन्द्रिय (उपस्य) से हाथियों की पर्वतों से तुल्यता व्यङ्ग्य होने के कारण उपमा अलंकार व्यङ्ग्य है।

छन्द-वसन्ततिलका है।

प्रसंग- रामाज्ञा से विभीषण भी अपने सेवकों के साथ रथों पर आरूढ़ हुए-

सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां भेजे रथान् दशरथप्रभवामुशिष्टः ।

मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयैर्नस्यन्दनैस्तुतिलकृत्रिमभक्तिशोभाः॥७५॥

अन्वय - सानुप्लवः क्षणदाचराणां प्रभुः अपि दशरथप्रभवानुशिष्टः रथान् भेजे। ये मायाविकल्परचितैः अपि तदीयैः स्यन्दनैः तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न (भवन्ति) इति शेषः।

शब्दार्थ - सानुप्लवः अनुचरों के साथ। क्षणदाचरणाम् - राक्षसों के। प्रभुः = स्वामी विभीषण। अपि भी। दशरथप्रभवानुशिष्टः दशरथ पुत्र राम की आज्ञा से। रथान् = रथों पर। भेजे चढ़ गये। ये जो रथ। मायाविकल्परचितैः अपि = मायावी कल्पना से बनाये गये भी। तदीयैः उन राक्षसों के। स्यन्दनैः रथों से। तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः कृत्रिमरचनात्मक शोभा के समान। न (आसन्) नहीं थे।

अनुवाद - (अपने) अनुचरों के साथ राक्षस राज विभीषण भी राम के आदेश से (उन) रथों पर आरुढ़ हुए जो विभीषण के मायावी कल्पना से रचे गये रथों की कृत्रिम रचनात्मक शोभा के समान नहीं थे।

भावार्थ- अयोध्या के रथ मायावी कल्पना से रचित विभीषण के रथों से अधिक सुन्दर थे उनमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नजर नहीं आती थी, ऐसे रथों में विभीषण अपने सेवकों के साथ सवार हुए।

संस्कृत टीका- सानुप्लवः सानुचरः क्षणदाचराणां निशाचराणां प्रभुः स्वामी विभीषणः अपि दशरथप्रभवानुशिष्टः दशरथपुत्ररामानुज्ञप्तः रथान् स्यन्दनान् भेजे आरूरोह। गे रथाः मायाविकल्परचितैः अपि संकल्पमात्रणैवनिर्मितैः अपि तदीयैः विभीषणसम्बन्धिभिः स्यन्दनैः रथैः तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः तुलिता समीकृता कृत्रिमा मायाकृता भक्तिशोभा रचनाशोभा येषान्ते तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न। अयोध्याया रथाः असाधारणशोभासम्पन्नाः आसन् इति भावः ।

संस्कृत सरलार्थ - सानुचरो विभीषणोऽपि रामाज्ञया रथारूढोऽभवत् । संकल्पविशेषनिर्मिता अपि विभीषणरथाः अकृत्रिमैः अयोध्यारथैः साम्यं ना लभन्त।

व्याकरण- सानुप्तवः- अनुप्लवैः सहितः इति। क्षणदाचराणां क्षणं ददातीति क्षणदा "निशानिशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा" इत्यमरः । क्षणदायां चरन्ति ये ते क्षणदाचरास्तेषाम्। दशरथप्रभवानुशिष्टः- दशरथः प्रभवो यस्य सः (बहु०) दशरथप्रभवः, तेन अनुशिष्ट (तू० तत्पु०)। अनुशिष्टः- अनु मायाविकल्परचितैः- मायायाः विकल्पाः (ष० तत्पु०), कृत्रिमा चासौ भक्तिशोभा कृत्रिमभक्तिशोभा (कर्म धा०) तुलिता कृत्रिमभक्तिशोभा येषान्ते (बहु०)। + शास् क्त।

विशेष- अयोध्या के रथ राक्षसों से कृत्रिम मायावी रथों से अधिक सुन्दर और स्वाभाविक थे, अतः मायावी रथों से उनकी कोई तुल्यता न थी। यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार है।

छन्द-इसमें वसन्ततिलका है।

प्रसंग- अयोध्यापुरी में प्रवेश के लिए राम पुनः पुष्पक विमान पर आरुढ़ हुए-

भूयस्ततो रघुपति विलसत्पताकमध्यास्त कामगति सावरजो विमानम् ।
दोषातनं बुधवृहस्पतियोगदृश्यस्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम् ॥ ७६ ॥

अन्वय- ततः सावरजः रघुपतिः विलसत्पताकं कामगतिं विमानम् भूयः बुधवृहस्पतियोगदृश्यः तारापतिः दोषातनं तरलविद्युत् अभ्रवृन्दम् इव अध्यास्त।

शब्दार्थ- ततः = इसके पश्चात्। सावरजः छोटे भाइयों (भरत और लक्ष्मण) के साथ। रघुपतिः = रामचन्द्र। विलसत्पताकं पताकाओं से सुशोभित होने वाले। कामगति = स्वेच्छ से चलने वाले। विमानम् पुष्पक विमान पर। भूयः फिर से। बुधवृहस्पतियोगदृश्यः - • बुध और वृहस्पति के योग से दर्शनीय। तारापतिः = चन्द्रमाः। दोषातनम् - रात्रिकालीन। तरलविद्युत् चञ्चल बिजली वाले। अभ्रवृन्दम् इव = मेघ समूह पर जैसे अध्यास्त - आरुढ़ हुए।

अनुवाद- इसके बाद (सुग्रीव विभीषणादि के रथारुढ़ हो जाने पर) छोटे भाइयों के साथ रामचन्द्र जी ध्वजाओं से सुशोभित स्वेच्छा से चलने वाले पुष्पक विमान पर फिर से उसी प्रकार आरुढ़ हुए जैसे बुध और वृहस्पति के योग से दर्शनीय चन्द्रमा, रात्रिकालीन चञ्चल बिजली वाले मेघ समूह पर आरुढ़ होता है।

भावार्थ- विभीषणादि के रथारुढ़ हो जाने पर भाइयों सहित राम, पुनः पताकों से शोभित स्वेच्छागति पुष्पक विमान पर उसी प्रकार आरुढ़ हुए जैसे बुध गुरु योग से शोभायमान चन्द्रमा रात्रिकालीन चञ्चलविद्युत् से युक्त मेघ समूह पर आरुढ़ होता है।

संस्कृत टीका- ततदस्तनन्तरम् सावरजः अनुजाभ्यां सहितः रघुपतिः राजा रामचन्द्रः विलसत्पताकम् ध्वजाभिः सुशोभितम्, कामगति स्वेच्छाचारि विमानं पुष्पकविमानं भूयः पुनरपि, बुधवृहस्पतियोगदृश्यः- बुधगुरु नक्षत्रम्यः दर्शनीयः तारापतिः चन्द्रमाः दोषातनं रात्रिसम्बन्धि तरलविद्युत् चञ्चल सौदामनीकम् अभ्रवृन्दमिव मेघमण्डलमिव। अध्यास्ताधिष्ठितवान् ।

संस्कृत सरलार्थ- बुधवृहस्पतिभ्यां युक्तरचन्द्रो यथा रात्रौ तरत्रविधुत्समन्वितं मेवमारुह्य शोभते तथैव श्री रामचन्द्रः भरतलक्ष्मणसमेतः पताकाभिः शोभमानं पुष्पकमारूरोह।

व्याकरण- विलसत्यताकम् - विलसत्यः पताकाः यस्मिन् तत् (बहु०)। कामगति - कामेन गतिः यस्य तत् (बहु०) सावरजः अवरस्मिन् काले जातौ अवरतौ ताभ्यां महितः। दोषातनम् - दोषा भवम् इस अर्थ में दोषा शब्द से "सायं चिरं प्रार्हं प्रगे०" इत्यादि सूत्र से ट्युल् प्रत्यय तथा तुट् का आगम होकर दोषातन बना। बुधवृहस्पति-योगदृश्यः- बुधश्च वृहस्पतिश्चेति बुधवृहस्पती तयोर्योगः तेन दृश्यः (तृ० तत्पु०)। तारापतिः- ताराणां पतिः (ष० तत्पु०)। तरलविद्युत्- तरला विद्युत् यस्मिन् तत् (बहु०)। अभ्रवृन्दम्-अभ्राणां वृन्दं (६०

तत्पु०)। अध्यास्त मे अधिपूर्वक आस् धातु होने के कारण "अधिशीङ्ख्यामां कर्म" सूत्र से विमानम् और अभ्रवृन्दम् में आधार में कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है।

विशेष- ज्योतिष शास्त्र के अनुसार बुध और वृहस्पति से युक्त चन्द्रमा होने पर उसकी शोभा अधिक बढ़ जाती है वह चन्द्रमा उच्च का कहलाता है। भरत और लक्ष्मण प्से युक्त राम भी उसी प्रकार शोभायमान हो रहे थे। छन्द-इस श्लोक में उपमालंकार है वसन्ततिलका है।

प्रसंग- भरत ने जनकनन्दिनी सीता की वन्दना की-

तन्त्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वीवर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः ।

रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकुच्छात् प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं भरती ववन्दे । 77 ।

अन्वय- तत्र जगताम् ईश्वरेण प्रलयात् उर्वीम् इव, वर्षाऽत्ययेन अध्रवनात् इन्दोः रुचम् इव रामेण दशकण्ठकुच्छात् प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं मैथिलसुतां भरतो ववन्दे ।

शब्दार्थ- तत्र उस विमान में। जगताम् ईश्वरेण संसार के स्वामी (आदि वराह) ने। प्रलयात् = प्रलयकाल के जल से। उर्वीम् इव पृथ्वी के समान। वर्षाऽत्ययेन - वर्षा ऋतु के बीत जाने पर शरदागम ने। अभ्रघनात् मेघमण्डल से। इन्दोः -चन्द्रमा कीः। रुचम् इव चाँदनी के समान। रामेण रामचन्द्र जी के द्वारा। दशकण्ठकुच्छात् = रावण रूप आपति से। प्रत्युद्धृताम् उद्धार की गई। धृतिमतीं -धैर्यशालिनी। मैथिलसुतां = सीता की। भरतः भरत श्री ने। ववन्दे वनछना की, अर्थात् प्रणाम किया।

अनुवाद- उस विमान में संसार के स्वामी (आदिवाराह भगवान् द्वारा) प्रलयकाल के जल से (उद्धृता) पृथ्वी के समान, वर्षा ऋतु के बीत जाने पर

(शरद ऋतु द्वारा) मेघमण्डल से चन्द्रमा की चाँदनी के समान, रामचन्द्र जी के द्वारा रावणरूप आपत्ति से उद्धार की गई धैर्यशालिनी सीता की भरत जी ने वन्दना की।

भावार्थ- जैसे आदिवाराहावतार भगवान् ने प्रलयकाल के जल से पृथिवी का और शरदागम ने मेघसमूह से चाँदनी का उद्धार किया था, उसी प्रकार रावणरूप विपत्ति से राम के द्वारा उद्धृता, सन्तोषकरी सीता की भरत ने वन्दना की।

संस्कृत टीका- तत्र तस्मिन् पुष्पकनाम्नि विमाने, जगतामीश्वरेण लोकानां स्वामिना आदिवाराहरूपेण भगवता, प्रलयात् कल्पान्तात् (उद्धृताम्) उर्वीम् इव पृथ्वीमिव, वर्षात्ययेन शरदागमेनाभ्रघनात् मेघमण्डलात् इन्द्रोः चन्द्रमसः रुचमिव कान्तिमिव, रामेण रामचन्द्रेण दशकण्ठकुच्छात् रावण संकटात् प्रत्युद्धृतां प्रत्युन्मोचितां धृतिमती धैर्यशालिनी सीतां जनकपुत्री भरतः कैकेयीसुतः ववन्दे अभिवन्दितवान् ।

संस्कृत सरलार्थ- तस्मिन् विमाने, आदिवाराहेण प्रलयात् उद्धृताम् पृथिवीमिव, शरदागमेन मेघमण्डलात् उद्धृताम् चन्द्रमसः कान्तिम् इव, रावणरूपसंकटात् रामेण उद्धृताम् धृतिमती जानकी भरतः ववन्दे।

व्याकरण- वर्षात्ययेन वर्षायाः अत्ययः यस्मिन् तेन (बहु०)। अभ्रघनात्- अभ्राणां घनञ् अभ्रघनं तस्मात् (ष० तत्पु०;)। दशकण्ठकुच्छात्- दश कण्ठाः यस्य सः (बहु०) से एक कुच्छ तस्मात्। प्रत्युद् धाताम् प्रति उद् धृष् क्त + टाप् । धृतिमतीम् प्रशस्ता धृतिः यस्या सा ताम् धृति मतुप् डीप् मैथिलसुताम् - मिथिला निवासी यस्य सः, मैथिलः- "तस्य निवासः" सूत्र से अण् प्रत्यय मिथिला अण् मैथिलः, मैथिलस्य सुत्ता ताम् (ष० तत्पु०) ववन्दे वदि (अभवादनार्थक) धातु से लिट् लकार प्रथम पु० एकवचन।

विशेष- इस श्लोक में कवि ने सीता के अनेक उपमान प्रस्तुत किये हैं। साथ ही रावण के चंगुल से राम के द्वारा मुक्त कराई गई सीता की घटना की

भी सामान्तर दो घटनायें प्रस्तुत कर कवि ने सीता की सुन्दरता और पवित्रता का आख्यान किया है। प्रथम घटना-प्रलयकालीन महाजल में डूबी हुई पृथ्वी का या हिरण्याक्ष नामक दैत्य के द्वारा पाताल ले जाई गई पृथ्वी का जैसे स्वयं भगवान् ने वाराह रूप धारण कर उद्धार किया था, उस समय जल से स्नात पृथ्वी का सौन्दर्य कुछ अद्भुत ही था। द्वितीया घटना-वर्षाकाल में मेषों से चन्द्रमा को बँक लेने पर उसकी चाँदनी मलिन हो जाती है किन्तु शरद् ऋतु मेषों को साफ कर चन्द्रमा को मुक्त कर चाँदनी के सौन्दर्य को निखार देती है। अतः शरद् पूर्णिमा को चाँदनी की कुछ अद्भुत ही छटा होती है। इसी प्रकार भगवान राम ने रावण द्वारा, अपहृत सताई गई सीता को रावण वध कर मुक्त किया ऐसी जो धैर्यशालिनी, आपत्तियों को पार कर निकली हुई सीता थी, उस सीता की भरत ने वन्दना की। अतः यहाँ एक ही उपमेय सीता के पृथ्वी और चाँदनी दो उपमान प्रस्तुत करने के कारण मालोपमा अलंकार है।

छन्द-इस श्लोक में भी वसन्ततिलका है।

प्रसंग- कवि भरत और सीता की पवित्रता का आख्यान करता हुआ कहता है-

**लङ्केश्वर प्रणतिभङ्गदृढव्रतं तद् वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः ।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधोरन्योन्यपायन मभूदुभयं समेत्य । ॥७८॥**

अन्वय- लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं जनकात्मजायाः वन्धं तत् चरणयोः युगं ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं साधोः अस्य शिरः च उभयं समेत्य अन्योन्यपावनम् अभूत्

शब्दार्थ- लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं रावणकृत प्रमाणों को भङ्ग करने से

अखण्ड सतीव्रत वाले। जनकात्मजायाः सीता जी के। वन्हां वन्दनीय। तत् वे चरणयोः। युगं - दोनों चरण। ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम् बड़े भाई (राम) के अनुसरण करने के कारण जटाओं वाला। साधोः सज्जन। अस्य इन भरत जी का। शिरंः च - शिर। उभयं दोनों। समेत्य मिलकर। अन्योन्यपावनम् = एक दूसरे को पवित्र करने वाले। अभूत् हुए।

अनुवाद - रावणकृत प्रमाणों का तिरस्कार करने से अखण्ड या दृढ़ सतीव्रत वाले सीता जी के वन्दनीय वे दोनों चरण और बड़े भाई (राम) का अनुसरण करने के कारण जटाओं से युक्त सज्जन भरत जी का सिर (ये) दोनों मिलकर एक दूसरे को पवित्र करने वाले हुए।

भावार्थ- रावणकृत अनेक अनुनयों का तिरस्कार कर देने से अखण्ड पातिव्रत्य वाले सीता के वन्दनीय वे दोनों चरण तथा राम के प्रति भक्ति के कारण जटाधारी भरत का मस्तक ये दोनों उस समय मिलकर परस्पर पवित्र करने वाले हुए। सीता के चरणद्वय इस लिये पवित्र एवं वन्दनीय थे क्योंकि उन्होंने रावण की प्रणतियों का तिरस्कार कर पतिव्रत की रक्षा की थी। भरत का मस्तक इस लिये पवित्र था क्योंकि उन्होंने राम पर भक्ति के कारण राज्यभोग छोड़कर तपस्वियों जैसे जटायें धारण कर ली थीं। भरत का मस्तक सीता चरणों से मिलकर दोनों ही एक दूसरे को अधिक पवित्र करने वाले बन गये थे।

संस्कृत टीका- नङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम् लङ्केश्वरस्य रावणस्य प्रणतीनां प्रणामानां भङ्गेन निरासेन दृढं पुष्टमखण्डं वा पातिव्रतं सस्य तत् जनकात्मजायाः सीतायाः वन्धं प्रणम्यं तत् चरणयोः युगं पादयुग्मं तथा च ज्येष्ठानुवृत्त्या अग्रजरामानुसरणेन जटिलं जटाभिः सम्पन्नं साधोः सज्जनस्यास्य भरतस्य शिरश्च मस्तकं शचेति उभयं समेत्य द्वयं मितित्वाऽन्योन्यापावनं परस्परपवित्रीकरणसमर्थम् अभूत् अभवत् ।

संस्कृत सरलार्थ- रावणकृतानेकप्रणातिनिरोधक मत एवं नमस्करणीयं पातिव्रत्यसमन्वितं सीताचरणद्वयम्, अर्थ च स्वज्येष्ठभ्रातृरामानुवृत्तिजटिलो भरतमस्तकश्चै तद्वयं मिलित्वा अन्योन्य पावनमभूत्।

व्याकरण- अङ्केश्वरप्रणातिभङ्गदृढव्रतम् - लङ्कायाः ईश्वरः लङ्केश्वरः (ष० तत्पु०) तस्य प्रणतयः तासां भङ्गेन (प० तत्पु०) दृढं व्रतं यस्य तत्। जनकात्मजाया :- जनकस्य आत्मजा तस्याः (घ० तत्पु०)। ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम् - अतिशयेन प्रशस्यः ज्येष्ठः - प्रशस्य शब्द से इष्ठम् प्रत्यय तथा प्रशस्य के स्थान पर 'ज्य' आदेश होकर ज्येष्ठ शब्द बना। अनुवर्तनाम् अनुवृत्तिः, ज्येष्ठय अनुवृत्तिः ज्येष्ठानुवृत्तिः तथा जटिलम् (तृ० तत्पु०) समेत्य-सम् + आङ् + इण् + त्वा (ल्पप्)। अन्योन्यपावनम् - पावयतीति पावनम् - पृङ् + णिच् + ल्यूट् (अन्), अन्योन्यस्य पावनम् अन्योन्यपावनम् (ष० तत्पु०) ।

विशेष- यहाँ सीता के चरणयुगल और भरत के शिर में विशेषताओं का उल्लेख कर दोनों में पवित्रता का आधान किया गया है। सीता के चरण युगल इसलिए वन्दनीय एवं पवित्र हैं क्योंकि उन्होंने रावणकृत प्रमाणों का तिरस्कार का राम के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा का प्रदर्शन किया था, अतएव पराधीन होने पर भी सीता का पतिव्रत धर्म बना रहा। दूसरी ओर भरत जी ने प्राप्त राज्यलक्ष्मी को भोग न कर राम के समान वनवासी जीवन धारण कर जटाओं को बढ़ा लिया था अतः राम के प्रति प्रगाढ़ भक्ति के कारण उनका सिर भी पवित्र था, इस प्रकार भरत ने जब सीता के चरणों पर सिर रखकर उनका अभिवादन किया तो कवि कहता है कि वे दोनों अत्यन्त पवित्र थे और एक दूसरे को पवित्र करने वाले थे।

इस प्रकार यहाँ अन्योन्य नामक अलंकार है। लक्षण-

अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम् । त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया॥ (चन्द्रालोक)

छन्द-इस श्लोक में भी वसन्ततिलका है।

प्रसंग- विमान से आधा कोस चलकर अयोध्या के उपवन में शत्रुघ्न द्वारा बनाये गये स्वागत स्थल पर उतर कर राम ने निवास किया-

**क्रोशार्धं प्रकृति पुरः सरेण गत्वा काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः साकेतोपवन मुदार मध्युवास॥79॥**

व्याकरण- काकुत्स्थः- ककुत्स्थस्यगोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थः ककुत्स्थ + अण् । प्रकृतिपुरः सरेण-पुरः सरन्तीति पुरः सर्यः, प्रकृतयः पुरः सर्यो यस्य तेन (बहु०)। स्तिमितजवेन - स्तिमितो जवो यस्य सः तेन (बहु०)। क्रोशार्द्धम्-क्रोशस्य अर्द्धं क्रोशार्द्धम् (६० तत्पु०) शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यम्-शत्रुघ्नेन प्रतिविहिता उपकार्या यस्मिस्तत् (बहु०)। "उदरोदातमहतोः" इस अमरकोश के कथानुसार यहाँ उदार का अर्थ महान् विशाल है। साकेतोपवनम् - साकेतस्य उपवनम् इति (ष० तत्पु०)। यहाँ 'अध्युवास' में अधि पूर्वक वस् धातु का प्रयोग होने के कारण "उपान्वध्याइवसः" सूत्र से उपवन में आधार की कर्म संज्ञा हुई जिससे द्वितीय विभक्ति में उपवनम् का प्रयोग हुआ है।

विशेष- वायुयान अवतरण स्थल पर भरत कृत पूजा को स्वीकार कर राम पुनः उसी पुष्पक विमान से अयोध्या के समीपवर्ती उपवन में जाकर ठहरे जहाँ शत्रुघ्न ने अनेक तम्बुओं आदि को लगाकर रुकने की व्यवस्था की थी। राम के लिए काकुत्स्थ का प्रयोग किया गया है राम के वंश में पहले पुरञ्जय नाम के कोई पराक्रमी राजा हुए थे जिन्होंने देवासुर संग्राम में वृषरूपधारी इन्द्र के ककुद् (पीठ के माँस) (ठिठौरी) पर चढ़ कर राक्षसों को पराजित किया था, तब से उन पुरञ्जय का ककुत्स्थ नाम पड़ गया। उन्हीं के वंश में राम हुए अतः वे भी काकुत्स्थ कहलाये। महाकाव्य के लक्षणानुसार इस सर्ग का अन्तिम श्लोक होने

के कारण कवि ने इसमें सम्पूर्ण सर्ग में प्रयुक्त उपजाति (इन्द्र वज्रा, उपेन्द्र वज्रा) एवं वसन्ततिलका से भिन्न प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग किया है।

1. श्रीराम के प्रति भरत की भक्ति किस श्लोक में **विशेष** रूप से प्रकट होती है?
 - A. श्लोक 61
 - B. श्लोक 65
 - C. श्लोक 68
 - D. श्लोक 70
2. राम के अयोध्या लौटने पर नगर की स्त्रियाँ किस प्रकार की अभिव्यक्ति करती हैं?
 - A. भय व्यक्त करती हैं
 - B. उपेक्षा करती हैं
 - C. आनंद और उत्सव करती हैं
 - D. क्रोध प्रकट करती हैं
3. राम के राज्याभिषेक का वर्णन किस भाव से किया गया है?
 - A. शोक भाव
 - B. हास्य भाव
 - C. उत्सव एवं उल्लास भाव
 - D. घृणा भाव
4. श्लोक 70 में 'राजलक्ष्मी' किसके लिए प्रयुक्त हुआ है?
 - A. सीता के लिए
 - B. कौशल्या के लिए
 - C. भरत के लिए
 - D. राम के लिए
5. श्लोक 75 के अनुसार, अयोध्यावासियों की कैसी दशा चित्रित की गई है?
 - A. वे संतप्त हैं
 - B. वे विषाद में हैं
 - C. वे हर्षोल्लास में हैं
 - D. वे निष्क्रिय हैं

6. किस श्लोक में यह उल्लेखित है कि सीता भी प्रसन्न मन से अयोध्या लौटती हैं?
- श्लोक 66
 - श्लोक 71
 - श्लोक 74
 - श्लोक 78
7. अयोध्या की शोभा का वर्णन किस प्रकार से किया गया है?
- उजड़ी हुई नगरी के रूप में
 - पर्वोत्सव के समान सजी हुई नगरी के रूप में
 - शोकाकुल नगरी के रूप में
 - युद्धग्रस्त नगरी के रूप में
8. 'भरतः शिरसा रामं नमयामास' पंक्ति में कौन-सा भाव प्रधान है?
- वीर रस
 - भक्ति भाव
 - हास्य रस
 - अद्भुत रस
9. श्लोक 73 में नगर के कौन-से पक्ष का विशेष चित्रण किया गया है?
- महलों का
 - सैनिकों का
 - स्त्रियों और बालकों का
 - बाजार का
10. राम के राज्यारोहण के समय किसका विशेष योगदान चित्रित किया गया है?
- वशिष्ठ ऋषि का
 - हनुमान का
 - लक्ष्मण का
 - सीता का

4.4 सार - संक्षेप

रघुवंश में श्लोकों के द्वारा राम सीता संवाद तथा इनसे सम्बद्ध दृश्यों को प्रस्तुत किया गया है, उनके कव्यतत्वों, व्याकरणिक दृष्टि से अध्ययन कर इस इकाई में समन्वित किया है। रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में 40 श्लोक पर्यंत व्याख्या कर इनके माध्यम से राम सीता संवाद में वर्णित तत्वों का अध्ययन किया गया है। राम सीता संवाद के अंतर्गत अयोध्या तक के मार्ग में समुद्र, आकाश, वन तथा अन्य प्राकृतिक तत्वों का जो वर्णन किया गया है, उनसे सम्बद्ध श्लोक के माध्यम से सप्रसंग व्याख्या कर उन दृश्यों को सार रूप में संस्कृत भाषा में प्रस्तुत किया गया है, जिनकी हिन्दी व्याख्या से इनके विविध पक्षों अन्वय, टिप्पणी द्वारा इकाई में समन्वित किया गया है।

4.5 मुख्य शब्द

1. रघुनंदन -राम का एक अन्य नाम
 2. व्युत्क्रम- छोड़कर
 3. तेषु -उन
 4. रामेण- राम के द्वारा
 5. साकेत- अयोध्या का एक अन्य नाम
-

4.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर: C. श्लोक 68
2. उत्तर: C. आनंद और उत्सव करती हैं
3. उत्तर: C. उत्सव एवं उल्लास भाव
4. उत्तर: D. राम के लिए
5. उत्तर: C. वे हर्षोल्लास में हैं
6. उत्तर: D. श्लोक 78
7. उत्तर: B. पर्वोत्सव के समान सजी हुई नगरी के रूप में
8. उत्तर: B. भक्ति भाव
9. उत्तर: C. स्त्रियों और बालकों का

10.उत्तर: A. वशिष्ठ ऋषि का

4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्री चंद्रबली पाण्डेय, कालिदास, मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1954 ।
2. रमाशंकर तिवारी ,महाकवि कालिदास, चौखंबा विद्या भवन ,वाराणसी 1961।
3. रेवा प्रसाद द्विवेदी, कालिदास ग्रंथावली, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,1976 ।
4. आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी,कालिदास ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ,लखनऊ, 2014।
5. डॉ शोभा भरद्वाज, रघुवंशम- महाकवि कालिदास , युवराज पब्लिकेशन, आगरा, 2021

4.8 अभ्यास प्रश्न

1. राम भरत मिलन का वर्णन श्लोक के माध्यम से कीजिए।
2. अयोध्या आगमन पर श्री राम की छवि का वर्णन कीजिए।
3. राम के अयोध्या आगमन के क्षणों में राज्य के मंत्रियों की मनोदशा का वर्णन कीजिए।
4. लक्ष्मण भरत के परस्पर मिलन का सविस्तर विवेचन कीजिए।

इकाई -5

श्री हर्ष की भाषा शैली

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 'नैषधीयचरितम्' का अलंकार- सौन्दर्यः
- 5.4 नैषधीयचरितम् का भावपक्ष एवं कलापक्षः
- 5.5 सार संक्षेप -
- 5.6 मुख्य शब्द
- 5.7 स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के-उत्तर
- 5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 5.9 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

विगत इकाइयों में नैषधीय चरितम् के कुछ अंश का अध्ययन करने के पश्चात अग्रभाग के अध्ययन की सरलता के लिए श्री हर्ष की भाषा शैली का ज्ञान होना आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में नैषधीयचरितम् के रचयिता श्री हर्ष की भाषा शैली का अध्ययन किया जाएगा। अतः रचयिता की भाषा शैली में विद्यमान रस अलंकार की विशेषता के साथ उनकी कला पक्ष, भाव पक्ष का अध्ययन किया जाएगा। श्री हर्ष की भाषा शैली का अध्ययन करने से श्लोकों की व्याख्या तथा महाकाव्य के प्रतिपाद्य विषय की साहित्यिक महत्व को प्रतिपादित किया जा सकेगा। अतः इकाई में हर्ष की भाषा शैली के अंतर्गत भाव पक्ष कला पक्ष काव्य तत्व आदि का अध्ययन किया जाएगा।

5.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. श्री हर्ष की भाषा शैली से परिचित हो सके।
2. काव्य तत्वों के प्रति श्री हर्ष के कार्यों को समझ सके।
3. भाषा शैली के माध्यम से नैषधीय चरितम् के महत्व का प्रतिपादन कर सकें।
4. नैषधीयचरितम् में विद्यमान काव्य तत्वों का परिचय प्राप्त हो सके।

5.3 'नैषधीयचरितम्' का अलंकार- सौन्दर्यः

श्रीहर्ष ने अलंकारों का प्रयोग अर्थ-पुष्टि के लिए किया है। शब्दालंकारों में उनको अनुप्रास और श्लेष सबसे अधिक प्रिय हैं। यमक का भी कहीं-कहीं छींटा मिलता है, पर बहुत कम। शब्दालंकारों को श्रीहर्ष ने अर्थ में सौन्दर्य बढ़ाने के लिए ही प्रयुक्त किया है।

नैषध में काकु-वक्रोक्ति तथा श्लेष वक्रोक्ति दोनों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। चतुर्थ सर्ग में विरहतप्त दमयन्ती और सखियों के संलाप में काकु तथा श्लेष की उभयजनित वक्रोक्ति दिखाई पड़ती है। यथा-

"अकरुणादवसूनशरादसून् सहजयाऽपि धीरतयात्मनः।"

"व्रज धृतिं त्यज भीतिमहेतुकामयंचण्डमरीचिरुदञ्चति ॥"

"ज्वलयति स्फुटमातपमुर्मरैर्नुभवं वचसा सखि ! लुम्पसि ॥

सखी की उक्ति है-

"सुन्दरि, विपत्ति में अपनी सहज धीरता के द्वारा इस निष्करुण कुसुम-शर (काम) से अपने प्राणों को बचाओ।"

इस पर दमयन्ती उत्तर देती है-

"आज मेरे प्राण ही तो विरोधी हो रहे हैं, फिर सखि तुम (न जाने) क्यों मुझे इन 'शत्रुओं की रक्षा' करने को कहती हो।" यहाँ सखी दमयन्ती के जिन प्राणों का इष्ट पदार्थ के रूप में उल्लेख करती है, दमयन्ती अपने उपेक्षात्मक कण्ठस्वर के द्वारा उन्हें ही अपना शत्रु और उनकी रक्षा को आश्चर्य का विषय बताती है; फिर जब सखी कहती है-

"सुन्दरि, धैर्य-धारण करो। अकारण भय छोड़ो यह शीतांशु उदय हो रहा है।"

इस पर दमयन्ती उत्तर देती है-

"यह आतपरूप चिनगारियों से स्पष्ट जल रहा है। सखि, तू मेरे इस प्रत्यक्ष अनुभव को अपनी बात से उड़ा रही है।"

इसी प्रसंग में श्लेष वक्रोक्ति का भी अतिमनोरम रूप देखने को मिलता है। यथा-

अमृतदीधितिरेष विदर्भजे ! भजसि तापममुष्य किमंशुभिः ।"

"यदि भवन्ति मुताः सखि चन्द्रिकाः शशभृतः क्व तदा परितप्यते ॥"

सखी की उक्ति है-

"अरे वैदर्भी यह अमृतांशु (चन्द्र) है, इसकी किरणों से तुझे ताप क्यों हो रहा है ?"

दमयन्ती उत्तर देती है-

"सखि, इस शशांक की किरणें यदि मृत होतीं तो परिताप ही क्यों होता ?"

यहाँ अमृत का अर्थ सखी ने 'सुधा' रखा था, किन्तु दमयन्ती ने 'न मरी हुई' लिया।

श्लेष-काकु-उभय-प्रयुक्त वक्रोक्ति के कई चमत्कारपूर्ण उदाहरण सत्रहवें सर्ग में देव-कलि के वाक्कलह में मिलते हैं।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

शब्दालंकारों में श्रीहर्ष को अनुप्रास अलंकार सबसे अधिक प्रिय है। अनुप्रास में भी उन्हें शब्द के अन्तिम वर्णों की क्षमता अधिक प्रिय है। जैसे-

**"प्रथमचरमयोर्वा शब्दयोर्वर्णसख्ये
विलसति चरमेनुप्रासभासां विलासः ॥**

"शब्दों में आदि तथा अन्त के वर्णों के समान होने पर भी अनुप्रास अलंकार अन्तिम वर्णों में अधिक प्रिय लगता है।" इसी श्लोकार्थ के प्रथम समस्त पद में 'म' छेकानुप्रास का तथा अन्तिम चरण में 'स' द्वारा वृत्यानुप्रास का सौन्दर्य है। श्रीहर्ष ने यमक का भी अनेक स्थलों में प्रयोग किया है। यथा-

**"अवलम्ब्य दिदक्षयाम्बरे क्षणमाश्चर्यरसालसं गतम् ।
स विलासवने वनीभृतः फलमैक्षिष्ट रसाल संगतम् ॥"**
**"नभसः कलभैरुपासितं जलदैर्भूरितरं क्षुषं नगम् ।
स ददर्श पतङ्ग-पुङ्गवो विटपच्छन्न-तरक्षु पन्नगम् ॥"**

श्रीहर्ष ने काव्य-चमत्कार के लिए श्लेष का अत्यधिक प्रयोग किया है। जहाँ कहीं भी उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति का विलास दिखाना चाहा है, वहाँ श्लेष का प्रधान आश्रय लिया जाता है। श्लेष दो प्रकार का होता है- (१) शब्दगत, (२) अर्थगत। यथा-

"का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाभिलाषं कथवेदलज्जा ॥"
चैतो नलङ्कामयते मदीयं नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम् ॥"

यहाँ 'द्विजराज पाणिग्रह' पद के (१) द्विजराज (चन्द्रमा) को हाथ से पकड़ना, (२) है द्विज (हंस) के विवाह, (३) है द्विजराज (हंस) अपने विवाह, आदि अनेक अर्थ निकलते हैं। आगे हंस ले दमयन्ती की ही उक्ति है-

"मेरा चित्त नल को चाहता है, इसे और कहीं अन्यत्र अभिलाषा नहीं है।"

यहाँ 'नलंकामयते' पद के (१) नल को चाहता है, (२) लंका नहीं जाता, आदि अर्थ सभङ्ग श्लेष द्वारा निकलते हैं।

श्लेष का अत्यन्त प्रौढ़रूप स्वयंवर में बैठे पाँच नलों के परिचय में दिखाई पड़ता है। प्रत्येक के परिचय में अनेक श्लोक कहे गये हैं।

शब्दालङ्कारों के समान अर्थालङ्कारों की भी 'नैषधकाव्य' में अतुल समृद्धि है। श्रीहर्ष कल्पना के उत्कृष्ट कलाकार हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, सन्देह और अपहृति-जैसे अर्थालङ्कारों में श्रीहर्ष ने अपनी अनूठी कल्पनाओं को अभिव्यक्त किया है। इनमें अनेक कल्पनाएँ प्रायः शास्त्रों और पौराणिक कथाओं से गृहीत श्रीहर्ष ने उत्प्रेक्षा को बड़ा महत्व दिया है या सम्पूर्ण नैषध उत्प्रेक्षा की सुषमा से जगमगा रहा है। कल्पना करने में प्रवीण कवियों को उन्होंने 'उत्प्रेक्षा कवि' की उपाधि दी है। यथा-

"प्रिये! पश्योत्प्रेक्षाकविरभिधानाय सुशुकः ।

सुधामभ्युद्धर्तुम् धृतशशकनीलाशमचर्षकः ॥"

"प्रिय देखो । उत्प्रेक्षा-कुशल कवियों द्वारा यह कहना बड़ा सरल हो जाता है कि मानो विशाल मटके (चन्द्रमा) पर शशक नाम का नील मणियों का बना हुआ प्याला रखा हुआ है।"

प्रथम सर्ग में नल के घोड़े से सम्बन्धित उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य हृदयंगम है-

"अजखभूमितटकुङ्कनोद्गते रुपास्यमानं चरणेषु रेणुभि ।

रयप्रकर्षाध्ययनार्थमागतैर्जनस्य चेतोभिरिवाणिमाङ्किते ॥"

निरन्तर भूमितल के ताडन से उठी हुई धूलियों से, मानो बेग के प्रकर्ष के अध्ययन के लिए न आये हुए, अनुपरिमाणयुक्त, लोगों के चित्तों से चरणों में सेवा किये जाते हुए नल के चरणों की ऊर्ध्व रेखा के प्रति ओहर्ष को उत्प्रेक्षा है। जैसे-

**"अधोविधानात्कमलप्रबालयोः शिरःसु दानादखिलक्षमाभुजाम्।
पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा पदं किमस्याङ्गातिमध्मरैखया ॥"**

"कमल तथा प्रवाल का तिरस्कार करने के कारण एवं समस्त नरेशों के सिर पर रखे जाने के कारण ये नल-चरण ऊर्ध्व-स्थान भागी होंगे। यह विचार मानो विधि ने पहले से ही कर लिया था, तभी तो नल के चरणों को ऊर्ध्व-रेखा से अंकित कर दिया था।"

यहाँ इतिपर्यन्त वाक्य में हेतुप्रेक्षा है जो किम् प्रयोग के कारण वाच्य हो गयी है।

नल के सम्मुख दमयन्ती की चरण-सुषमा का वर्णन करते हुए हंस कहता है-

**"जलजे रविसेवयेव ये पदमेतत्पदतामवापतुः ।
ध्रुवमेत्यरुतः स हंसको कुरुतस्ते विधिपत्रदम्पती ॥"**

"मानो जिन कमलों ने सूर्य की सेवा करने के कारण दमयन्ती के चरणों की पदवी प्राप्त की है, उन्हें विधि वाहन हंसों के दम्पती (जोड़ा) नूपुर रूप में आकर सुशोभित कर रहे हैं।"

यहाँ 'रविसेवयेव' में क्रिया की वाच्योत्प्रेक्षा है तथा 'ध्रुवं स हंसकीकुरुतः' में श्लेषोत्थापित वाच्योत्प्रेक्षा है, किन्तु सब स्थानों पर पाण्डित्य ही नहीं है। श्रीहर्ष

की अनेक कल्पनाएँ मौलिकता और चमत्कार के साथ-साथ प्रसाद गुण से भी परिपूर्ण हैं। जब नल ने हंस को पकड़ लिया तो उसके साथी अन्य हंसीं ने नाद किया। कविकल्पना करता है कि वह कलहंसनिनाद, मानो सुवर्ण-हंस के पकड़े जाने से रुष्ट होकर उस सर को छोड़कर जाती हुई लक्ष्मी के चरणों के नूपुरों की झंकार है। यथा-

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

"पतन्त्रिणा तद्वचिरेण वंचितं श्रियः प्रयान्त्याः प्रविहाय पल्लवम् ।

चलत्पदाम्भोरुहनृपरोपमा चुकूज कूले कलहंस मण्डली ॥"

लोकव्यवहार पर आधारित अप्रस्तुत भी प्रायः सुन्दर बन पड़े हैं। अत्यन्त पुराने घर की लकड़ियों में चुन लगने से उसके गोलाकार छिद्र द्वार दिखाई पड़ने लगते हैं तथा उनमें घुनी हुई लकड़ी की धूलि गिरने लगती है। कवि कल्पना करता है कि मानो यह लोकाश्रय-ब्रह्माण्ड अत्यन्त पुराना हो गया है जिसमें तारे मानो घुनी के गोलाकार छिद्र द्वार हैं जो अपनी कान्ति को नीचे फैलाते हुए घुनी लकड़ी की धूलि को चारों ओर फैला रहे हैं-

"लोकाश्रयो मण्डपमादिसृष्ट ब्रह्माण्डमामात्यनुकाष्ठमस्य ।

स्वकान्तिरेणूत्करवान्तिमन्ति घुणव्रण द्वारनिभानि भानि ॥"

हेतुप्रेक्षाओं के रूप में कवि की कल्पनाएँ भी अनूती हैं। चन्द्रमा के कलंक पर उनकी एक हेतुप्रेक्षा दृष्टव्य है-

"बदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापानलधूलमञ्जिम।

तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पंकीभवदङ्कतां विधौ ॥"

"इस (नल) की (युद्ध) यात्राओं में जो धूलि, जिसकी शोभा जलते हुए प्रताप रूपी अग्नि के धुएँ के समान थी, सेनाओं से उठी, वही जाकर अमृतसागर में गिरकर कीचड़ बनती हुई चन्द्रमा में (मानो) कलंकता धारण करती है।"

इसी प्रकार 'हरि' के श्लिष्ट प्रयोग पर आधृत एक हेतुप्रेक्षा अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। घोड़े अपने अगले पैरों को आकाश की ओर उठाते हैं, सहसा उन्हें याद आ जाता है कि उनके ही साथ हरि (१, वामन रूप में कृष्ण, २. घोड़ा) ने आकाश को केवल एक पैर से नाप लिया था। ऐसा सोचकर मानो लज्जा से थे फिर अगले दोनों पैरों को पृथ्वी पर रख लेते हैं। यथा-

"हरेर्यदक्रामि पर्दककेन खम् पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य नः ।

त्रपा हरीणामिति नमिताननैरन्यवर्ति तैरधेनीभः कृतक्रमैः ॥

"जिस आकाश को विष्णु के अकेले चरण ने लांघ दिया, उसका चार चरणों से लंघन करने पर भी हम अश्वों के लिए लज्जा की बात है-इस विचार से मानी, मुख झुकाए और आधे आकाश का लंघन कर चुके हुए वे लौट पड़े।"

हर्ष की उत्प्रेक्षा इस प्रकार के विभाव को उपस्थित करती है कि पाषाण हृदय से भी रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। इनकी उत्प्रेक्षाओं में केवल निरर्थक कल्पना ही नहीं है वरन् उनमें रसानुकूल उद्दीपन विभाव को प्रस्तुत कर प्रकृति के मनोरम चित्र को रखने की अपूर्व क्षमता है। ऐसे स्थलों में कवि का माधुर्य गुण माधव के समान रस की वर्षा करता हुआ दिखाई देता है।

गद्य एवं काव्य

उत्प्रेक्षा की कल्पनाएँ पौराणिक कथा को आँखों के सामने प्रस्तुत करती हुई कभी-कभी प्रकृति से इतना तादात्म्य स्थापित करा देती हैं कि पाठक रस निमग्न हो जाता है। वास्तव में कवि ने अत्यधिक मौलिकता और अद्भुत चमत्कार प्रदर्शित किया है। अपने लिए संकेत की गयी 'उत्प्रेक्षा कवि की पदवी' उन्हें बिना हिचक दी जा सकती है।।

वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रश्न

1. श्री हर्ष की भाषा शैली किस भाषा पर आधारित है?
 - (A) प्राकृत
 - (B) पाली
 - (C) संस्कृत
 - (D) अपभ्रंश
2. श्री हर्ष की रचनाओं में कौन-सी शैली प्रमुख रूप से मिलती है?
 - (A) लौकिक शैली
 - (B) आभिजात्य शैली
 - (C) देशज शैली
 - (D) बोलचाल की शैली
3. श्री हर्ष की भाषा की प्रमुख विशेषता क्या है?
 - (A) सरलता
 - (B) व्यावहारिकता
 - (C) अलंकारिकता
 - (D) संवादात्मकता
4. श्री हर्ष की काव्य रचनाओं में कौन-सा अलंकार अधिक देखने को मिलता है?
 - (A) अनुप्रास
 - (B) रूपक
 - (C) उपमा
 - (D) उत्प्रेक्षा
5. श्री हर्ष के नाटकों में प्रयुक्त भाषा कैसी होती है?
 - (A) केवल संस्कृत

- (B) केवल प्राकृत
- (C) संस्कृत और प्राकृत मिश्रित
- (D) पाली और प्राकृत

6. श्री हर्ष की भाषा की एक विशेषता यह है कि वह –

- (A) आमजन की भाषा में लिखते हैं
- (B) शास्त्रीय परंपरा का पालन नहीं करते
- (C) पदों में गूढ़ता एवं क्लिष्टता होती है
- (D) व्याकरण के नियमों को तोड़ते हैं

5.4 'नैषधीयचरितम्' का भावपक्ष एवं कलापक्षः

'नैषध' श्रीहर्ष की अमर रचना है। इसकी कथा महाभारत के वन पर्व के प्रसिद्ध नोपाख्यान से ली गयी है। कांव ने आवश्यकतानुसार कथा में हेर-फेर भी किया है। अनेक स्थलों में कवि की कल्पना ने कथा को सरस तथा आदर्शोन्मुख बनाया है। महाभारत की छः अध्यायों की कथा को अपने २२ सर्गों में निबद्ध किया है।

'नैषध' के २२ (वाईस) सर्गों में नल-दमयन्ती के प्रेम और चिबाह की कथा वड़ी ही सरस शैली में चर्णित है। उनकी प्रथम मिलन रात्रि का रुचिर वर्णन कर अन्य समाप्त होता है। कालिदास आदि की भाँति श्रीहर्ष ने भी अपनी कविता का बाथानक पौराणिक स्रोत से ही लिया है और उस पर प्रखर प्रतिभा की छाप बैठा दी है। 'नैषध' में वास्तविक काव्य-सौन्दर्य तथा शोभातिशायक अलंकारों का मणि-कांचन संयोग है। श्रीहर्ष की कविता संस्कृत-साहित्य की अनुपम निधि है।

शब्दों के सुन्दर विन्यास में, भावों के समुचित निर्वाह में, कल्पना की ऊँची उड़ान में तथा प्रकृति के सजीव चित्रण में यह महाकाव्य, काव्य-जगत् में अपनी सानी नहीं रखता। उनकी स्वभाव मधुर कविता किस सहृदय के मन को

नहीं हर लेती ? शब्द और अर्थ को नवीनता उसे चास्तव में 'एकार्थमत्यजती नवार्थघटनाम्' बना देती है।

'नेपथ' में एक ही विषय में कई श्लोकों का वर्णन मिलेगा, परन्तु सर्वत्र नवीन शब्दावली एवं अभिनय पदशय्या उपलब्ध होती है। शब्द और अर्थ का मनोहर सामंजस्य 'नैषध' में है। श्रीहर्ष की आलोक-सामान्य प्रतिभा से जाज्वल्यमान 'नैषध' रूपी हीरक के सामने 'किरातार्जुनीय' तथा 'शिशुपालवध' काव्यों की आभा फीकी पड़ जाती है-'उदिते तु नैषधे काव्ये क्व माघ व क्व च भारविः।' डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋधि' के अनुसार- श्रीहर्ष के काव्यगत वैशिष्ट्य के अनेकानेक उपादानों में इनके पद-लालित्य का बहुत आदर है। प्रसाद गुण और माधुर्य भाव तो इनकी कृति में प्राचुर्य प्राप्त किये हुए हैं। अनुप्रास, श्रुति-मधुर पदावली का विन्यास पद-पद पर मिलता है, चाहे प्रथम पा को ही क्यों न रखें ? यथा-

"निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथास्तः तथादियन्ते न बुधास्सुधामपि।"

शृंगार तथा अन्य कमनीय रसों में यह महाकाव्य अनुस्यूत है।

डॉ. देवनारायण मिश्र ने भारवि और माघ की अपेक्षा श्रीहर्ष की श्रेष्ठता के विषय में स्वीकार किया है-विविध विधि-विधायिनी संस्कृत काव्य-परम्परा सनातन से सन्तों एवं सदाशयों के हृदयों की रसवादित्ता एवं ज्ञान-आभा से आप्लावित करती रही है।

काव्यगत विशेषताएँ

भावपक्ष - श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य को 'शृंगारामृतशीतगु' शृंगार-रूपी अमृत चन्द्रमा कहा है। रमणी-रूप के वर्णन में, शृंगार रस की मधुर व्यंजना में कचि ने विलक्षण सहृदयता का परिचय दिया है। दमयन्ती के अलौकिक सौन्दर्य का क्या ही अनोखा चित्रण है-

"हतसारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।"

कृतमध्यबिलं विलोक्यते धृत्तगम्भीरखनीखनीलिमा॥"

जान पड़ता है, दमयन्ती के मुख को रचना करने के लिए ब्रह्म ने चन्द्रमा को निचोड़कर उसका सार भाग खाँच लिया है। इसी कारण बीच में छिद्र हो जाने से उसकी उस पार आकाश की नीलिमा दिखाई पड़ती है। दमयन्ती के उरोजी के ऊपर क्या हो अच्छी कल्पना है-

"अपि तद्वपुषि प्रसर्पतोर्गमिते कान्तिझरेषुमाद्यताम् ।

स्मरयौवनयोः खलु द्वयोः प्लवकुम्भौ भवतः कुचानुभौ॥"

दमयन्ती का शरीर कान्ति के झरनों से अथाह हो गया है, अतः उनमें चलने वालों को डूबने का भय सदा बना रहता है, पर दमयन्ती के अंग प्रत्यंग में काम और यौवन का संचार है। वे दोनों अपने को डूबने से कैसे बचायें ? इङ्घते को तिनके का भी सहारा काफी है, इनकी भी दो घड़े मिल गये हैं-ये ही दमयन्ती के दोनों उरोज हैं। इन्हीं के सहारे काम तथा यौवन उसके शरीर रूपी सरोवर में स्वच्छन्द सन्तरण कर रहे हैं।

दमयन्ती नल को वरण करने की इच्छा को कैसे चमत्कारपूर्ण ढंग से व्यक्त करती है-

"मनस्तु यं नोज्झति जातु, यातु मनोरथः कण्ठपथं कथं सः ।

का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाऽभिलापं कथयेदाभिजा॥"

जिस मनोरथ को मन नहीं छोड़ता, जिसे मैंने हृदय में धारण कर रखा है, वह मनोरथ मेरे कंठपथ में बीसे आ सकता है। मन की बात्त वाणी से कैसे कही जाय। हे हंस। कौन कुलांगना राजा (नल) से पाणिग्रहण होने की अभिलाषा स्वयं अपने मुख से व्यक्त करने की धृष्टता कर सकती है ? (या कौन विवेकवतो बाला चन्द्रमा की हाथ से पकड़ने की अभिलाषा कर सकती है ?)

नल के विरह से व्याकुल दमयन्ती की मनोदशा का वर्णन कर विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर वर्णन किया गया है। अग्नि से उत्पन्न हुई दाहव्यथा कोई व्यथा नहीं, वियोगाग्नि से उत्पन्न हुई व्यथा ही उत्कट व्यथा है। नहीं तो स्त्रियाँ मृत पति के साथ प्रत्यक्ष अग्नि में क्यों भस्म हो जातीं (४/४६) चन्द्रमा बिहिणी स्त्रियों का निर्देय घातक ही है-

"अयमयोगिवधूवधपातकैर्भूमिमवाप्य दिवः खलु पात्यते।

शितिनिशाद्यदि स्फुटदुत्पतत् कणगणाऽधिकतारकिताऽम्बरः ॥"

इस चन्द्रमा ने अनेक निरपराध विरहिणी स्त्रियों को मारकर पाप कनाया है। इसी से यह घुमाकर रात्रि-रूपी चट्टान पर आकाश से पटका जाता है। पटके जाने के कारण खण्ड-खण्ड हो जाने पर इसके जो कण चारों ओर बिखर गये, वे ही मानो आकाश में तारों के रूप में चमक रहे हैं।

विद्याधर का यह कहना है- "काव्य सहृदय के मनोरंजन के लिए होता है और काव्य का यह व्यापार रस द्वारा सम्पन्न होता है। यह रस उपाख्यान के एक देश में कुछ मार्गों में भी सम्भव हो सकता है।" बहुत तर्कसंगत नहीं है। एक या कुछ ही श्लोक पूर्ण रस की अभिव्यक्ति कराने में समर्थ होते हैं तो क्या उन्हीं श्लोकों को काव्य मानकर संतोष किया जा सकता है। भावी वियोग के वर्णन में संयोग की परिपुष्टि हो सकती है। यथा-

"न बिना विष्प्रयोगेन संयोगः पुष्टिमश्नुते।

कषायिते हि वरवादी भूयान् रागो विवर्धते॥"

इनकी कविता-कामिनी जब सामुद्रिक विद्या का रहस्य बताती है जब उसके सौन्दर्य के स्वर्ण में पुष्प खिल जाते हैं, जब संगीत की मधुर थारा

प्रवाहित करती है उस क्षण सर्प भी मन्त्रमुग्ध से हो जाते हैं। जब धनुर्विधा के रहस्यों का उद्घाटन करती है तब इसके अपरिमित शक्तित्व का ध्यान आ जाता है, जय विविध प्रकार के अलंकरणों का परिधान धारण कर पाठक के समक्ष अनेक रूपों में अपने सौन्दर्य को बिखेरती है, तब यही प्रतीत होता है कि पूर्णिमा की चाँदनी तारों के गहनों से लदी हुई समुद्र के हृदय पर मनमोहक मधुर लास्य कर रही है।

इस सुन्दरी की राजनीति विद्या देखकर यही प्रतीत होता है कि भारवि और माघ की राजनीति 'नैपथ' में भी लुक-छिपकर विलास कर रही है।

'नैषध' को चतुर्थ सर्ग में वर्णित दमयन्ती की अयोगाबस्थाजन्य विरह-वेदना अत्यन्त मार्मिक योजना है।। कवि ने काम की अनेक अवस्थाओं का चित्रण बहुत ही सफलतापूर्वक पाठक के समक्ष रखा है। दमयन्ती के हृदय में कामदेव के द्वारा छोड़ा गया नल-रूपी बापा भँस गया है। जैसे-

"अथ नलस्य गुणं गुणमात्यमूः

तमिषुमाशु विधाय जिगाय तां।।"

उसे किसी भी प्रकार निकांला नहीं जा सकता है। इस बाण ने दमयन्ती के फूल से भी कोमल शरीर को अपनी विषम ज्वाला से इतना परितप्त कर दिया है कि शैवाल, कमल नाल और चन्दन को केलप स्पर्श मात्र से शुष्क हर्ष की प्रतिभा ने सम्भोग श्रृंगार की सेज को कुशल सखी की भाँति इतना आकर्षक ढंग से सजा दिया है कि सहृदय उस पर शयन करने के लिए व्याकुल हो जाता है। कपि की दृष्टि और सहृदय-हृदय की प्रमाण मानने पर हंस का विलाप करुण रस का कारण सिद्ध होता है। कवि ने हंस की कराणा के लिए जिन विभावों की सामने रखा है, वे अत्यन्त करुणोत्पादक हैं। हर्ष ने पितृविहीन अनाथ बच्चों का बड़ा ही करुण-चित्र उपस्थित किया है। अन्न के बिना मरते हुए बच्चों को देखकर किस निष्ठुर का हृदय द्रवित नहीं हो जायेगा। यथा-

"दया समुदे स तदाशाऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः।"

"तदास्म दैवेन हतोऽपि हा हतः स्फुटं वतस्ते शिशवः परासवः ॥

तथापि हाहा विरहात् सुधाकुलाः कुलायकूलेषु विलुण्ठतेषु ते।

चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैर्गता क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम॥"

कवि ने उद्दीपन विभाव के रूप में ही हंस विलाप को पाठक के समक्ष रखा है। हंस रोते-रोते मूच्छित हो जाता है। राजा नल अपने आँसुओं से सींचकर उसकी मूच्छा दूर करते हैं। जैसे-

"कथासु शिष्यमध्वमिति प्रमील्यसा।

सुतस्य सेकाद् बुबुधे नृपाश्रुणः ॥"

कवि ने नल को सहृदय के रूप में उपस्थित किया। नल की भाँति सहृदय पाठक का चित्त शोकाकुल हो जाता है। उसकी आँखों से भी अनु धारा प्रवाहित होने लगती है। जो उसके करुण रस के अनुभाव है। कवि ने स्वतः सिद्ध कर दिया है कि हंस-विलाप करुण रस का कारण है। पाठक इसे शोक से भिन्न न समझें, इसलिए कवि ने करुण के साथ-साथ 'शोक' का भी प्रयोग किया है-

"त्यचैव मातः सुतशोकसागरः।"

"प्राकृशोकनिर्गलित नेत्रपयः प्रवाहान् ॥"

हर्ष ने अपने काव्य में शृंगार के उभय-पक्षों का जितना सहज चित्रण किया है, उत्तता अन्य रसों का नहीं। लेकिन इनके अन्य रसों के वर्णन को देखने से इसकी रसज्ञता पर आश्चर्य होता है। वे जिस किसी रस का परिपाक करते हैं वह अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है।

उन्होंने स्वयंवर में भय का चित्रण किया है। देव और कलि के बीच संवाद के अवसर पर क्रोध को भी अभिव्यक्त किया है

"ताद्विस्फुरत्फणविलोकन भूतभीतेः ।

कम्पं च वीक्ष्य पुलकं ततोऽनु तस्या॥"

"तिष्ठ भो तिष्ठ कण्ठोष्ठं कुण्ठयानि हठादयम् ।

अपठु पठतः पाठचमधिगोष्ठि शठस्य ते॥"

नल की चार प्रकार की वीरता का भी इन्होंने अच्छा वर्णन किया है। नल हंस को छोड़ते हुए दयावीर रूप को प्रकट करते हैं-

"स्फुरद् धनुर्निस्वनतद्धनाशु प्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सङ्गरे।

निजस्य तेजः शिखिनः परश्शता वितेनुरिङ्गालमिवायशः परे॥"

"इत्थममुं विलयन्तममुञ्चद्वनीदयालुतयानिपालः ॥"

श्रीहर्ष ने यद्यपि सभी रसों का वर्णन किया है लेकिन प्रमुखता शृंगार रस की है। शृंगार के दो पक्षों का उन्होंने अच्छा चित्र प्रस्तुत किया है।

शृंगार के प्रति इनका सहज अनुराग है।

कला-पक्ष-कालिदासीत्तर कलावादी कवियों में श्रीहर्ष सर्वोत्तम हैं, जिन्होंने सुकुमार-मार्ग की सरसत्ता और विचित्र मार्ग की प्रौढ़ता का समन्वय करके एक अद्भुत महाकाव्य की रचना की है। दुरारूढ़ कल्पनाओं के साथ गम्भीर चिन्तन का, अलंकारों के साथ ध्वनि का एवं शास्त्रगत पाण्डित्य के साथ लोकानुभाव का समन्वय करने में श्रीहर्ष की प्रतिभा अद्वितीय है।

भारवि ने जिरा महाकाव्य-पद्धति का प्रवर्तन किया और माघ ने जिसे आंगे बढ़ाया, उसे आंशिक रूप से ही औहर्ष ने स्वीकार किया। वर्णनों को विपुलता में श्रीहर्ष उन कवियों से आगे बढ़ गये। एक-एक विषय पर

"साप्तुं प्रयच्छति न पक्ष-बतुष्टये तां तल्लाभिंशंसिनि न पञ्चमकोटिमात्रे।

श्रद्धां दधे निषधराड्-विमतौमताना मद्वैततत्त्व इच सत्यतरेऽपि लोकः ॥"

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

इसी प्रकार "हंसा तनी सन्निहितं चरन्तम्" इत्यादि श्लोक में कवि ने योग और वेदान्त दोनों का प्रयोग किया है।

सांख्य के सत्यकार्यवाद का नल के द्वारा प्रतिपादन कराकर कवि ने उनको विद्याओं की उत्कृष्टता दिखायी है। योग में बताया गया है कि ध्यान में मन एकक विषय का चिन्तन करता है। अन्य वस्तुओं की सत्ता ही नहीं रहती। दमयन्ती हृदय में स्थित नल के ध्यान में इतनी निमग्न है कि आँखों के सामने पड़ी हुई वस्तुएँ देखने में भी वह असमर्थ रहती है। यथा-

"नास्ति जन्यजनकव्यतिभेद सत्यमन्नजनितो जनदेहः।"

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्॥"

"मनसि सन्तमिव प्रियमीक्षितुं नयनयोः स्पृहयन्तिरुपेतयोः ।

ग्रहणशक्तिरभूदिदमीययोरपि न सम्मुखवास्तुनि वस्तुनिः ॥"

योग की सम्प्रजात समाधि में ध्यानमग्न होने वाले नल के चरित्र माध्यम के द्वारा कवि ने सम्पूर्ण दर्शनों का सजीव चित्र दर्शाया है। वेदान्त दर्शन के तो ये परम उपासक थे। वेदान्त के प्रतिविम्यवाद का तो उन्होंने अनेक स्थलों पर आलंकारिक वर्णन किया है- "मुक्ति प्राप्त होने पर केवल ब्रह्मा ही शेष रह जाता है।" हर्ष का ये वर्णन सत्रहवें सर्ग में भी देखने को मिलता है। जिस ब्रह्म को मन से नहीं जाना जाता है उसे प्राप्त कर साधक परमानन्द को प्राप्त करता है।

राजा नल से मुक्ति प्राप्त करने वाला हंस उसी आनन्द को प्राप्त करता है।
उदाहरण-

"इत्युदीर्य स हरिं प्रति सम्प्रज्ञातवासिततमः समपादि।"

(२. २१/११२)

"स्वञ्च ब्रह्म च संसारे मुक्ती तु ग्रहाकेवलम् ॥"

(१.२१/२४)

"अधिगत्य जगत्यधीशवरादथ मुक्ति पुरुषोत्तमात्ततः ।

वचसामपि गोचरो न यः स तमानन्दमविन्दति द्विजः॥"

(नं. २/१)

नास्तिक मतं यरस्वती के स्वरूप का निरूपण करते हुए एक ही पद्य में कापालिक दर्शन, शून्यवाद, विज्ञानवाद और साकार-विज्ञान (सौत्रान्तिक) इन चारों सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है-

"या सोमसिद्धान्तमयाननेव, शून्यात्मतावादमयोददेव। विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव, साकारता सिद्धिमयाखिलेव ॥"

"जो सरस्वती मानी सीसिद्धान्त (कापालिक मत, पूर्णचन्द्र) रूपी मुख वाली, शून्यतावाद-रूपी उदरवाली (क्षीण-उदरयुक्त) विज्ञान, सामस्त्य रूप चिन्तवाली (अर्थात् विशिष्ट ज्ञान से भरी) और साकार ज्ञान (सुन्दर आकृति) से भरी अवयों वाली थी।"

नैषधकार ने चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन के सिद्धान्तों का स्थल-स्थल पर प्रतिपादन किया है।

विद्याधर का यह कहना है- "काव्य सहृदय के मनोरंजन के लिए होता है और काव्य का यह व्यापार रस द्वारा सम्पन्न होता है। यह रस उपाख्यान के एक देश में कुछ मार्गों में भी सम्भव हो सकता है।" बहुत तर्कसंगत नहीं है। एक या कुछ ही श्लोक पूर्ण रस की अभिव्यक्ति कराने में समर्थ होते हैं तो क्या उन्हीं श्लोकों को काव्य मानकर संतोष किया जा सकता है। भावी वियोग के वर्णन में संयोग की परिपुष्टि हो सकती है। यथा-

"न बिना विष्प्रयोगेन संयोगः पुष्टिमश्नुते।

कषायिते हि वरवादी भूयान् रागो विवर्धते॥"

इनकी कविता-कामिनी जब सामुद्रिक विद्या का रहस्य बताती है जब उसके सौन्दर्य के स्वर्ण में पुष्प खिल जाते हैं, जब संगीत की मधुर थारा प्रवाहित करती है उस क्षण सर्प भी मन्त्रमुग्ध से हो जाते हैं। जब धनुर्विधा के रहस्यों का उद्घाटन करती है तब इसके अपरिमित शक्तित्व का ध्यान आ जाता है, जय विविध प्रकार के अलंकरणों का परिधान धारण कर पाठक के समक्ष अनेक रूपों में अपने सौन्दर्य को बिखेरती है, तब यही प्रतीत होता है कि पूर्णिमा की चाँदनी तारों के गहनों से लदी हुई समुद्र के हृदय पर मनमोहक मधुर लास्य कर रही है। इस सुन्दरी की राजनीति विद्या देखकर यही प्रतीत होता है कि भारवि और माघ की राजनीति 'नैपथ' में भी लुक-छिपकर विलास कर रही है। 'नैपथ' को चतुर्थ सर्ग में वर्णित दमयन्ती की अयोगाबस्थाजन्य विरह-वेदना अत्यन्त मार्मिक योजना है॥ कवि ने काम की अनेक अवस्थाओं का चित्रण बहुत ही सफलतापूर्वक पाठक के समक्ष रखा है। दमयन्ती के हृदय में कामदेव के द्वारा छोड़ा गया नल-रूपी बापा भँस गया है। जैसे-

"अथ नलस्य गुणं गुणमात्यमूः

तमिषुमाशु विधाय जिगाय तां॥"

उसे किसी भी प्रकार निकांला नहीं जा सकता है। इस बाण ने दमयन्ती के फूल से भी कोमल शरीर को अपनी विषम ज्वाला से इतना परितप्त कर दिया है कि शैवाल, कमल नाल और चन्दन को केलप स्पर्श मात्र से शुष्क हर्ष की प्रतिभा ने सम्भोग श्रृंगार की सेज को कुशल सखी की भाँति इतना आकर्षक ढंग से सजा दिया है कि सहृदय उस पर शयन करने के लिए व्याकुल हो जाता है। कपि की दृष्टि और सहृदय-हृदय की प्रमाण मानने पर हंस का विलाप करुण रस का कारण सिद्ध होता है। कवि ने हंस की कराणा के लिए जिन विभावों की

सामने रखा है, वे अत्यन्त करुणोत्पादक हैं। हर्ष ने पितृविहीन अनाथ बच्चों का बड़ा ही करुण-चित्र उपस्थित किया है। अन्न के बिना मरते हुए बच्चों को देखकर किस निष्ठुर का हृदय द्रवित नहीं हो जायेगा। यथा-

"दया समुदे स तदाशाऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः।"

"तदास्म दैवेन हतोऽपि हा हतः स्फुटं वतस्ते शिशवः परासवः ॥

तथापि हाहा विरहात् सुधाकुलाः कुलायकूलेषु विलुण्ठतेषु ते।

चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैर्गता क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम॥"

कवि ने उद्दीपन विभाव के रूप में ही हंस विलाप को पाठक के समक्ष रखा है। हंस रोते-रोते मूच्छित हो जाता है। राजा नल अपने आँसुओं से सींचकर उसकी मूच्छां दूर करते हैं। जैसे-

पर्याप्त कल्पना का निवेश उन्होंने किया।

अपनी शैली को श्रीहर्ष ने प्रच्छन्न रूप से 'वैदर्भी' बताया है; नल या नैषध काव्य है और वैदर्भी रीति है जिसमें उदारता आदि सभी गुण हैं। निषध' को आकर्षण का विषय यही वैदर्भी (दमयन्ती, रीति) है-

"धन्यासि वैदर्भि ! गुणैरुदारयंया समाकृष्यत. नैषधोऽपि।

इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति॥"

हे वैदर्भि ! तुम अपने उदार गुणों के कारण धन्य हो, क्योंकि तुमसे नषध जैसा धीरोदात्त पुरुष आकृष्ट हो गया। इससे चढ़कर चन्द्रज्योत्सना की प्रशंसा क्या होगी कि विशाल सागर की वह अत्यन्त चंचल कर देती है।

गाड़ी शैली का भी आश्रय लेकर इन्होंने उसे अपनी कोमल पदशय्या पर बिठाकर अपनी सरस कविता-कामिनी का श्रृंगार किया है। पवन नल की सेवा

कर रहा है। इस सेवा की गुरुता कवि के वर्णन से ही अनायास स्पष्ट हो जाती है। वनानिल है लेकिन सेवा-धर्मता नागर की है।

यथा-

"दीर्घः स मासो यस्यां सा गौडीरूपा दीधिति।"

"तत्रावनीन्द्रचयचन्दनचन्द्रलेपने पश्य गन्धवह गन्धवह प्रवाहम् ।

आलीभिरापतदनङ्ग शरानुसारो संरुध्य सौरभमगाहत भृङ्गवर्गः ॥"

"लताऽवलालास्यकलागुरुस्तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः ।

असेवतामुं मधुगन्धवारिणि प्रणी तलीलाप्लवनो वनानिलः ॥"

अलंकारों का ऐसा स्वाभाविक निवेश इस महाकाव्य में किया गया है कि महाकाव्य ही अलंकारमय ही गया है। श्लेष ती सर्वत्र विद्यमान है। नारायणी टीका में विभिन्न अर्थों का स्फुरण किया गया है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति आदि पूरे महाकाव्य में बिखरे पड़े हैं।

कवि पर वक्रोक्ति-सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव है, क्योंकि वे 'वैदग्ध्य भङ्गीभणिति' का चमत्कार सर्वत्र दिखाते हैं। किसी वस्तु को व्यङ्ग्योक्तियों से वक्रतापूर्वक निरूपित करते हैं। १७ सर्ग में कलि की उक्तियों में ब्राह्मण-धर्म, पौरोहित्य, पातिव्रत्य, पाखण्ड आदि पर निर्मम व्यंग्य किया गया है। उत्प्रेक्षालंकार को बड़े कौशल से परम्परागत अप्रस्तुत-योजना में भी नवीन रूप में यहाँ प्रस्तुत किया है-

"हतासारभिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।

कृतमध्यबिलं विलोक्यते, धृतगम्भीर-खनी-ख-नीलिमा॥"

ब्रह्मा ने दमयन्ती के मुख के निर्माण के लिए चन्द्रमा का सार-भाग निकाल लिया है। इसलिए, चन्द्रमा में छिद्र हो गया है और उसके मध्य से आकाश की नीलिमा दिखाई देती है, चन्द्रमा का वह कलंक नहीं है। वक्रोक्ति से पूर्ण एक श्लोक में कवि कहते हैं कि आकाश में तारे कामदेव के बाण-जैसे लगते हैं जो देवताओं और अप्सराओं के लिए छोड़े गये हैं। कामदेव को 'पञ्चशर' (पाँच बाणों वाला) कहा गया है, उसे 'पञ्च' शब्द वस्तुतः 'प्रपञ्च' या विस्तार का वाचक है जैसा कि 'पञ्चानन' शब्द में है-

"मोहाय देवाप्सरसां विमुक्तास्ताराः शराः पुष्पशरेण शङ्के।

पञ्चास्यते पञ्चशरस्य नाम्नि प्रपञ्चवाची खलु पञ्चशब्दः ॥"

श्रीहर्ष ने अपने काव्य में अलंकारों का खूब प्रयोग किया है। शब्दालंकार में श्लेष इनका प्रिय अलंकार है। दमयन्ती के मुख से कवि ने श्लेष की संरचना की विशेषता स्वतः व्यक्त कर दी है। दमयन्ती सरस्वती की श्लेष रचना के विषय में अपने मन में कहती है कि इन्होंने किस प्रकार श्लेष द्वारा वर्णन कर देवताओं का आदर किया और विशेष रूप से मुझे नल की परिचय दे दिया।

हृद की वक्रोक्ति विरहिणी दमयन्ती के मुख से निकलकर उसकी विरहावस्था की असह्यता को वड़ी वारीकी से प्रकट करती है। काकू और श्लेष दोनों में वक्रोक्ति का अच्छा प्रयोग मिलता है। अनुप्रास की छटा तो पूरे काव्य में उसी प्रकार दिखाई देती है जैसे ओस की सुषमा श्यामल वसुधा पर दिखाई देती है। यथा-

"अकरुणादवसून्शरादसून् सहजयापदि धीरतायात्मनः

असव एव ममाद्य विरोधिनः कथमरीन्सखि रक्षितुमात्थ मास्।"

"रुचिफलं सखि । दृश्यत एव।

तज्ज्वलयति त्वचमुल्लसत्त्वसूनु ॥"

"अमृतदीधिति यदि भवन्ति मृताः सखि ।

चन्द्रिकाः शशभृतः क्व तदापरितप्यते ॥"

नमक का प्रयोग इन्होंने कम किया है। रस निष्पत्ति के लिए यमक का प्रयोग उचित भी नहीं होता। श्लेष का तो इन्होंने मेला लगा दिया है। सभङ्गश्लेष को यन्ती कहती है कि कौन-सी निर्लज्ज स्त्री द्विजराज पाणिग्रहण की अभिलाषा करेगी। मेरा चित्त नल की ही चाहता है। तेरहवें सर्ग में देवताओं के परिचय में श्लेषालंकार की छटा देखते ही बनती है। यथा-

"ध्वन्यात्मभूते शृंगारे यमकादिनिबन्धम् ।

शक्तावपि प्रमादित्वं प्रिलम्भे विशेषतः ॥"

"का नाम वाला द्विजराजपाणिग्राभिलाषं कथयेदलज्जा॥"

"चेतो नलङ्गमयते मदीयं नान्यत्र।

कुत्रापि च साभिलाषम् ॥"

श्लेष का प्रयोग करके हर्ष बड़ी क्लिष्टत्ता पैदा कर देते हैं। नैषध' को पंचनली प्रसिद्ध ही है। इस वर्णन में श्रीहर्ष ने अपनी अपूर्व श्लेष चातुरी व्यक्त की है। प्रत्येक श्लोक से दमयन्ती की पाने की इच्छा से आये हुए, देवता तथा राजा नल दोनों का अर्थ निकलता है। यथा-

"देवः पतिर्विदुषी नैषधराजगत्त्या निर्णयते न किमु ना द्वियते भवत्या।

नायं नलः खलु तवातिमहामलाभो यद्येनमुज्झसि वरः कतरः पुनस्तै ॥"

नल के सम्मुख दमयन्ती खड़ी है। इस श्लोक में देवता और नल दोनों का अर्थ व्यञ्जित कर सरस्वती उसे माह में डाल रही है-

हे विदुषी । यह तो देवता हैं, पृथ्वीपति नहीं। बथा तु इन्हें वरमाला नहीं पहनाना चाहती है? मैं सच कहती हूँ यह तेरा नल नहीं किन्तु नल की आभा मात्र है। यदि तू इसे छोड़ देगी तो फिर और कौन तेरा वर होगा ? इसी

शब्दावली में नल की भी छठि निकलती है- है विदुषी। नैषधराज के वश में अपने पति इस राजा को तू क्यों नहीं पहचानती और क्या तू इसे जयमाला पहनाना नहीं चाहती। यदि तू इसे छोड़ देगी तो बड़ी हानि होगी, फिर और कौन तेरा वर होगा। जिस अर्थ-गौरव के लिए भारवि आदि प्रसिद्ध हैं उस क्षेत्र में भी श्रीहर्ष अग्रणी हैं। कुछ प्रसिद्ध वाक्य इस प्रकार हैं-

(१) "क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभागजनः" (१/१०२)- भाग्यवान व्यक्ति को अपनी भोग-सामग्री कहाँ नहीं मिलती।

(२) "चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः" (९/५६)- योग्य व्यक्ति से योग्य का मेल अच्छा लगता है।

(३) "कर्म कःस्वकृमत्र न भुङ्क्ते (९/५६) कौन व्यक्ति अपने किये कर्म का फल यहीं नहीं भीगता।

(४) "प्रतीक्षते जातु न कालमर्ति" (३/९१) दुःख समय की प्रतीक्षा नहीं करता।

(५) "कार्यनिदानाद्धि गुणानधीते" (३/१७) अपने कारण से ही कार्य की गुण प्राप्त होते हैं।

(६) "ब्रुवते हि फलेन साधवो, न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् (२/४८) सज्जन फल द्वारा अपनी उपयोगिता प्रकट करते हैं, कड़कर नहीं।।

किन्तु काव्य को क्लिष्ट करना तो श्रीहर्ष का प्रयोजन ही था-

"ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यास प्रयत्नान्मवा

प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती मस्मिन्खलः खखेलतु।

**श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः ॥"**

अर्थात् "पण्डित होने का वर्ष करने वाला कोई दुःशील मनुष्य इस काव्य के मर्म का हठपूर्वक जानने का चापल्य न कर सके, इसलिए हमने कहीं-कहीं इस ग्रन्थ में ग्रन्थियाँ लगा दी हैं। जो सज्जन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गुरु को प्रसन्न करके इन गूढ़ ग्रन्थियों को सुलझा लेंगे। वे ही इस काव्य के रस की लहरों में हिलोरे ले सकेंगे।"

अर्थालंकार के प्रयोग में हर्ष सिद्ध कलाकार हैं। इनके अर्थालंकार अलंकार के रूप में ही उपस्थित होते हैं। अलंकार्य रूप में इनकी काव्य-वाटिका में कहीं उपमा का रसाल रस बरसता रहता है तो कहीं उत्प्रेक्षा को कोकिला हृदय में विरहमय रस का उद्रेक करती है। इस कोकिला की ध्वनि सुनकर कामदेव अपने पाँच बाणों का एक ही साथ सन्धान कर देता है। कहीं पर अपहृति के भ्रमर-गुञ्जार में विरही की वैदना सुनायी देती है। कहीं पर निदर्शना के विहगों का कामोद्दीपक कलरव मन को मोह लेता है। रूपक की रूपसी का सौन्दर्य तो देखा जा सकता है, किन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

हर्ष के इस उपवन में व्याजस्तुतिरूपी मनमोहक पुष्पों की सुरभि से चित्त आनन्दित हो जाता है। हर्ष के अलंकारों में मौलिकता दिखाई देती है। सम और विषम अलंकारों के प्रयोग में कवि ने उपमानों के सामंजस्य का औचित्य प्रस्तुत किया है। यथा-

मुखरयस्व यशोनवडिण्डिमं जलनिधेः कुलमुज्ज्वलयाधुना।

अपि गृहाण बधूषधपौरुषम् हरिणलाञ्छन मुञ्च कदर्थनाम् ॥

"निशा शशाङ्क शिबया गिरीशं श्रिया हरिं योजयतः प्रतीतः ।

विधेरपि स्वारसिकः प्रयासः परस्परं योग्यसमागमाय ॥"

"अतिशयोक्ति के माध्यम से वस्तु की गम्भीरता व्यक्त करने में हर्ष की प्रतिभा बेजोड़ है। अर्थापत्ति अलंकार तो समुद्र में छिपे हुए रत्नों को निकालने में पूर्ण सक्षम हैं। दमयन्ती की वियोगावस्थाओं की उक्तियों में प्रयुक्त भ्रान्तिनान अलंकार उसकी उन्मादावस्था को बड़ी ही कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त करते हैं।

इस स्थल में अर्जकार वास्तव में अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए ही प्रयुक्त है। अनुमान अलंकार में कवि ने न्याय के अनुमान की प्रक्रिया की रखने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।"

हर्ष की उत्प्रेक्षाओं में तो स्वर्ग को वसुधा पर लाने की कल्पना की चारुता है। उत्प्रेक्षा में उपमानों की सत्ता में लोक में नहीं रहती है। नारायण ने हर्ष को भी 'उत्प्रेक्षा कवि' के रूप में स्वीकार किया है। हर्ष को उत्प्रेक्षाओं में उपना का भ्रम तो होता ही नहीं। चन्द्रमा को कालिमा को सिद्ध करने के लिए कवियों ने बहुत सी कल्पना की लेकिन हर्ष की कल्पना तो अनोखी है। यथा-

"प्रिये पश्योत्प्रेक्षाकविभिरभिधानाय स शुकः।"

"विशिष्टसम्भावनाचतुरैः श्रीहर्षसिद्धभिः ॥"

"बदस्य यात्रासु बलोद्धत रजः स्फुरतप्रतापानलधूममज्जिम ।

तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधी॥"

हर्ष के नल ने दमयन्ती के मुख की चन्द्रमा के समान सुन्दर समझा था, क्योंकि दमयन्ती का मुख तो चन्द्रमा के तत्त्व की निकालकर बनाया गया था। तत्त्व के निकल जाने के कारण चन्द्र के गर्त से आकाश की नीलिमा दिखाई पड़ती है। नैषधकार की उत्प्रेक्षा उपमेय के उत्कर्ष को बताती हुई भावी घटनाओं की अभिव्यक्ति कराती है। दमयन्ती के हृदय में स्मर और नल प्रविष्ट हैं। कवि की दृष्टि में ये दोनों कामुक इन्द्र के द्वारा भेजे गये वैद्य अश्विनीकुमार हैं। कामुक इन्द्र दमयन्ती के सौन्दर्य पर मर रहा है, इसलिए उसने अपने यहाँ से ऐसे वैद्यों को भेजा है जो दमयन्ती की रोगमुक्त कर दें और उसे इन्द्र के अनुकूल कर दें अथवा उसके मन की सारी बात जान कर इन्द्र को सूचना दे दें। यथा-

"न खलु मोहवशेन तदाननं, नलमनः शशिकान्तमवोधि तत् ॥"

"किमु तदन्तरुभौ भिषजी दिवः स्मरनली विशतः हि विगाहितुम् ।

तदभिकेन चिकित्सात्तुमाशु तां मखभुजामधि येन नियोजिती।।"

हर्ष की उत्प्रेक्षा इस प्रकार के विभाव की उपस्थित करती है कि पाषाण हृदय में भी रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। इनकी उत्प्रेक्षाओं में केवल निरर्थक कल्पना ही नहीं है वरन् उनमें रसानुकूल उद्दीपन विभाव को प्रस्तुत करने की शक्ति भी है। ऐसे स्थलों में काँव का माधुर्य गुण माधव के समान रस की वर्षा करता हुआ दिखाई पड़ता है। उत्प्रेक्षा की कल्पनाएँ पौराणिक कथा की आँखों के सामने प्रस्तुत करती हुई कभी-कभी प्रकृति से इतना तादात्म्य स्थापित करा देती है कि पाठक रस निमग्न हो जाता है।

5.5 सार - संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में नैषधीयचरितम के रचयिता श्रीहर्ष की भाषाशैली के अध्ययन के माध्यम से इस महाकाव्य में विद्यमान काव्यतत्वों का समन्वय किया गया है। रचयिता के माध्यम से रचना की महत्ता को जानने के लिए भाषा कलापक्ष के अध्ययन द्वारा इस विषय को विस्तार से समझने का प्रयास किया गया है। श्री हर्ष की भाषा शैली का अध्ययन काव्य तत्व विद्यमान विशेषताओं तथा कला पक्ष की विभिन्न तत्वों के अध्ययन के माध्यम से पूर्ण किया गया है। नैषधीयचरितम श्री हर्ष के प्रमुख कृति है, अतः श्री हर्ष की भाषा शैली का अध्ययन नैषधीयचरितम के आधार पर मुख्यतः किया गया है। नैषधीय चरितम से उद्धरण के माध्यम से श्री हर्ष की भाषा शैली की विशेषताओं का समन्वय किया गया है। भाषाशैली के अध्ययन में कलापक्ष, भावपक्ष, श्लोकों के उद्धरण आदि समाहित किया गया है।

5.6 मुख्य शब्द

1. प्राकृत-भाषा
2. लौकिक -सांसारिक
3. शोक भाव -दुखी भाव
4. उत्प्रेक्षा- शब्दालंकार का एक प्रकार
5. अभिजात्य-शैली का एक प्रकार

5.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर: (C) संस्कृत
2. उत्तर: (B) आभिजात्य शैली
3. उत्तर: (C) अलंकारिकता
4. उत्तर: (D) उत्प्रेक्षा
5. उत्तर: (C) संस्कृत और प्राकृत मिश्रित

5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम- श्रीहर्ष, , कृष्णदास अकादमी , वाराणसी, १९८५।
2. आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीय चरितम- श्रीहर्ष, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २००८।
3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम- श्रीहर्ष, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी, २०१७
4. डॉ शोभा भरद्वाज, नैषधीयचरितम- श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, आगरा, २०२१ ।

5.9 अभ्यास प्रश्न

- 1 श्री हर्ष की भाषा शैली की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
2. नैषधीय चरितम के अनुसार श्री हर्ष की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. श्री हर्ष के अनुसार प्रयुक्त काव्य तत्वों का नाम लिखिए।
4. श्री हर्ष की भाषा गत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

इकाई - 6

नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग के 76 से 90 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 76 से 90 श्लोको की सप्रसंग व्याख्या
- 6.4 सारांश
- 6.5 मुख्य शब्द
- 6.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
- 6.7 संदर्भ ग्रन्थ
- 6.8 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

नैषधीय चरितम् के प्रतिपाद्य विषय तथा दमयंती के चरित्र चित्रण के पश्चात श्लोक के माध्यम से कथा को समझ जाना सुगम हो जाता है। श्री हर्ष के नैषधीय चरित की प्रथम सर्ग के श्लोक की माध्यम से उनकी व्याख्या के द्वारा प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुति इकाई में प्रस्तुत किया गया है। इसी आधार पर संस्कृत भाषा के श्लोक के द्वारा उन में प्रतिपाद्य विषय को जानकर भाषा के ज्ञान तथा व्याकरण, टिप्पणी आदि को समाहित कर व्याख्या की गई है। आगे की इकाइयों में भी कथा के मुख्य विषयों की विवेचना के साथ ही श्लोकों की व्याख्या को क्रम से वर्णित किया जायेगा।

6.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के श्लोकों की व्याख्या करने में समर्थ हो सके।
2. महाकाव्य में वर्णित नल के चरित्र को विशेष श्लोक के माध्यम से जान सके।
3. अन्वय, व्याकरण, भावार्थ आदि के माध्यम से संस्कृत भाषा को समझ सके।
4. संस्कृत विषय की व्याख्यात्मक तथा व्याकरण शैली से परिचित हो सके।
5. नैषधीय चरितम् के श्लोक के महत्व से परिचित हो सके।

6.3 76 से 90 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

ततः प्रसूने च फले च मञ्जुले

स सम्मुखस्थाङ्गुलिना जनाधिपः।

निवेद्यमानं वनपालपाणिना

व्यलोकयत् काननरामणीयकम् ॥ ७६ ॥

अन्वय- ततः स जनाधियः मञ्जुले प्रसूने च फले च सम्मुखीनाङ्गुलिना वनपालपाणिना निवेद्यमानं काननरामणीयकं व्यलोकयत्।

शब्दार्थ- जनाधिपः = राजा नल ने। मञ्जुले सुन्दर। प्रसूने फलों। सम्मुखीनाङ्गुलिना = दिखाई देने वाली अङ्गुली वाले। वनपालपाणिना वनपाल के हाथ द्वारा। निवेद्यमानम् = बतलाये जाते हुए। काननरामणीयकम् = वन के सौन्दर्य को। व्यलोकयत् = देखा।

रहा है। तात्पर्य यह है कि राजा नल के छोड़े इतनी सुन्दरता से गोलाई में चक्कर काट रहे थे कि उस पर आकृष्ट होकर इतने वर्षों बाद भी वायु मानो अपने वात्याचक्र का विस्तार करके उसको सीखने का प्रयास कर रहा है।

संस्कृत व्याख्या- नल निषधनरेशः। निजातपत्रस्य स्वीकयस्य राजछत्रस्य। तलस्थले अध् ॥भागे। हयेन = अश्वेन। याः भ्रमीः यानि भ्रमणानि। अचोकरत् पुनः पुनः अतिशयेन अकरोत्। तासु = भ्रमीषु। मरुत् = वायुः। किम् कथय। अद्यापि इदानीम् अपि। वात्याचक्र चक्रमान् वायुसमूह रूपाः चक्राकाराः गतीः, मंडलाकारा गतीः। न शिक्षते नाभ्यस्ते, अभ्यस्यते एवं इति भावः ।

विवेश गत्वा स विलासकाननं

ततः क्षणात् क्षौणिपतिर्भूतीच्छया।

प्रवालरागच्छुरितं सुषुप्सया

हरिर्घनच्छायमिवाम्भसां निधिम् ॥

अन्वय- ततः क्षौणिपतिः सः क्षणाद् गत्वा धृतीच्छया प्रवालरागच्छुरितं घनच्छायं विलासकाननं अम्भसां निधि सुषुप्सया हरिः इव विवेश ।

शब्दार्थ - ततः = उसके बाद। श्रौणिपतिः भूपति। क्षणाद् शीघ्र ही। गत्वा = जाकर । ६ गृतीच्छया = धैर्य की इच्छा से। प्रवाल रागच्छुरितम् = नवीन पल्लवों के रंगों से युक्त। घनच्छायम् = सघन छाया वाले। विलासकाननम् = क्रीडावन में। अम्भसाम् = समुद्र में। सुषुप्सया सोने की इच्छा से। विवेश - प्रवेश किया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम से से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल द्वारा सघन छाया से युक्त उपवन में विश्राम किये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- उसके बाद भूपति ने शीघ्र ही जाकर नवीन पल्लवों की लालिमा से युक्त सघन छाया वाले क्रीडावन में धैर्य की इच्छा से प्रवेश किया। जिस प्रकार भगवान विष्णु सोने की इच्छा से सर्पों के स्थान बने हुए मूंगों के वर्ण से रंजित मेघ के समान क्रान्ति से युक्त समुद्र में प्रवेश करते हैं।

हिन्दी व्याख्या- जिस प्रकार विष्णु भगवान् विष्णु मूँगों की लालिमा से मिश्रित तथा मेघों के सदृश कान्ति को धारण करने वाले क्षीरसागर में विश्राम करने की अभिलाषा से प्रवेश करते हैं अथवा जिस प्रकार सिंह नूतन किसलयों की लालिमा से युक्त घनी छाया से परिपूर्ण वन में सोने की इच्छा से प्रवेश करता है, उसी प्रकार राजा नल ने उस क्रीडोपवन में जो नवीन पल्लयों की लालिमा से पूर्ण तथा सघन छाया वाला था, में शीघ्र की विश्राम प्राप्त करने की इच्छा से प्रवेश किया।

संस्कृत व्याख्या- ततः = तदनन्तरम्। सः नलः। क्षौणीपतिः पृथ्वीपतिः। क्षणाद्गत्वा = शीघ्रमेव प्राप्य । धृतीच्छया = सन्तोषाकांक्षया। प्रबालाः पल्लवाः अन्यत्र प्रबालाः विदुमाः = नवकिसलयाः विद्रुमाश्च तेषां रागेण आरुण्येन छुरितं रुषितम्। घनच्छायां सादानातपमन्यत्र मेघकान्ति वा। विलासकाननम् = क्रीडावनम् अन्यत्र बवयोरभेदात् विलासकानां बिलेशयानां सर्पाणाम् आननं प्राणनं। अम्भसांनिधिम् = समुद्रम्। सुषुप्सया शेतुभिच्छया हरिः इव = विष्णुः इव विवेश - प्रवेशयामास ।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल द्वारा निर्देशित उपवन की शोभा देखने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- इसके बाद राजा नल ने सुन्दर फूलों और फलों को और उद्यानरक्षक के द्वारा अपनी अँगुली से निर्देशित वन को शोभा को देखा।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल ने विश्राम की अभिलाषा से जब उपवन में प्रवेश किया तो वहाँ का माली राजा नल को फूलों और फलों से युक्त उस वन की शोभा को दिखाने लगा। वह अपनी अँगुली के संकेत द्वारा राजा को नाम और गुणों के माध्यम से फलों और फूलों से अवगत करा रहा है।

संस्कृत व्याख्या- ततः वनप्रवेशानन्तरम्। सः जनाधियः स राजा नलः। मञ्जुले = मनोहरे। प्रसूने = पुष्पे। फले च विषये। सम्मुखीनाङ्गुलिना सम्मुखस्थिताङ्गुलिना संमुखावास्थितवस्तुप्रकाशिकेति यावत्। यथा मुखसम्मुखस्य दर्शनः ख इति खप्रत्ययान्तो निपातः। तादृशी अङ्गुली यस्य तेन वनपालपाणिना = अरण्यपालकरैण, निवेडायमानम् इदमिदमित्यङ्गुल्या

पुष्पफलादिनिर्देशेन विज्ञाप्यमानम् इत्यर्थः । काननरामणीयकं = बन शोभाम्।
व्यलोकयत् = अपश्यत् ।

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे
वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते ।
स्थितैः समाधाय महर्षिवार्धकाद्
वने तदातिथ्यमशिक्षि शाखिभिः ॥ ७७॥

अन्वय - वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते पल्लवे करे फलानि पुष्पाणि च
समाधाय वने स्थितैः शाखिभिः महर्षिवार्धकात् तदातिथ्यं अशिक्षि।

शब्दार्थ - वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते = पक्षियों के उड़ने से उत्पन्न वायु
द्वारा हिलते हुए। पल्लवे करे = पल्लवरूपी हाथ में। समाधाय = लेकर। स्थितैः
= खड़े हुए। शाखिभिः = वृक्षों ने। महर्षिवार्धकात् = वृद्ध महर्षियों के समूह से।
अशिक्षि = सीखा।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत
प्रस्तुत श्लोक में सचेतन प्रकृति का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद - पक्षियों के उड़ने से उत्पन्न वायु द्वारा हिलते हुए
पल्लवरूपी हाथ में फल और पुष्प लेकर वन में विद्यमान वृक्षों ने मानी
अत्यधिक अवस्था के कारण वात रोग से कम्पित फल और पुष्प हाथ में लेकर
वन में विद्यमान वृद्ध महर्षियों के समूह से उनका आतिथ्य सत्कार करना
सीखा है।

हिन्दी व्याख्या - 'अतिथि देवो भव' अर्थात् अतिथि को भगवान् मानने
वाले बनी अपने समक्ष किसी भी अतिथि के आने पर उसका आदर करना
चाहिए। इसी भाव को कवि ने प्रकृति के माध्यम से यहाँ इस प्रकार व्यक्त
किया है। इस उपवन में वृद्ध महर्षि भी रहा करते थे, अत्यधिक अवस्था के
कारण जिनके हाथ-पैर कम्पन किया करते थे। अपने उन्हीं कैंपते हुए हाथों से

वे राजा नल का फल पुष्पादि देकर स्वागत किया करते थे। जब राजा नल ने उस वन में प्रवेश किया तो मानो उस वन के वृक्षों ने भी महर्षियों से स्वागत सत्कार की शिक्षा ग्रहण कर राजा का सत्कार किया। पक्षियों के उड़ने से वृक्षों के पत्ते हिलने लगे। उन पत्ते रूपी हाथों में फल पुष्प लेकर वृक्षों ने राजा नल का स्वागत सत्कार किया।

संस्कृत व्याख्या - वयोऽतिपातेन=पक्षिपातेन। बाल्याद्यपगमेन = चौद्रङ्गतेनोत्थितेन। वातेन = वायुना । वातदोषेण। च वेपिते = कम्पिते। खगबाल्यादिनीव्यः इत्यमरः। पल्लव एव कर इति व्यस्तरूपकं फलानि पुष्पाणि च समाधाय = गृहीत्वा । वन = अरण्ये। स्थितैः = तिष्ठिभिः। शाखिभिः = वृक्षशाखाध्यायिभिः च। महर्षीणां वार्धकावृद्धसमूहात्। तदीतिध्यम् नलस्वागतम्। अशिक्षि= शिक्षितम् अभ्यस्तम्। अन्यथा कथमिदमाचरितमिति भावः ।

विनिद्रपत्रालिगतालिकैतवान्,
मृगाङ्क चूडामणि वर्जनार्जितम्।
दधानमाशासु चरिष्णु दुर्यशः,
स कौतुकी तत्र ददर्श कैतकम् ॥ ७८ ॥

अन्वय- कौतुकी सः तत्र मृगाङ्क चूडामणि वर्जनार्जितम् अशासु चरिष्णुः दुर्यशः विनिद्रपत्रालिगतालिकैतवात् दधानं केतकं ददर्श।

शब्दार्थ- कौतुकी = आश्चर्यपूर्ण, विचित्र। मृगाङ्क चन्द्रमा। चूडामणि = शिर का आभूषण। वर्जनार्जितम् = त्याग देने से प्राप्त। अशासु दिशाओं में। चरिष्णु संचरणशील। दुर्यशः अपयश। दध् ानम् = धारण करते हुए को। कैतकम् = केतकी नाम के पुष्प को। ददर्श देखा।

प्रसंग सन्दर्भ- उपवन की विविध प्राकृतिक छटाओं का वर्णन करता हुआ प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद - आश्चर्य से पूर्ण राजा नल ने केतकी के उन पुष्पों को देखा, जिनका अपयश बन्द्रमौलि भगवान् शंकरजी द्वारा त्यागे गये के रूप में सभी दिशाओं में फैला हुआ है। अपनी खिली हुई पंखुड़ियों के ऊपर बैठे हुए भँवरों के बहाने केतकी का पुष्प अपने उसी अपयश को धारण कर रहा था।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल अपने विहार-स्थल उपवन में पहुँचा। वहाँ अनेक प्रकार के पुष्प खिले हुए थे। उन्हीं पुष्पों में केतकी का पुष्प भी था। उस केतकी के पुष्प पर भ्रमरों का समूह बैठा हुआ था। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि उस फूल के ऊपर भौरे नहीं, अपितु केतकी फूल का अपयश ही था। वह अपकीर्ति फूल में से निकलकर उड़ते हुए भ्रमरों के रूप में सभी दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। केतकी का पुष्प शिवपूजा में वर्जित है, इसी कारण उसकी यह अपकीर्ति हुई है।

संस्कृत व्याख्या- कौतुकी = आश्चर्ययुक्तः। सः = धारानरेशः नलः। तत्र = विलासस्थले, वने। मुर्गाग चूडामणि वर्जनार्जितम् = भगवता शिवेन परित्यागादुत्पन्नम्। आशासु = दिशासु। चरिष्णु = विचरणशीलम्। दुर्यशः = अपयशः, अपकीर्तिम्। विनिद्रपत्रलिगतालिकैतवात् = विकसितासु दलं = पंक्तिषु स्थितानां भ्रमराणां छलेन। दधानम् = धारयन्तम्। केतकम् = केतक संज्ञं सुमनम्। ददर्श = अपश्यत्।

वियोगभाजां हृदि कण्टकैः कटु

निधीयसे कणिशरः स्मरेण यत् ।

ततो दुराकर्षतया तदन्तकृद,

विगीयसे मन्मथदेहदाहिना ॥ ७९ ॥

अन्वय- यत् (त्वम्) स्मरेण वियोगभाजां हृदि कण्टकैः कटु कर्णि शरः निधीयेस, ततः दुराकर्षणतया तदन्तकृत् मत्सथदेहदाहिना विगीयसे।

शब्दार्थ - स्मरेण = कामदेव के द्वारा। वियोग भाजाम् वियोगियों के। हृदि हृदय में। कण्टकैः = काँटों के कारण। कटु तीक्ष्ण। कर्णिशरः नौक वाला बाण। निधीबसे रखा जाता है। ततः इसी कारण। दुराकर्षतया = कठिनता से खींचने योग्य होने के कारण। तदन्तकृत् उनका अन्त करने वाला। मन्मथदेहदाहिना - कामदेव के शरीर को जलाने वाले के द्वारा। विगीयसे निन्दित किये जाते हो।

प्रसंग-सन्दर्भ- अपनी राजधानी धारा नगरी से चलकर राजा नल प्रमोद वन में पहुंचा। वहाँ उसने केतकी का पुष्प देखा। केतकी के पुष्प के प्रति राजा नल के मन में जो भाव उत्पन्न हुआ, उसका वर्णन श्रीहर्ष प्रणीत नैवधीय चरितम् के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- हे केतकी के पुष्प ! कामदेव तुम्हीं वियोगों जनों के हृदय में काँटों से भी अधिक तीक्ष्ण बाण के रूप में प्रयुक्त करता है। तुम्हें वियोगियों के हृदय से कठिनता से खींचा जा सकता है। इसी कारण तुम वियोगी जनों का आदर करते हो। यही कारण है कि कामदेव का दहन करने वाले भगवान् शंकर के द्वारा तुम्हारी निन्दा की जाती है।

हिन्दी व्याख्या- केतकों का पुष्प शिवजी पर नहीं चढ़ाया जाता, क्योंकि भगवान् शंकर ने इसका त्याग कर दिया है। यह एक प्रकार से इसका अपमान है। कवि श्रीहर्ष भगवान् शंकर के द्वारा केतकी के पुष्प के परित्याग के दूसरे कारण का अनुमान करते हैं। भगवान् शंकर ने कामदेव को जला दिया। इससे स्पष्ट है कि कामदेव भगवान् शंकर का शत्रु है। कामदेव वियोगियों पर केतकी के पुष्प को बाण के रूप में प्रयोग करके प्राणापहारी प्रहार करता है। कामदेव उनका प्राण हरण करने के कारण वियोगियों का शत्रु है। केतकी का पुष्प कामदेव का सहयोगी होने के कारण वियोगियों का शत्रु है। शत्रु का मित्र शत्रु होता है। इस दृष्टि से वियोगी तो भगवान् शंकर के मित्र हुए। कामदेव का सहयोगी होने के कारण केतकी का पुष्प शिवजी का शत्रु हुआ।

संस्कृत व्याख्या - यत् यस्मात् कारणात् । त्वम् = केतकी पुष्पम्। स्मरेण कामदेवेन। वियोगभाजाम् निजतीक्ष्णावचवैः कटुः तीक्ष्ण। संतापकारकः। तस्मात् कारणात्। दुराकर्षतया = दुःखेन कर्षितुं = वियोगिजनानाम् । हृदि हृदये,

मर्मस्थले। कण्टकैः कणिशरः कर्णिकोबाणः। निधीयसे निक्षिच्चसे। ततः
योग्यतया। तदन्तकृत् = वियोगिनां मारणकर्ता। मन्मथहृदेहदाहिमा कामस्यशरीर
दाहकेन शिवेन । विगीयसे विगर्हासे निन्दविषयी क्रियते।

त्वदग्रसूचीसचिवः स कामिनो-
मनोभवः सीव्यति दुर्यशः पटौ।
स्फुटञ्च पत्रैः करपत्रमूर्तिभि-
विर्योगिहृद्धारुणि दारुणायते॥ ८० ॥

अन्वय- त्वदग्रसूचीसचिवः स मनोभवः कामिनीः दुर्यशः पटौ सीव्यति। च
स्फुटं करपत्रमूर्तिभिः पत्रैः वियोगिहृद्धारुणि दारुणायते ।

शब्दार्थ- त्वदग्रसूचीसचिवः=तुम्हारे अग्रभाग रूपी सूची के द्वारा। मनोभवः
= कामदेव । कामिनोः = कामिनी और कामी दोनों के। दुर्यशः अपयश। पटौ पट
को। सीव्यति सीता है। स्फुट स्पष्ट ही। करपत्रमूर्तिभिः = आरे के समान आकार
वाले। पत्रैः पत्तों से। वियोगिहृद्धारुणि = वियोगियों के हृदयरूपी लकड़ी को।
दारुणायते चीरता सा है।

प्रसंग-सन्दर्भ- केतकी के नृशंस आचरण का वर्णन करने वाला प्रस्तुत
श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद - तुम्हारे अग्रभाग रूपी सूची के द्वारा कामदेव कामिनी
और कामी दोनों के अपयश रूपी वस्त्रों को सिलता है। स्पष्ट रूप से वह आरे
के समान आकार वाले पत्तों के द्वारा वियोगियों के हृदय रूपी लकड़ी को
चीरता-सा है।

हिन्दी व्याख्या- विरही राजा नल केतकी पुष्प को देखकर और अधिक
व्यथित हो उठता है। वह उसकी निन्दा करते हुए कहता है कि तुम्हारी नोंक
रूपी सुई के द्वारा कामदेव विरही जनों के दुर्यश रूपी वस्त्रों को सीता है और

जिस प्रकार लकड़ी को चीरने के लिए आरे का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार वियोगियों के हृदय को चीरने के लिए तुम अपने पत्तों का उपयोग करते हो। अतः तुम अत्यन्त ही क्रूर हो।

संस्कृत व्याख्या- विरही नलः केतकी पुष्पं दृष्ट्वा अति व्यथितो भवति, सः तं निन्दयन् कथयति -त्वदग्रसूच्या = तव अग्रमेव सूची तथा, सचिवेन सहायेन (कृत्वा) सचिवाः सहकारिणो यस्य स तथोक्तः सः प्रसिद्धो मनोभवः कामिनी च कामी च कामिनीः तयोः स्त्रीपुरुषयोः, दुर्यशः पटौ दुष्कीर्तिवस्त्रे, सीव्यति = कण्टकस्यूतं करोति, स्फुटतम् स्पष्टतम्, सः मन्मथः करपत्रमूर्तिभिः क्रकचाकोरेः, पत्रैः पर्णैः तैः चियोगिनां हृदि एव दारुणि दारयति इति दारुणे विदारको भेत्ता स इवाचरति इति दारुणायते।

धनुर्मधुस्विन्नकरोऽति भीमजा-

परं परागैस्तव धूलिहस्तयन्।

प्रसूनधन्वा शरसात्करोति मा-

मिति कुधाऽऽक्कुश्यत तेन कैतकम् ॥ ८१ ॥

अन्वय - प्रसूनधन्वा धनुर्मधुस्विन्न करोऽपि तव परारीः धूलि हस्तयन् भीमजापर, माम् शरसात्करोति, इति तेन क्रुधा कैतकम् आकुश्यत ।

शब्दार्थ- प्रसूनधन्वा फूलों के धनुष वाला, कामदेव । धनुर्मधुस्विन्न करः धनुष के पुष्प के कारण गीले हाथों वाला। परागैः चूर्णों से। धूलि हस्तयन् = हाथ से धूल बनाता हुआ। भीमजापरम् = राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के प्रति आसक्त। माम् मुझको। शरसात्करोतिः बाण का निशाना बनाता है। कुछ ॥ = क्रोध से। कैतकम् = केतकी के पुष्प के प्रति। आकुश्यत = आक्रोश किया।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से प्रस्तुत श्लोक में केतकी के पुष्प के प्रति राजा नल के क्रोध का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- पुष्पों के धनुष वाले कामदेव का हाथ फूलों से निकलने वाले रस के कारण गीला हो जाता है। कामदेव केतकी के पुष्प के पराग का प्रयोग करता हुआ अपने गीले हाथ को सुखाता है। इस प्रकार कामदेव दमयन्ती के प्रति आसक्त राजा नल को अपने बाणों का लक्ष्य बना रहा है। इस कारण राजा नल ने क्रोध के कारण केतकी के पुष्प को निन्दा की है।

हिन्दी व्याख्या- पुष्प में दो तत्त्व होते हैं-एक रस अथवा मकरन्द जो द्रव होता है और दूसरा पराग जो चूर्ण के समान शुष्क होता है। कामदेव का बाण पुष्पों का है। पुष्पों के रस के कारण कामदेव का हाथ गीला हो जाता है। गीले हाथ से बाण और धनुष का हाथ फिसलना सम्भव है। इस प्रकार धनुषधारी अपने लक्ष्य पर ठीक से प्रहार नहीं कर पाता। केतकी के पुष्प में जो पराग होता है, वह धूल के समान होता है। लोग अपने गोले हाथों को धूल के सहारे सूखा कर लेते हैं। कामदेव भी केतकी के पराग से अपना गीला हाथ सुखा लेता है। इसके बाद वह विदर्भ-नरेश भीम पुत्री दमयन्ती पर आसक्त राजा नल को अपने बाणों का लक्ष्य बनाने में सफल होता है। इस प्रकार केतकी का पुष्प राजा नल की पीड़ा का कारण बनता है। यही कारण नल के द्वारा केतकी के पुष्प की निन्दा का है।

संस्कृत व्याख्या- प्रसूनधन्वा कुसुम धनुषवान् कामदेवः। धनुर्मधुस्विन्नकरः स्वधनुषः मधुना केतकी कुसुमस्य। परागैः रजोभिः। धूलिहस्तयन् धूलिना हस्तं शुष्कं कुर्वन्। आसक्तम्। माम् नलम्। शरसात्करोति बाणानां नाद करोति। इति अनेकेन कोपेन। केतकम् = केतव्याः पुष्पम्। आक्रुश्यत - आक्रोशं कृतम्। कारणेन आर्द्रस्तः सन्। तव भीमजापरम् = दमयन्तीं प्रति कारणेन। तेन = नलेन।

विदर्भसुभूस्तन तुङ्गताप्तये,

घटानिवापश्यदलं तपस्यतः ।

फलानि धूमस्य ध्यानधोमुखान्,

स दाडिमे दोहदधूपिनि दुमे ॥८२॥

अन्वय - स दोहदभूपिनि दाडिमे द्रुमे विदर्भ सुभ्रूस्तन तुङ्गताप्तये अलं तपस्यतः धूमस्य धया इव फलानि अपश्यत्।

शब्दार्थ - दोहदधूपिनि उपाय रूपी धूप से युक्त। दाडिमे द्रुमे अनार के वृक्ष पर। विदर्भ सुभ्रू = विदर्भ देश निवासिनी तथा सुन्दर भौहों वाली। स्तन तुङ्गताप्तये स्तनों की ऊँचाई को प्राप्त करने के लिए। अलम् = पर्याप्त। तपस्यतः तपस्या करते हुए। धूमस्य धुएँ के पीने वाले। अधोमुखान् नीचे की ओर मुख किये हुए। घटान् इव घड़ों के समान। फलानि फलों को। अपश्यत् = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ- अनार के वृक्ष का वर्णन करने वाला यह श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- उस राजा नल ने धुएँ से युक्त अनार के वृक्ष पर दमयन्ती के स्तनों की उच्चता प्राप्त करने के हेतु धूम्र को पीते हुए अतिशय तपस्या करने वाले फलों को नीचे की ओर मुँह किये हुए घड़ों के समान देखा।

हिन्दी व्याख्या - अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए लोग कठोर तपस्या करते हैं। उनमें एक तपस्या नीचे की ओर पेड़ पर लटकते हुए धुआँ पीना भी है। अनार के वृक्ष पर अनेक फल नीचे की ओर मुँह किये लटके रहते हैं। दमयन्ती के स्तन विशाल थे। अनार के फल दमयन्ती के स्तनों के समान विशालता प्राप्त करना चाहते थे। अनार के वृक्ष पर लगे फल घड़ों के समान बड़े थे, पर वे दमयन्ती के उच्च स्तनों की समानता नहीं कर पा रहे थे। इससे स्पष्ट है कि दमयन्ती के स्तन घड़ों से भी अधिक बड़े थे। राजा नल को अनार के वृक्ष पर लगे विशाल फल देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि वे फल दमयन्ती के स्तनों के समान विशालता प्राप्त करने के लिए दोहद के रूप में अधोमुख लटककर धूम्रपान की तपस्या कर रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या- सः = धारा नरेशः नलः। दोहदधूपिनि अति फलादि रूपस्य समृद्ध्वर्थ कृतोपायः तस्य धूपयुक्ते। दाडिमे द्रुमे दाडिम नामके वृक्षे। विदर्भ सुभ्रूस्तनतुङ्गताप्तये प्राप्त्यर्थम्। अलम् = पर्याप्तम्, अतिशयेन। तपस्यतः तपं कुर्वतः। धूमस्य दमयन्त्याः कुचयोः उच्चता दोहदहेतोः धूमस्य। धयान् =

पात्न् । अधोमुखान् = नीचैः कृत वदनाम्। घटान् कुम्भान् । इव तुल्यम्।
अपश्यत् = दृष्टवान्।

वियोगिनीमैक्षत दाडिमीमसौ
प्रियस्मृतेः स्पष्टमुदीतकण्टकाम् ।
फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृद्-
बिशच्छुकास्यस्मरकिंशुकाशुगाम् ॥ ८३ ॥

अन्वय- असौ प्रियस्मृतेः स्पष्टं उदीतकण्टकां फलस्तनस्थानविदीर्णरागि हृद्विशच्छुकास्यस्मर किंशुकाशुगां दाडिमीं वियोगिनीम् ऐक्षत।

शब्दार्थ- असौ=उसने। प्रियस्मृतेः प्रिय के कारण। उदीतकण्टकाम् निकले हुए काँटों से युक्त। फलस्तनस्थान = स्तनसदृश फलों के मध्य। विदीर्णरागिहृद्विशत् = विदीर्ण एवं रक्तवर्ण वाले मध्य भाग में प्रवेश करते हुए। शुकास्यस्मर किंशुकाशुगाम् शुकमुख रूपी कामदेव के पलाश पुष्परूपी बाणों से युक्त। दाडिमीम् = अनार के वृक्ष को। ऐक्षत देखा

प्रसंग-सन्दर्भ- अनार के वृक्ष का वियोगिनी के रूप में वर्णन करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- उसने प्रिय के कारण रोमाञ्च से युक्त वियोगिनी स्त्री के समान कण्टकयुक्त नायिका के फल सदृश स्तनों के भीतर अनुरागयुक्त विदीर्ण हृदय में प्रविष्ट कामदेव के पलाश पुष्प रूप बाण के सदृश जिसके विदीर्ण लाल फल में प्रविष्ट तोते की चाँच दिखाई पड़ती थी, ऐसा अनार का वृक्ष देखा।

हिन्दी व्याख्या- उपवन की रमणीयता देखते समय राजा नल की दृष्टि अनार के वृक्ष पर पड़ी। अनार का वृक्ष कण्टकयुक्त तथा फलों से पूर्ण था। अनार का फल पकने पर बीच से फट जाता है और उसके लाल-लाल दाने दिखाई देने लगते हैं। शुक अनार के फलों के बीच के दानों को खाने के लिए अपनी चाँच का प्रयोग करते हैं। उन फलों को देखकर राजा नल को प्रिया

दमयन्ती का स्मरण हो गया। दमयन्ती के स्तन रोमाञ्च से युक्त थे। स्तनों के मध्य भाग विदीर्ण होने से लालिमा युक्त दिखाई पड़ रहे थे। उस विदीर्ण हृदय में पलाश पुष्प रूप कामदेव का बाण प्रवेश कर गया था।

संस्कृत व्याख्या- असौ = नलः। प्रियास्मृतेः दमयन्तीस्मरणादिव। स्पष्टव्यक्तम् उदीतकण्टकाम् उदीताः उद्गताः कण्टकाः स्वावयव सूचय एव कण्टका रोमाञ्चा यास्यास्ताम् इति। फलस्तनस्थानविदीर्णरागि हृद्विशच्छुकास्यस्मरकिंशुकाशुगां फलानि एवं स्तनी तावेव स्थानं तन्त्र विदीर्णी रागी चस्यास्तीति रानिरक्तवर्णम् अनुरक्तञ्च यत्तस्मिन् हृदि विशन्ति यानि। शुकास्यानि शुकमुखानि तान्येव स्मरस्य कामदेवस्य किंशुकानि = पलाशपुष्पाण्येव । आशुणाः बाणाः यस्याः तादृशीम्। दाडिमीम् = वियोगिनीम्। विरहिणीमैक्षत अपश्यत्।

स्मरार्द्धचन्द्रेषुनिभे क्रशीयसां,

स्फुटे पलाशेऽध्वजुषां पलाशनात्।

स वृन्तमालोकत खण्डमन्वितं,

वियोगिहृत्खण्डिनि कालखण्डजम् ॥ ८४ ॥

अन्वय- सः स्मरार्द्धचन्द्रेषुनिभे वियोगिहृत्खण्डिनि क्रशीयसाम् अध्वजुषाम् पलाशनात् स्फुटं पलाशे अन्वितं वृन्तं, कालखण्डजं खण्डम् आलोकत।

शब्दार्थ- स्मरार्द्धचन्द्रेषुनिभे कामदेव के आधे चन्द्रमा के आकार वाले बाण के समान। वियोगिहृत्खण्डिनि = वियोगियों के हृदय को टुकड़े-टुकड़े करने वाले। क्रशीयसाम् अत्यधिक दुयले। अध्वजुषाम् = पथिकों के। पलाशनात् मांस खाने के कारण। स्फुटम् = स्पष्ट रूप से। पलाशे = मांस-भक्षण करने वाले। अन्वितम् सम्बन्धित। वृन्तम् डंठलों की। कालखण्डजम् = यकृत से उत्पन्न। खण्डम् = टुकड़ा। आलोकत = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में पलाश पुष्प का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- राजा नल ने कामदेव के अर्द्धचन्द्राकार बाण के समान वियोगी जनों के हृदय को विदीर्ण करने वाले तथा अत्यधिक दुर्बल पथिकों का मांस-भक्षण करने के कारण स्पष्ट रूप से पलाश वृक्ष के फूल में लगे हुए डंठल को देखा जो नल को यकृत के टुकड़े के समान प्रतीत हुआ।

हिन्दी व्याख्या- पलाश के वृक्ष पर जो फूल उगते हैं, उनका आकार आधे चन्द्रमा के समान होता है। युद्ध स्थल में धुनर्धर वीर शत्रु का मस्तक काटने हेतु अर्द्धचन्द्राकार बाणी का प्रयोग करते हैं। राजा नल को पलाश वृक्ष पर लगा पुष्प कामदेव के वियोगी जनघातक अर्द्धचन्द्राकार बाण के समान प्रतीत हुआ। पलाश के पुष्प के ऊपर काले रंग का डंठल होता है। कवि श्रीहर्ष ने कल्पना की है कि कामदेव ने अपने पलाश पुष्परूपी अर्द्धचन्द्राकार बाण से वियोगी जनों के दाहिने भाग पर प्रहार किया है। सीने के दाहिने भाग में यकृत होता है। कामदेव के अर्द्धचन्द्राकार बाण में वियोगी पुरुष के यकृत का काले रंग का मांस का टुकड़ा लगा रह गया है।

संस्कृत व्याख्या- सः = धारायाः स्वामी नलः। स्मरार्द्धचन्द्रेषुनिभे कामदेवस्य अर्द्धचन्द्रसदृशे वाणे। वियोगिहृत्खण्डिनि वियोगिनां पुरुषाणां हृदयविदारके। क्रशीयसाम्। अधिकतरं क्षीणानाम्। अध्वजुषाम् = पथिकानाम्। पलाशनात् मांसभक्षणात्। स्फुटम् = स्पष्टम्। पलाशे किंशुक वृक्षे। अन्वितम् सम्बद्धम्। वृन्तम् = पुष्पवन्धम् = यकृतात् उत्पन्नम्, यकृतात् पृथक्कृतम्। खण्डजम् भागम्। इव = तुल्यम्। आलोकित = दृष्टवान्।

नवा लता गन्धवहेन चुम्बिता

करम्बिताङ्गी मकरन्दशीकरैः।

दृशा नृपेण स्मितशोभिकुङ्मला

दरादराभ्यां दरकम्पिनी पपे ॥ ८५ ॥

अन्वय- गन्धवहेन चुम्बिता मकरन्दशीकरैः करम्बितांगी स्मितशोभिकुङ्मला दरकम्पिनी नवा लता नृपेण दशा दरादराभ्याम् पपे।

शब्दार्थ- गन्धवहेन-पवन के द्वारा। चुम्बिता चूमी गयी, स्पर्श की गयी। मकरन्दशीकरैः = पुष्प रस की बूंदों से। करम्बितांगी मिले हुए अंगों वाली। स्मितशोभिकुङ्मला = खिली हुई कलियों से सुशोभित। दरकम्पिनी = कुछ-कुछ काँपती हुई। नवा नयी। लता बेल। नृपेण = राजा ने। दशा = अपने नेत्रों से। दरादराभ्याम् भय और आदर के साथ। पपे = पी, देखी।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में प्रकृति का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- पवन के द्वारा स्पर्श की गयी, फूलों के रस अर्थात् मकरन्द की छोटी-छोटी बूंदों से युक्त अंगों वाली, खिली होने के कारण सुशोभित कलियों से युक्त तथा कुछ कुछ हिलतो हुई नवीन लता राजा मल के द्वारा भय और आदर के साथ देखी गयी।

हिन्दी व्याख्या- गन्ध को वहन करने वाले पवन ने नवीन लता रूपी नवयुवती अथवा मुग्धा नायिका का स्पर्श किया। खिली हुई कलियाँ नायिका लता के मुस्कुराने अर्थात् प्रसन्न होने का संकेत करती हैं, जिसके कारण नवीन पल्लवों और विकसित कुसुमों वाली लता वियोगीजनों को दुःखी करती है। राजा नल दमयन्ती के वियोग में व्याकुल था। दमयन्ती को प्राप्त न कर पाने की दशा उसे व्याकुल कर रही थी। इसी कारण राजा नल ने नवीन लता को भय के साथ देखा। नवीन लता किसी नवयौवना के समान थी, अतः राजा नल ने उसे आदर के साथ देखा।

संस्कृत व्याख्या- गन्धवहेन पवनेन। चुम्बिता स्पृष्टा, विषयीकृता। मकरन्दशीकरैः = पुष्पाणां रसस्य लघु विन्दुभिः। करम्बितांगी सिंचित शरीरा, आर्द्र देहा। स्मितशोभिकुङ्मला = विकासेन सुशोभिता कलिकावती। दरकम्पिनी ईषत् कम्पनसहिता। नवा अभिनवा। लता चल्ली। नृपेण राजा नलेन। दरादराभ्याम् = भयेन आदरेण च। पपे दृष्टिविषयीकृता।

विचिन्वतीः पांथपतङ्गहिंसनै

रपुण्यकर्माण्यलिकज्जलच्छलात् ।

व्यलोकयच्चम्पककोरकावलीः

स शम्बरारेर्बलिदीपिका इव ॥ ८६ ॥

अन्वय - स पान्थपतङ्गहिंसनैः अलिकज्जलच्छलात् अपुण्यकर्माणि विचिन्वतीः शम्बरारेः बलिदीपिका इव चम्पककोरकावलीः व्यलोकयत् ।

शब्दार्थ- सः = उसने। पान्थपतङ्गहिंसने पथिक रूपी पतंगों की हिंसा करने के कारण। अलिकज्जलच्छलात् = कज्जल सदृश कृष्ण वर्ण के भ्रमरों के बहाने से। अपुण्यकर्माणि = पापकर्मों का। विचिन्वतीः = संचय करने वाली। शम्बरारेः कामदेव के। बलिदीपिका इव = पूजादीपों के समान। चम्पक कोरकावलीः = चम्पा की कलियों की पंक्ति को। व्यलोकयत् देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में भी प्रकृति का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- उसने पथिक रूपी पतंगों की हिंसा करने के कारण कज्जल सदृश कृष्णवर्ण के भ्रमरों के बहाने से पापकर्मों का संचय करने वाली कामदेव के पूजादीपों के समान चम्पा की कलियों की पंक्ति को देखा।

हिन्दी व्याख्या- चम्पा की कलियाँ अत्यधिक कामोत्तेजक हुआ करती हैं। विरही पथिकों द्वारा उन्हें देख लेने से वे उसी प्रकार मर जाते हैं, जिस प्रकार दीपक की ली पर बैठने वाले पतंगे मर जाते हैं। चम्पा की कलियों पर बैठने वाले काले-काले भ्रमर दीपक के काजल के रूप में दिख रहे थे, उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था मानो दीपक की लौ ने पतंगों को मारने के पाप के रूप में उन्हें संचित किया हो। इस प्रकार भ्रमरयुक्त चम्पक कलियों को कामदेव के पूजा-दीपक के समान नल ने देखा।

संस्कृत व्याख्या- पन्थानं गच्छन्ति नित्यमिति पान्थाः नित्यपथिकाः पन्थादेशश्च। ते एव पतङ्गाः पक्षिणः तेषां हिंसनैः वधै पथिकशलभमारणे,

अपुण्य कर्माणि पाप कर्माणि, अलिकञ्जलच्छलात् भ्रमर कालुष्य व्याजात् = अलयः कञ्जलानि इव तेषां छलात् विचिन्वतीः अर्जयन्तीः संगृहणतीः हिंसापापकारिणीत्यर्थः । शम्बरारेः = कामदेवस्य - मनसिजस्य बलिदीपिकाः पूजादीपिका इव चम्पककोरकावलीः चम्पककुड्मलपङ्क्तीः सः नलः व्यलोकयत् = अपश्यत् ।

अमन्यतासौ कुसुमेषुगर्भजं

परागमन्धङ्करणं वियोगिनाम् ।

स्मरेण मुक्तेषु पुरा पुरारये

तदङ्गभस्मेव शरेषु सङ्गतम् ॥८७॥

अन्वय- असौ कुसुमेषु गर्भजं वियोगिनां अन्धङ्करणं पुरा स्मरेण मुक्तेषु शरेषु सङ्गतं तदङ्गभस्म इव

शब्दार्थ - कुसुमेषु = पुष्पों में। गर्भजम् अन्दर स्थित। वियोगिनाम् विरहियों को। अन्ध ाङ्करणम् = अन्धा बनाने वाले। परागम् पराग को। स्मरेण कामदेव द्वारा। पुरारये = शिवजी पर। मुक्तेषु = छोड़े गये। शरेषु बाणों में। संगतम् लगी हुई। अमन्यत = माना।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में शिव भस्म का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- उसने पुष्पों में अन्दर स्थित 'पराग' को विरहियों को अन्धा बनाने वाला, पूर्वकाल में कामदेव द्वारा शिव पर छोड़े गये बाणों में लगा हुआ शिवजी के शरीर का भस्म माना।

हिन्दी व्याख्या- भस्म अथवा धूलि जब आँखों में गिर जाती है तो वह व्यक्ति अन्धा हो जाता है। पुष्प परागों का दर्शन करने पर विरहों व्यक्ति काम पीड़ित होकर अन्धे अर्थात् अविवेकी हो जाते हैं। यही सोचकर राजा नल ने पुष्पों के मध्य स्थित पराग कणों का पूर्वकाल में कामदेव द्वारा शिवजी पर छोड़े गये पुष्पनिर्मित बाणों में लगी हुई शिवजी के शरीर की भस्म समझा।

संस्कृत व्याख्या- असौ नलः कुसुमान्येव इषवः कामबाणारतेषां गर्भजं गर्भजातं वियोगिनाम् = विरहिणाम्, अन्धंकरणम् = लोचनीपघतक्रम्, परागम् पुष्परजः, पुरा पूर्वम्, स्मरेण कन्दर्पण, पुरारये शंकराय, मुक्तेषु = त्यक्तेषु शरेषु सङ्गतं संसक्तं तदङ्ग भस्म इव शंकर शरीर भस्म इव, अमन्यत।

पिकाद्वने शृण्वति भृङ्गहृत्कृतैः-

दशामुदञ्चत्करुणं वियोगिनाम् ।

अनास्थया सूनकरप्रसारिणी,

ददर्श दूनः स्थलपद्मिनीं नलः ॥ ८८ ॥

अन्वय- दूनः नलः उदञ्चत्करुणे, पिकात् भृङ्गहृत्कृतैः वियोगिनां दशाम् शृण्वति बने अनास्थया सूनकरप्रसारिणी, स्थलपद्मिनीम् ददर्श ।

शब्दार्थ - दूनः = दुःखी, सन्तप्त। उदञ्चत्करुणे विकसित होते हुए करुण वृक्षों वाले। पिकात् -कोयल से। शृङ्गहृत्कृतैः - भौरों के हुँकारों से। वियोगिनाम् = वियोगी जनों की। दशाम् = दशा को। शृण्वति = सुनने वाले, सुनते हुए। वने वन में। अनास्थया अनिच्छा से। सूनकर प्रसारिणीम् = फूलों-रूपी हाथों को फैलाये हुए। स्थल-पद्मिनीम् स्थल पर उत्पन्न होने वाली कमलिनी को। ददर्श देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ- राजा नल की विरहावस्था का वर्णन करने वाला यह श्लोक श्री हर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- दुःखी नल ने विकसित करुण वृक्षों वाले तथा कोयलों द्वारा एक भौरों की हुँकारों से वियोगी-जनों की विषम दशा को सुनते जा रहे वन में अनादर से हाथ फैलाये हुई स्थल कमलिनी को देखा।

हिन्दी व्याख्या- प्रमोदवन में करुण वृक्ष फूले हुए थे। उन पर कोबल कूक रही थी। ऐसा लगता था कि वह वियोगीजनों की विषम दशा का वर्णन कर रही

है। उन वृक्षों पर भौर गूँज रहे थे। उनका गुंजन ऐसा जान पड़ता था कि वे कोयल के वचनों का अपने गुंजन द्वारा समर्थन कर रहे थे। वहाँ पर स्थल-कमलिनी पत्रों और पुष्पों से युक्त थी। ऐसा लगता था कि उसे वियोगियों की दशा एवं उसका समर्थन अरुचिकर लग रहा है। ऐसा प्रतीत होता था कि यह हाथ फैलाकर अपना अनादर भाव व्यक्त करती हुई कोयल और भौरों को मना कर रही है। राजा नल पहले ही दुःखी था। इसे देखकर उसको अधिक दुःख हुआ।

संस्कृत व्याख्या - दूनः कृशः। संतप्तः। उदञ्ज्यत्करुणे = विकसिते करुणनामके वृक्षविशेषे। पिकात् = कोकिलात्। भंगहुंकृतैः = भ्रमराणां हुंकारैः। वियोगिनां वियोगि जनानाम्। दशाम् = स्थितिम्। शृण्वति = आकर्षणं कुर्वन्ति। वने = कानने। अनास्थया उपेक्षाभावेन। सुनकर प्रसारिणीम् = पुष्परूपे हस्ते विस्तारितयतीम्। स्थलपद्मिनीम् = स्थल कमलिनीम्। ददर्श दृष्टवान्।

रसालसालः समदृश्यतामुना

स्फुरद्विरे फारवरोषहुङ्कृतिः ।

समीर लोलैर्मुकुलैर्वियोगिने

जनाय दित्सन्निव तज्जर्नाभियम् ॥८९॥

अन्यय - अमुना स्फुरद्विरेफार वरोषहुङ्कृतिः रसालसालः समीरलोलैः मुकुलैः वियोगिने जनाय तर्जनाभियं दित्सन् इव समदृश्यत।

शब्दार्थ - स्फुरद्विरेफारवरोषहुङ्कृतिः घूमते हुए भँवरों की गुञ्जार रूपी हुंकार से युक्त। रसालसालः = आम का वृक्ष। समीरलोलैः वायु के कारण चञ्चल। मुकुलैः कलियों के द्वारा। तर्जनाभियम् = तर्जना रूपी भय को। दित्सन् = देने की इच्छा करते हुए। समदृश्यत = देखा गया।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है कि आम वृक्ष अपनी मञ्जरियों को हिलाकर वियोगियों को डरा रहा है।

हिन्दी अनुवाद- नल द्वारा घूमते हुए भँवरों की गुञ्जार रूपी हुँकार से युक्त, आम का वृक्ष वायु के कारण चञ्चल कलियों के द्वारा वियोगीजनों को तर्जना रूपी भय देने की इच्छा से युक्त देखा गया।

हिन्दी व्याख्या- प्रमोद वन में आम के वृक्षों पर मंजरियाँ लगी हुई थीं। जो तेज हवा चलने के कारण हिल रही थीं। उन मंजरियों पर गुंजार करते हुए भ्रमर इधर-उधर घूम रहे थे। इसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो आम का पेड़ अमरों के गुब्बन रूपी हुँकारों के रूप में क्रोध कर रहा हो और अपनी मंजरियों को हाथों के रूप में हिला हिलाकर वियोगी जनों को भयभीत कर रहा हो।

संस्कृत व्याख्या- अमुना नलेन स्फुरद्विरेफारवरीषण्डकृतिः स्फुरन्तः भ्रमन्तः द्विरेफाः भ्रमराः तेषाम् आरणः 'भ्रमर झड़कार एवं रोषणे या हुड़कृति हाड़कारो यस्य सः समीरलोलैर्वायुचलैर्मुकुलैरङ्गुलिभिरितिभावः । वियोगिने = विरहिणे, जनाय लोकाय तर्जनाभियम् भत्संनानीतिम्, दित्सन् इव दातुमिच्छन् इव। स्थितः रसालसालः आमवृक्षः समदृश्यत सम्यग्दृष्टः ।

दिने-दिने त्वं तनुरेधि रेऽधिकं,

पुनः पुनर्मूच्छ च मृत्युमृच्छ च।

इतीव पान्थं शपतः पिकान् द्विजान्,

सखेदमैक्षिष्ट स लोहितेक्षणान् ॥ ९०॥

अन्वय- रे। त्वं दिने-दिने अधिकं तनुः एधि, पुनः पुनः च मूच्छ, तापं च ऋच्छ। इतीव पान्थान् शपतः लोहितेक्षणान् पिकान् द्विजान् सः सखेदम् ऐक्षिष्ट।

शब्दार्थ- रे = रे नीच। दिने दिने तापम् = सन्ताप को। ऋच्छ = प्राप्त हो। लाल आँखों वालियों को। कोकिलान् आने वाले प्रत्येक दिन में। तनुः क्षीण, दुर्बल। एधि हो। पान्थान् = पथिकों को। शपतः शाप देते हुए। लोहितेक्षणान् = कोयलों को। द्विजान् पक्षियों को। ददर्श = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कोयलों का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुबाद- हे पथिक । तू प्रतिदिन क्षीण होता जा और बार-बार मूर्च्छित होने के साथ ही सन्ताप को प्राप्त कर। मानो इस प्रकार पथिकों को शाप देती हुई, लाल आँखों वाली कोयल पक्षियों को उस राजा नल ने खिन्नता के साथ देखा।

हिन्दी व्याख्या- वसन्त ऋतु में प्रकृति का रूप अत्यन्त आकर्षक और मोहक हो जाता है। इसी आधार पर वसन्त को ऋतुराज अर्थात् ऋतुओं का राजा कहा जाता है। वसन्त ऋतु के अनेक आकर्षणों में एक कोयल का कुकना भी है। वसन्त ऋतु की प्राकृतिक शोभा और कोकिल की कल-काकली संयोग में जितना सुखी करती है, वियोगियों को यह उतना ही दुःखी करती है। वियोगीजनों को कोयल की मधुर कूक ऐसी होती है, मानो वह कह रही है कि हे पथिक ! तू प्रतिदिन दुबला-पतला होता जा, बार-बार मूर्च्छित हो और सन्ताप प्राप्त कर। यह तो वियोगी पथिकों को एक प्रकार का शाप है। राजा नल स्वयं वियोगी था, दमयन्ती को प्राप्त न करके वह वियोग व्यथा सह रहा था। यही कारण था कि राजा नल ने उन कोयल पक्षियों को खिन्नतापूर्वक देखा।

संस्कृत व्याख्या- रे = हे नीचे पथिक। त्वम् भवान्। दिने दिने प्रतिदिवसम्। अधिकम् तनुः = अतिशयं दुर्बलः। एधि भव। पुनः पुनः बारम्बारम् मूर्च्छ मूर्च्छाम् प्राप्नुहि। तापम् = सन्तापम्। ऋच्छ = प्राप्तं कुरु। लभस्व । इतीष = इति इव। पूर्वोक्त प्रकारेण एव। पान्थान् पथि गमनंकुर्वतः पुरुषान् । शपतः = शापितवान् । कुर्वतः विदधतः। लोहितेक्षणान् रक्त वर्ण नयनान्। पिकान् कोकिलान् । द्विजान् पक्षिणः। सखेदम् = खेदसहितम् । ददर्श = दृष्टवान्।

सही जोड़ी बनाओ

(क) क्रमेण	-	(क) सुन्दर
(ख) प्रसूने	-	(ख) कामदेव
(ग) रमणीय	-	(ग) मुझको
(घ) मनोभव	-	(घ) क्रम से
(ङ) माम्	-	(ङ) पुष्प

6.4 सार - संक्षेप

नैषधीय चरितम की कथा को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत कर संस्कृत से हिन्दी व्याख्या का समन्वय किया गया है । व्याख्या के क्रम में अन्वय, संस्कृत व्याख्या के साथ हिन्दी व्याख्या द्वारा व्याख्यात्मक शैली को इसकी में समन्वित किया गया है । नैषधीयचरितम के प्रथम सर्ग में 76 से 90 श्लोक तक व्याख्या के अंतर्गत व्याकरण भावार्थ आदि को समाहित कर प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है । व्याख्यात्मक शैली का अध्ययन करने से श्लोक आदि को भावार्थों के माध्यम से अध्याय में संकलित किया गया है ।

6.5 मुख्य शब्द

1. रसालसालः -आम का वृक्ष
2. अपुण्य कर्म -पाप कर्म
3. शरेषु- बाणों से
4. अमन्यत -माना
5. कुसुमेषु- पुष्पों में

6.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (घ), 2. (ङ), 3. (क), 4. (ख), 5. (ग)

6.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम- श्रीहर्ष, , कृष्णदास अकादमी , वाराणसी, १९८५।
2. आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीय चरितम- श्रीहर्ष, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २००८।
3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम- श्रीहर्ष, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी, २०१७
4. डॉ शोभा भरद्वाज, नैषधीयचरितम- श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, आगरा, २०२१ ।

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. नैषधीय चरितम के अनुसार उपवन का वर्णन कीजिए।
2. केतकी की पुष्प की महत्ता का वर्णन कीजिए।
3. पलाश पुष्प की छटा का वर्णन कीजिए ।

इकाई 7

नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग के 91 से 110 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 91 से 110 श्लोको की सप्रसंग व्याख्या

7.4 सार संक्षेप

7.5 मुख्य शब्द

7.6 स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के-उत्तर

7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

नैषधीय चरितम् के प्रतिपाद्य विषय तथा दमयंती के चरित्र चित्रण के पश्चात श्लोक के माध्यम से कथा को समझ जाना सुगम हो जाता है। श्री हर्ष के नैषधीय चरित की प्रथम सर्ग के श्लोक की माध्यम से उनकी व्याख्या के द्वारा प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुति इकाई में प्रस्तुत किया गया है। इसी आधार पर संस्कृत भाषा के श्लोक के द्वारा उन में प्रतिपाद्य विषय को जानकर भाषा के ज्ञान तथा व्याकरण, टिप्पणी आदि को समाहित कर व्याख्या की गई है। आगे की इकाइयों में भी कथा के मुख्या विषयों की विवेचना के साथ ही श्लोकों की व्याख्या को क्रम से वर्णित किया जायेगा।

7.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के श्लोकों की व्याख्या करने में समर्थ हो सके।
2. महाकाव्य में वर्णित नल के चरित्र को विशेष लोक के माध्यम से जान सके।
3. अन्वय, व्याकरण, भावार्थ आदि के माध्यम से संस्कृत भाषा को समझ सके।
4. संस्कृत विषय की व्याख्यात्मक तथा व्याकरण शैली से परिचित हो सके।
5. नैषधीय चरितम् के श्लोक के महत्व से परिचित हो सके।

7.3 91 से 110 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

अलिस्रजा कुङ्मलमुच्चशेखरम्

निपीय चाम्पेयमधीरया दृशा।

स धूमकेतुं विपदे वियोगिना-

मुदीतमाशङ्कितवानशङ्कत ॥९१॥

अन्वय- अलिस्रजा उच्चशेखरं चाम्पेयं कुङ्मलं अधीरया दृशा निपीय आशङ्कितवान् स वियोगिनाम् विपदे उदीतं धूमकेतुं अशङ्कत।

शब्दार्थ - अलिस्रजा = भ्रमर पंक्ति से युक्त। उच्चशेखरम् उन्नत चोटी वाली। चाम्पेयम् = चम्पा को। कुङ्मलम् = कली को। अधीरया व्याकुल। दृशा दृष्टि से। निपीय अच्छी प्रकार देखकर। आशङ्कितवान् = आशंका से युक्त। वियोगिनाम् वियोगियों की। विपदे विपत्ति में। उदीतम् उत्पन्न हुए। अशङ्कत = समझा।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में चम्पा की कलियों का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद - भ्रमरपंक्ति से युक्त उन्नत चोटी वालो चम्पा की कली की व्याकुल दृष्टि से अच्छी प्रकार देखकर आशंका से युक्त नल ने वियोगियों की विपत्ति में उत्पन्न हुए धूमकेतु समझा।

हिन्दी व्याख्या- चम्पा की कली अत्यधिक कामोद्दीपक होने के कारण विरहियों के लिए अनिष्टकारक ही हुआ करती है। अतः उसे धूमकेतु कहा गया है। धूमकेतु भी अनिष्टकारक होता है। उपवन में चम्पा की कलियों पर भ्रमरों को बैठा देखकर राजा नल किसी अनिष्ट की सम्भावना से अत्यन्त व्याकुल हो उठे। चम्पा की कलियों पर काले काले चोटी के समीन भँवरों को देखकर उन्हें ऐसा लगा मानो वियोगियों के विनाश के लिए गूमकेतु अर्थात् पुच्छल तारा उदित हो गया हो।

संस्कृत व्याख्या- अलिनजा भ्रमर पंक्त्या। उच्चशेखरम् उन्नतशिरो भूषणम्। चाम्पेयम् = चम्पक विकारम्। कुङ्कुमम् = मुकुलम्। अधीरया धैर्य रहितया। दूशा दृष्ट्या। निपीय सादरं दृष्ट्वा। आशङ्कितवान् = किञ्चिद निष्ठमुत्प्रेक्षितवान्। इति भावः। सः राजा नलः। वियोगिनाम् = विरहिणाम्। विपदे = विनाश सूचनाय। उदीतं उत्थितम्। धूमकेतुम् उत्पात विशेषम् अशुभसूचकं तारापुब्जम्। अशङ्कत = शङ्कितवान्।

गलत्परागं भ्रमिभङ्गिभिः पतत्-

प्रसक्तभृङ्गावलि नागकेसरम्।

स मारनाराच निघर्षणस्खल-

ज्ज्वलत्कणं शाणमिव व्यलोकयत् ॥ ९२ ॥

अन्वय- सः गलत्परागं भ्रमिभंगिभिः पतत् प्रसक्तभृंगावलि नागकेसरम् मारनाराचनिघर्षणस्खलत् ज्वलत् कणम् शाणमिव व्यलोकयत्।

शब्दार्थ - गलत् परागम् नीचे गिरते हुए पराग वाले। भ्रमिभंगिभिः विशेष प्रकार के चबकरोँ से। पतत् = नीचे उत्तरते हुए। प्रसक्त-भृंगावलि नागकेसरम् भौरों के समूह से युक्त नागकेसर को। मारनाचनिघर्षण = कामदेव के बाण को तेज करना। स्खलत् गिरते हुए। ज्वलत् कणम् जलते हुए स्फुलिंगों वाले। मारनाराच निघर्षण स्खलत् ज्वलत् कणम् = कामदेव द्वारा अपने बाणों को घिसते समय गिरते एवं जलते हुए अग्नि कणों वाले। शाणम् इव निकष पत्थर के समान। व्यलोकयत् देखा।

प्रसंग सन्दर्भ- नागकेसर के पुष्प विरही नल के लिए सन्तापदायक कैसे नहीं होंगे ? यही वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- उस राजा नल ने नीचे गिरते हुए पराग वाले तथा विशेष प्रकार के चक्करोँ से नीचे उतरते हुए भ्रमरोँ से युक्त नागकेसर को कामदेव द्वारा अपने बाण घिसकर तेज बनाने के साधन पत्थर के समान देखा।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल ने अपने प्रमोद वन में पहुँचकर नागकेसर के वृक्ष को देखा। नागकेसर के वृक्ष के पुष्पों से पराग के कण नीचे गिर रहे थे। ऊँचाई पर चारों ओर चक्कर काटने वाले भौरों ऊपर से नीचे की ओर आते हुए उस नागकेसर वृक्ष के पुष्पों पर बैठ रहे थे। बाण की नोंक को तेज करने के लिए तसे पत्थर पर घिसा जाता है। बाण की नोंक लोहे की बनी होती है। उसे पत्थर पर घिसने से चिनगारियाँ निकलती हैं। नागकेसर के पुष्पों से झड़ते हुए पराग के कण उस पत्थर से निकलने वाली आग की चिनगारियों के समान प्रतीत हो रहे थे।

संस्कृत व्याख्या- सः राजा नलः। गलत् परागम् भ्रष्ट पुष्प धूलिम्।
 भ्रमिभंगिभिः = भ्रमणस्यप्रकारैः। पतत् = नीचैः आगच्छत्। प्रसक्तभृंगावलि भ्रमर
 समूहने युक्तम्। नागकेसरम् एतन्नामकस्य वृक्षस्य पुष्पम्।
 मारनाराचनिघर्षणस्खलत् ज्वलत्कणम् = कामदेवस्य वाणानयं निघर्षणेन भ्रष्यद्भिः
 ज्वलत् कर्ण सहितम्। शाणमिव = निकषपाषाणाम् इव। व्यलोकयत् = दृष्टवान्।

तदङ्गमुद्दिश्य सुगन्धि पातुकाः

शिलीमुखालीः कुसुमाद् गुणस्पृशः ।

स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात्

स्मरः स्वनन्तीरवलोक्य लज्जितः ॥ ९३ ॥

अन्वय- सुगन्धि तदङ्गमुद्दिश्य गुणस्पृशः कुसुमात् पातुकाः स्वनन्तीः
 शिलीमुखालीः अवलोक्य स्मर स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् लज्जितः।

शब्दार्थ - सुगन्धि = सुगन्धित। उद्दिश्य उद्देश्य करके। गुणस्पृशः
 गुणाभिलाषिणी। कुसुमात् -पुष्पों से। पातुकाः = दौड़ने वाली। स्वनन्तीः शब्द करती
 हुए। शिलीमुखालीः भैवरों को पंक्तियों को। अवलोक्य - देखकर। स्मरः कामदेव।
 स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् अपने धनुष से गलत रूप से निकले हुए बाणों के अम
 से। लज्जितः लज्जित हो गया।

प्रसंग-सन्दर्भ- "नल का शरीर पुष्पो की अपेक्षा अधिक सुन्दर था." यह वर्णन
 श्री हर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया
 गया है।

हिन्दी अनुवाद- सुगन्धित नल के अङ्ग को उद्देश्य करके गुणभिलाषिणी पुष्पों से दौड़ने वाली शब्द करती हुई भँवरों की पंक्तियों को देखकर कामदेव अपने धनुष से गलत रूप से निकले हुए बाणों के भ्रम से लज्जित हो गया।

हिन्दी व्याख्या- नल का रूप सौन्दर्य पुष्पों से अधिक सुन्दर था। जब नल उधर से निकल रहे थे तो अगरपंक्तियाँ पुष्पों को छोड़कर उनके चारों ओर मँडराने लगीं। यह देखकर कामदेव को यह भ्रम हो गया कि उनकी अपनी धनुष की डोरी का स्पर्श करने वाले बाणों की पंक्तियाँ लक्ष्य भ्रष्ट होकर भ्रमरों की पंक्तियों के रूप में नल के चारों ओर गुञ्जन कर रही हैं।

संस्कृत व्याख्या- सुगन्धि मनोहरगन्धम्, तदङ्गम् नल शरीरम्, उद्दिश्य लक्ष्मीकृत्य, गुणस्पृशः धवनन्तीः शिलीमुखालीः = गन्धादि स्पृशः, मौर्वीस्पृशश्च, कुसुमात् पुष्पात्, पातुकाः धावन्तीः, स्वनन्तीः = अमर पंक्तीः बाण पंक्तिश्च, अवलोक्य दृष्ट्वा, स्मरः कामदेवः, स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् = स्वचापात् स्वधनुषः दुर्निर्गता दुःखेन निर्गताः मार्गणाः बाणाः तेषां भ्रमात्, लज्जितः ब्रीडितः अभवत् नूनमिति भावः।

मरुल्ललत्यल्लबकण्टकैः क्षतं

समुच्चरच्चन्दनसारसौरभम्।

स वारनारीकुचसञ्चितोपमं

ददर्श मालूरफलं पचेलिमम् ॥ ९४॥

अन्वयः - सः मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः क्षतं समुच्चलण्चन्दनसारसौरभं वारनारीकुचसञ्चितोपमं पचेलिमं मालूरफलं ददर्श ।

शब्दार्थ - मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः वायु से प्रकम्पित पल्लवों के काँटों से। क्षतम् = क्षत। समुच्चलत् = फैलते हुए। चन्दनसारसौरभम् चन्दन के समान गन्ध से युक्त। वारनारीकुचसञ्चितोपमम् = वेश्याओं के स्तनों की समानता करने वाले। पचेलिमम् पके हुए। मालूरफलम् बेल के फल को। ददर्श = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ- बिल्व फलों को वेश्या के स्तनों के रूप में वर्णित करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- नल ने वायु से प्रकम्पित पल्लवों के काँटों से क्षत, फैलते हुए चन्दन के समान गन्ध से युक्त, वेश्याओं के स्तनों की समानता करने वाले पके हुए बेल के फल को देखा।

हिन्दी व्याख्या- जिस प्रकार विलास करने वाले धूर्त नायक के काँटों के समान नाखूनों से क्षत विक्षत एवं विलिप्त चन्दन की सुगन्ध से युक्त वेश्या के स्तन प्रकम्पित होते हैं, उसी प्रकार पल्लवों के काँटों से क्षतविक्षत एवं फैलते हुए सुगन्ध से युक्त पके हुए बेल के फलों को वायु से हिलते हुए नल ने देखा।

संस्कृत व्याख्या- सः नलः। मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः मरुता बायुना ललन्तः विलसन्तः ये पल्लवाः तेषां कण्टकैः (अन्यत्र मरुत् देवः तद्वत् ललन् विलापं कुर्वन् यः पल्लवः विटः तस्य कण्टकाः कण्टकवल्लीक्षणाः नखाः तैः) क्षतम् आहतम्। समुच्चरच्चन्दन सारसौरभम् समुच्चरत् परितः प्रसर्पत् चन्दनसारस्य इव सौरभं गन्धं यस्मात् तादृशम् (अन्यत्र चन्दनस्य सारसौरभं यस्मात् तादृशम्) वारनारी कुच सञ्चितोपमम् = वारनारीकुचेन वेश्यास्तनेन सञ्चितोपमम् सम्पादित सादृश्यम् = वेश्यास्तनतुल्यशोभम् = इत्यर्थाः पचेलिमम् = स्वतः पक्वम्, मालूरफलम् = बिल्वफलम्, ददर्श अवलोकयामास ।

युवद्वयीचित्तनिमज्जनोचित-

प्रसून शून्येतरगर्भगहवरम्।

स्मरेषुधीकृत्य धिया भियान्धया,

स पाटलायाः स्तवकं प्रकम्पितः ॥ ९५ ॥

अन्वय- सः युवद्वयीचित्त निमज्जनोचितम् प्रसून शून्येतर गर्भगह्वरम् पाटलायाः स्तवकम् भियान्धया डि ाया स्मरेषुधीकृत्य प्रकम्पितः।

शब्दार्थ - युवद्वयी - युवक और युवती दोनों के। चित्तनिमज्जनोचितम् चित्तों में डूबने योग्य। प्रसून-शून्येतर गर्भगह्वरम् = पुष्पों से पूर्ण बीच के भाग वाले। पाटलायाः गुलाब के। स्तवकम् = गुच्छे को। भियान्धया = भय के कारण अन्धी बनी हुई। धिया बुद्धि के कारण। प्रकम्पितः = काँप गया।

प्रसंग-सन्दर्भ- पाटल पुष्पों के गुच्छों का वर्णन करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्री हर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- वह राजा नल युवक और युवती दोनों के चित्तों में प्रवेश करने योग्य पुष्पों से पूर्ण मध्य भाग वाले पाटल वृक्ष के पुष्पों के गुच्छों को भय के कारण अन्ध बुद्धि से कामदेव का तरकस समझकर कौप

हिन्दी व्याख्या- पाटल पुष्प के गुच्छे युवकों और युवतियों दोनों को पसन्द आते हैं, दोनों को रुचिकर लगते हैं, लेकिन वियोगावस्था में पाटल के गुच्छे तौर रखने वाले तरकस के समान लगते हैं। राजा नल स्वयं भी विरहावस्था में थे, अतः उस पाटलपुष्प के गुच्छे को देखकर उनका भयभीत हो जाना स्वाभाविक ही था। भय के कारण उनकी सोचने-समझने की शक्ति नष्ट हो गयी थी। पाटल पुष्प के गुच्छे देखकर उन्हें यह लगा कि कामदेव का बाण ने लग जाये।

संस्कृत व्याख्या- सः धारानरेशः नलः। युवद्वयीचित्त निमज्जनोचित प्रसून शून्येतर गर्भगह्वरम् = युवकस्य युवत्याः च मनसि अवगाहन योग्यैः पुष्पैः पूर्णमध्य भागम्। पाटलायाः पाटल नामकस्यतरीः। स्तवकम् = पुष्प समूहम्। भिया

भयेन कारणेन। अन्धया मूढया। धिया बुद्ध्या। स्मरेषुधीकृत्य = कामदेवस्य बाण
रक्षणपात्रम् ज्ञात्वा। प्रकम्पितः अकम्पत्।

मुनिद्रुमः कोरकितः शितिद्युति

र्वनेऽमुनाऽमन्यत सिंहिकासुतः ।

तमिस्रपक्ष त्रुटिकूटभक्षितं

कलाकलापं किल वैधवं वमन् ॥ ९६ ॥

अन्वय- अमुना बने कोरकितः शितिद्युतिः मुनिद्रुमः तमिस्रपक्षत्रुटिकूट भक्षितं
वैधवं कलाकलापं वमन् सिंहिकासुतः अमन्यत किल।

शब्दार्थ - अमुना = इसने। कोरकितः कलियों से युक्त। शितिद्युतिः = कृष्ण
कान्ति वाले। मुनिद्रुमः = अगस्त्य वृक्ष। तमिस्रपक्षत्रुटिकूट भक्षितम् कृष्ण पक्ष में
चन्द्रकला के घटने के बहाने से निगले गये हुए। वैधवम् = चन्द्रमा के।
कलाकलापम् कला समूह को। वमन् उगलता हुआ। सिंहिकासुतः = राहु। अमन्यत
जाना।

प्रसंग-सन्दर्भ- अगस्त्य वृक्ष को राहु के रूप में वर्णित करने वाला प्रस्तुत
श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- नल ने वन में कलियों से युक्त कृष्ण कान्ति वाले अगस्त्य
वृक्ष को कृष्ण पक्ष में चन्द्रकला के घटने के बहाने से निगले गये हुए चन्द्रमा के
कला समूह को उगलता हुआ राहु जाना।

हिन्दी व्याख्या- अगस्त्य वृक्ष की पत्तियाँ काली तथा पुष्प श्वेत होते हैं।
जब राजा नल ने वन में अगस्त्य वृक्ष को देखा तो उन्हें ऐसा लगा, मानो चन्द्रमा
को राहु ने निगल लिया था और अब धीरे-धीरे उसे उगल रहा है। राहु द्वारा

चन्द्रमा को उगलते हुए देखकर राजा नल ने सोचा कि जब इस राहु ने चन्द्रमा को निगल लिया था तो यह मेरे सन्ताप की वृद्धि नहीं कर रहा था लेकिन अब यह राहु चन्द्रमा का वमन कर रहा है इसलिए यह मेरे सन्ताप को निश्चित ही बढ़ायेगा।

संस्कृत व्याख्या- अमुना नलेन, वने विपिने। कोरक्तिः मुकुलितः। शितिद्युतिः = कृष्णकान्तिः शितिः कृष्णः द्युतिः छविः वस्य तादृशः। मुनिद्रुमः अगस्त्यवृक्षः। तमिस्रपक्षत्रुटिकूटभक्षितम् = कृष्णपक्षक्षयव्याजगिलितम् वैधवम् चन्द्रसम्बन्धिनम्। कलाकलापम् कलासमूहम्। वमन् उद्गिरन् सिंहिकासुतः = राहुः। अमन्यत ज्ञातः। किल निश्चयेन ।

पुरो हठाक्षिप्ततुषारपाण्डर-

च्छदावृतेर्वीरुधि बद्धविभ्रमाः ।

मिलन्निमीलं विदधुर्विलोकिताः,

नभस्वतस्तं कुसुमेषु केलयः ॥ ९७ ॥

अन्वय - पुरः हठात् क्षिप्ततुषार पाण्डुरच्छदावृत्तैः नभस्वतः वीरुधि बद्धविभ्रमाः कुसुमेषु केलयः विलोकिताः तं मिलन्निमीलं विदधुः।

शब्दार्थ - पुरः = सामने । हठात् = हठपूर्वक । क्षिप्ततुषारपाण्डरच्छत्वावृतेः हटा दिया है, बर्फ के कारण धवल हुए पर्चीं रूपी आवरण को जिसने। नभस्वतः पवन के। वीरुधि लताओं में। बद्धविभ्रमाः = भ्रमण करने वाली। कुसुमेषु फूलों में। केलयः क्रीडाएँ। विलोकिताः देखी। तम् नलम् उस नल को। मिलन्निमीलम् = नवनों को बन्द करने वाला। विदधुः बना दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ- वायु द्वारा लताओं के साथ की जा रही कामक्रीड़ा का वर्णन करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- नल के सामने ही वायु बर्फ से धवल हो गयी पत्तियों को हठपूर्वक हटा रहा था। भ्रमण करता हुआ लताओं में लगे पुष्पों के साथ विशेष क्रीड़ाएँ कर रहा था। उन्हें देखकर नल ने आँखें बन्द कर लीं।

हिन्दी व्याख्या- यन में एक ओर कुछ लताएँ थीं। बर्फ अथवा तुषार उनके ऊपर जम गया था। इससे उन लताओं के पत्ते श्वेत दिखाई दे रहे थे। पवन हठपूर्वक उन पत्तों को हटाता हुआ लताओं और उनके पुष्पों के साथ खेल रहा था, पवन खेल करने के साथ ही लताओं के चारों ओर घूम रहा था। नल को ऐसा प्रतीत हुआ कि लता नायिका है, पवन नायक है और तुषार के कारण श्वेत बने पत्ते और फूल नायिका के वस्त्र हैं। लता के चारों ओर घूमकर क्रीड़ा करता हुआ और पत्तों को हटाता हुआ पवन राजा नल को नायिका को निर्वस्त्र करता हुआ नायक लगा। राजा नल के आँखें बन्द कर लेने का यही कारण था।

संस्कृत व्याख्या- पुरः = सम्मुखं, अग्रे। हठात् बलपूर्वकम्। क्षिप्त तुषार पाण्डुरच्छदावृत्तैः = हिमेन आकृष्ट। धवलानाम् = पत्राणाम् आवरणम् येन तस्य। नभस्वतः पवनस्य। विरुधि वल्लयाम्। बद्धविभ्रमाः = सम्बद्ध भ्रमरणमणयः विलासाः। कुसुमेषु पुष्पेषु। केलयः पवनस्य क्रीडा। विलोकिताः नलेन दृष्टाः ता क्रीडाः। तम् = नलम्। मिलन्निमीलम् = संकुचितनेत्रवन्तम्। विदधुः = चक्रुः।

गता यदुत्सङ्गतले विशालतां

द्रुमाः शिरोभिः फलगौरवेण ताम्।

कथं न धात्रीमतिमात्रनामितैः

स वन्दमानानभिनन्दति स्म तान् ॥ ९८ ॥

अन्वय- द्रुमाः यदुत्सङ्गतले विशालतां गताः तां धात्रीं फलगौरवेण
अतिमात्रनामितैः शिरोभिः वन्दमानान् तान् स कथं न अभिनन्दति स्म।

शब्दार्थ- द्रुमाः वृक्षाः। यदुत्सङ्गतले जिसको गोद में। विशालताम् विशालता को। गताः = प्राप्त हुए। तां उसकी। धात्रीम् धाय को। फलगौरवेण फल के भार से। अतिमात्रनामितैः = अत्यधि एक झुकाये गये। शिरोभिः सिरों से। वन्दमानान् = वन्दना करने वाले। अभिनन्दति अभिनन्दन करते।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में फल पुष्पों से गौरवान्वित वृक्ष पृथ्वी की वन्दना कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद - जिसकी गोद में विशालता को प्राप्त हुए और फलपुष्प के भार से अत्यधिक झुकाये गये सिरों से वन्दना करने वाले उन वृक्षों का नल अभिनन्दन कैसे न करते।

हिन्दी व्याख्या- जिस प्रकार संसार में जिस धाय की गोद में पलकर पुत्र बड़ा होता है और पुण्य जन्य गौरव से युक्त होकर यह नतमस्तक होकर उनकी वन्दना करता है, वह पुत्र अभिनन्दनीय होता है, उसी प्रकार जब नल ने वन में फलों और फूलों के भार से लदे हुए वृक्षों को देखा तो उन्हें ऐसा लगा, जैसे वे वृक्ष अपनी मातृभूमि का झुके हुए सिरों से वन्दन कर रहे हों, ऐसे वृक्षों के दर्शन पाकर राजा नल स्वयं उनका अभिनन्दन करने लगे।

संस्कृत व्याख्या- द्रुमाः = वृक्षाः। यदुत्सङ्गतले यस्याः धात्र्याः उत्सङ्गतले। अंकस्थले विशालतां गताः = विवृद्धिम् प्राप्ताः ताम् धात्रीम् उपमातरं। फलगौरवेण फलभरेण फलाधिक्येन वा। अतिमात्रनामितैः = अतिमात्र अतिशयेन नामितैः। शिरोभिः अग्रभागैः उत्तमाङ्गैश्च वन्दमानान् स्पृशतः। अभिवादनमानांश्च। नमस्कारं कुर्वतो वा, तान् द्रुमान् सः नलः। कथं केन प्रकारेण न अभिनन्दति स्म = अभिनन्दति। वृक्षाणां क्षेत्रानुरूपफलस्य सम्पत्तिम्। अपत्यानां च मातृभक्तिं च को नाभिनन्दतीति भावः।

नृपाय तस्मै हिमितं वनानिलैः,
 सुधीकृतं पुष्परसैरहर्महः ।
 विनिर्मितं केतकरेणुभिः सितं,
 वियोगिनेऽदत्त न कौमुदी मुदः ॥ ९९ ॥

अन्वय- वनानिलैः हिमितम् पुष्परसैः सुधीकृतम् केतकरेणुभिः सितम् विनिर्मितम् धर्महः तस्मै वियोगिने नृपाय कौमुदीमुदः न अदत्त।

शब्दार्थ - वनानिलैः = वन के पवनों द्वारा। हिमितम् = शीतल बनाया गया। पुष्परसैः फूलों के रसों के द्वारा। सुधीकृतम् = अमृत तुल्य बनाया हुआ। केतकरेणुभिः केतकी के पुष्पों के पराग के द्वारा। सितम् = धवल । विनिर्मितम् = बनाया गया। अहर्महः दिवस का तेज। तस्मै वियोगिने उस वियोगी नल के लिए। नृपाय = राजा के लिए। कौमुदीमुदः चाँदनी का सुख। न अदत्त प्रदान नहीं कर पाया।

प्रसंग-सन्दर्भ- केतकी के पुष्पों का प्रभाव वियोगी राजा नल पर पड़ने का वर्णन 'नैषधीय चरितम्' के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस श्लोक में कवि श्रीहर्ष द्वारा किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- उपवन की वायु के द्वारा शीतल, केतकी के फूलों के मकरन्द के रस से अमृत तुल्य बनाया हुआ तथा पराग के कणों द्वारा धवल किया हुआ दिन का तेज उस वियोगी राजा नल को चाँदनी का सुख प्रदान नहीं कर पाया।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल ने अपने प्रमोदवन में जाकर केतकी की लता को देखा। वन में जो शीतल पवन चल रहा था, उसने दिन को शीतल बना दिया था। केतकी के पुष्पों के मकरन्द रस ने दिन को अमृत के समान सुगंधित एवं स्वादमय कर दिया था। केतकी के पुष्पों के पराग के कारण दिन श्वेत हो गया था। इतने पर भी दिन का तेज राजा नल को चाँदनी का आनन्द प्रदान नहीं कर सका। इसका कारण नल का वियोगी होना था। विरहावस्था में शीतल वस्तुएँ भी नल को कष्ट पहुँचा रही थीं।

संस्कृत व्याख्या- वनानिलैः वन अनिलैः उपवनस्य पवनैः। हिमितम् शीतलीकृतम् । पुष्परसैः = पुष्पाणां मकरन्दैः। सुधीकृतम् अमृततुल्यं निर्मितम्। केतक रेणुभिः केतक लतायाः पुष्पाणां परागस्य कणैः। सितम् = श्वेतम्। विनिर्मितम् सम्पादितम्। अहर्महः दिवसस्य आतपः। तस्मै वियोगिने = दमयन्त्याः वियोग सहमानाय। नृपाय राजे नलाय। कौमुदी मुदः चन्द्रिकायाः सुखम्। न अदत्त = दातुं समर्थो, न अभवत् ।

वियोगभाजोऽपि नृपस्य पश्यता

तदेव साक्षादमृतांशुमाननम् ।

पिकेन रोषारुणचक्षुषा मुहुः

कुहूरुताऽऽहूयत चन्द्रवैरिणी ॥ १०० ॥

अन्वय- वियोगभाजः अपि नृपस्य तत् आननं साक्षात् अमृतांशु एवं पश्यता रोषारुणचक्षुषा पिकेन मुहुः कुहूरुता चन्द्रवैरिणी आहूयत ।

शब्दार्थ - वियोगभाजः = वियोगी होने पर। नृपस्य राजा के। आननम् मुख को। साक्षात् = प्रत्यक्ष रूप में। अमृतांशु = चन्द्रमा। पश्यता देखते हुए। रोषारुण = क्रोध से लाल। चक्षुषा = नेत्रों वाले। पिकेन = कोयल के द्वारा। मुहुः बार-बार। कुहूरुता कुहू शब्द द्वारा। चन्द्रवैरिणी = अमावस्या। आहूयत = बुलायी गयी।

प्रसंग-सन्दर्भ - विरहावस्था में भी नल का मुख चन्द्र से अधिक सुन्दर था, ऐसा वर्णन करने वाला प्रस्तुत श्लोक औहपं विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- वियोगी होने पर भी राजा के उस मुख को प्रत्यक्ष रूप में चन्द्रमा ही देखते हुए, क्रोध से लाल नेत्रों वाले कोयल द्वारा कुहू शब्द से बार-बार अमावस्या को बुलाया।

हिन्दी व्याख्या- उस उपवन में चारों ओर अत्यधिक कामोद्दीपक परिस्थितियाँ और वातावरण राजा नल को विरहावस्था की ओर अधिक उत्तेजित कर रहे थे। फिर भी विरही राजा नल का मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर दिख रहा था। वन में कुहू कुहू शब्द करती हुई लाल नेत्रों वाली कोयल ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो वह नल के मुख को चन्द्रमा समझकर अत्यन्त क्रोध के साथ चन्द्रमा की वैरिणी अमावस्या को बुला रही हो।

संस्कृत व्याख्या- वियोगभाजः अपि वियोगिनः अपि। नृपस्य राजः, नलस्येत्यर्थः। तत् आननम् एवं = मुखम् एव । साक्षात् = प्रत्यक्षम्। अमृतांशु चन्द्रम्। पश्यता = विलोकयता। अतएव रोषारुण चक्षुषा = क्रोधरवत नयनेन। रोषेण क्रोधेन अरुणे रक्ते चक्षुषी नेत्रे यस्य तथाविधेन। पिकेन = कोकिलेन मुहुः = वारंवारम् । कुहूरुता = कुहः इति रुत् शब्दों यस्य तेन अथवा कुडूः इति रुत् शब्दः तथा। चन्द्रवैरिणी = चन्द्रस्य वैरिणी विरोधिनी अमावस्या। आहूयत आहूता।

अशोकमर्थान्वित नामताशया,

गतान् शरण्यं गृहशोचिनोऽध्वगान् ।

अमन्यतावन्तमिवैष पल्लवैः,

प्रतीष्टकामज्वलदस्त्र जालकम् ॥ १०१ ॥

अन्वय- एषः पल्लवैः प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकम् अशोकम्
अर्थान्वितनामताशया शरण्यं गतान् गृहशोचिनः अध्वगान् अवन्तमिव अमन्यत ।

शब्दार्थ- पल्लवैः = पत्तों के द्वारा। प्रतीष्ट कामज्वलदस्त्र जालकम् = कामदेव के जलते हुए अस्त्र अर्थात् बाण को स्वीकार करने वाले। अशोकम् अशोक वृक्ष का। अर्थान्वितनामताशया = शोकरहित इस सार्थक नाम की आशा से। शरण्यम् शरण के योग्य समझकर। गतान् गये हुए। गृहशोचिनः = घर कौ चिन्ता करने वालों को। अध्वगान् पथिकों को। अवन्तमिव रक्षा करते हुए के समान। अमन्यत = माना।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में अशोक वृक्ष का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- अशोक वृक्ष अपने पत्तों के द्वारा कामदेव के अस्त्र समूह को स्वीकार करने तथा अपना शोकरहित नाम सार्थक करने वाला था। अपने घरों की चिन्ता करने वाले जो पथिक अशोक को शरणागत की रक्षा करने योग्य समझकर आते थे, उनकी रक्षा करता था।

हिन्दी व्याख्या- अशोक वृक्ष के पत्ते लाल रंग के अथवा लालिमा लिए हुए होते हैं। राजा नल को लगा कि कामदेव ने अशोक वृक्ष पर जो बाण छोड़े, उन्हें इसने सहन किया है। बाणों के घावों से निकले रक्त के कारण ही अशोक वृक्ष के पत्तों का रंग लाल हो गया है। अशोक का अर्थ है-शोकरहित। जहाँ शोक का अभाव हो, जहाँ पहुँचने वाला शोकरहित हो जाये, उसे अशोक कहा जाता है। अशोक का वृक्ष राजा नल को यथा-नाम तथा-गुण अथवा अपने सार्थक नाम वाला प्रतीत हुआ,

क्योंकि अपने घरों अर्थात् पत्नियों को चिन्ता करने वाले जो पथिक अशोक के वृक्ष के नीचे आते थे तथा उसे शरण देने वाला समझते थे, उनकी यह वृक्ष रक्षा कर रहा था।

संस्कृत व्याख्या- एषः राजा नलः। पल्लवैः नवपत्रैः। प्रतीष्टकामञ्चलदस्त्रजालकम् = कामदेवस्य अस्त्र समूह सदृशम्। अशोकम् एतन्नामकं वृक्षम्। अर्थान्विततनामताशया स्वनाम्नः अर्थस्यानुकूलतया, नाम्नः सार्थकतया। शरण्यम् = शरणं दातुं योग्यम्। गतान् प्राप्तान् । गृहशोचिनः गृहगत पत्नी सम्बन्धि ति शोकं कुर्वतः। अध्वगान् = पथिकान्। अवन्तमिव = रक्षां कुर्वन्तमिव। अमन्यत = मनसि कृतवान्।

विलासवापीतटवीचिवादनात्

पिकालिगीतेः शिखिलास्यलाघवात् ।

वनेऽपि तौर्यत्रिकमारराध तं

वव भोगमाप्नोति न भाग्यभागजनः ॥१०२॥

अन्वय- विलासवापीतटवीचिवादनात् पिकालिगीतेः शिखिलास्यलाघवात् तौर्यत्रिकं वने अपि तं आरराध् । भाग्यभाक् जनः वव भोगं न आप्नोति ?

शब्दार्थ- विलासवापीतटवीचिवादनात् क्रीड़ा करने सम्बन्धी बावड़ी के तटों पर तरंगों के शब्द से। पिकालिगीतेः = कोयलों और भ्रमरों के गाने से। शिखिलास्यलाघवात् मयूरों के नृत्य द्वारा। तौर्यत्रिकम् - गायन, वादन और नृत्य द्वारा। वने वन में। आरराध सेवा की गयी। भाग्यभाक् भाग्यशाली। वव = कहाँ। आप्नोति = प्राप्त करता है।

प्रसंग-सन्दर्भ- भाग्यशाली पुरुष को सर्वत्र सर्व वस्तु सुलभ होती है, यही वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- क्रीड़ा करने सम्बन्धी बावड़ी के तटों पर तरंगों के शब्द से कोयलों और भौरों के गाने से तथा मयूरों के नृत्य द्वारा वन में भी उनकी गायन, वादन और नृत्य इन तीनों से सेवा की गयी। भाग्यशाली जन कहाँ सुख को प्राप्त नहीं करता है ?

हिन्दी व्याख्या- राजा नल अपने राजमहल में काम पीड़ा से दुःखी थे, अतः वे उपवन में काम पीड़ा की शान्ति हेतु आये थे, लेकिन उस वन में क्रीड़ा बावली के तट पर तरंगों के बाजे बज रहे थे। कोयल कूजन कर रही थी भ्रमर गुंजन कर रहे थे और मोर नृत्य द्वारा आनन्द दे रहे थे। इस प्रकार गायन, वादन और नृत्य तीनों से युक्त संगीत से राजा नल की बिरह वेदना से मुक्त करने का प्रयास किया जा रहा था, क्योंकि भाग्यवान् मनुष्य को भोग विलास के साधन सर्वत्र प्राप्त हो जाते हैं।

संस्कृत व्याख्या- विलासवापीतटवोचिवादनात् = विलासरूपी विहारदीर्घिका तस्याः तटे तीरे चोचीनां तरङ्गाणां वादनात् नादात्। पिकालिगीतैः पिकानां कोकिलानां अलीनां च भ्रमराणां च गीतैः गानात्। शिखिलास्यलाघवात् = मयूरनृत्य नैपुण्यात्। वनेऽपि उपवने अपि। तं नलम्। आरराध = आराधयामास, तथाहि भाग्यभाक् = भाग्यवान्। जनः पुरुषः क्व कुत्रस्थाने गृहे वनेऽपि वा इति शेषः। भोगं सुखं न आप्नोति = न प्राप्नोति । सर्वत्रैव सुखं प्राप्नोति इति भावः ।

तदर्थमध्याप्य जनेन तद्वने

शुका विमुक्ताः पटवस्तमस्तुवन् ।

स्वरामृतेनोपजगुश्च शारिका-

स्तथैव तत्पौरुषगायनीकृताः ॥ १०३ ॥

अन्वय- जनेन तदर्थं अध्याप्य तद् बने विमुक्ताः पटवः शुकाः तं अस्तुवन्। च तथैव तत्पौरुषगायनीकृताः शारिकाः स्वरामृतेन उपजगुः। वन में। विमुक्ताः छोड़े गये। शुकाः उनके पौरुष को गायिका बनायी गयी। गाना गया।

शब्दार्थ - जनेन = लोगों द्वारा। अध्याप्य पढ़ाकर। बने = तोते। अस्तुवन् = स्तुति करते थे। तत्पौरुष गायनीकृताः शारिकाः = शारिकाओं ने। स्वरामृतेन मधुर स्वर से। उपजगुः

प्रसंग-सन्दर्भ- शुक शारिकाओं द्वारा नल की स्तुति का श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- लोगों द्वारा उस नल के मनोरंजन के लिए पढ़ाकर उस वन में छोड़े गये चतुर तोतों ने उनकी स्तुति की। उसी प्रकार उनके पौरुष की गायिका चनायी गयी शारिकाओं ने मधुर स्वर से गान किया।

हिन्दी व्याख्या- उस वन में शुक शारिकाओं को राजा नल को प्रसन्नता प्रदान करने के लिए तथा उनके पराक्रम का वर्णन करने के लिए सिखाया पढ़ाया गया था। अतः जब नल उस उपवन में पहुंचे तो भली-भाँति शिक्षित किये गये चतुर स्पष्ट उच्चारण करने में कुशल तोतों द्वारा उनकी स्तुति की गयी और उसी प्रकार राजा नल के पराक्रम सम्बन्धी गानों का गान करने में अभ्यस्त एवं शिक्षित शारिकाओं ने अमृत के समान मधुर स्वर से वर्णन किया।

संस्कृत व्याख्या- जनेन सेवकजनेन। तदर्थम् प्रशंसार्थम्। अध्याप्य = स्तुतिं पाठयित्वा । तद्वने = तस्मिन् वने। विमुक्ताः विसृष्टाः। पटवः व्यक्त गिरः। शुकाः कीराः तं नलम् अस्तुयन् = स्तुतबन्तः । तथैव = तेन प्रकारेणैव। शुक्रवत् एव। तत्पौरुषगायनीकृताः = तत्पौरुषस्य नलपराक्रमस्य गायिन्यः गायकाः कृता गायनीकृताः। शारिकाः = शुकबध्वः। स्वराऽमृतेन मधुर स्वरेण इतिभावः। उपजगुश्च = अगायत् ।

इतीष्टगन्धाढ्यमटन्नसौ वनं,

पिकोपगीतोऽपि शुकस्तुतोऽपि च।

अविन्दतामोदभरं बहिः परं,

विदर्भसुभ्रूविरहेण नान्तरम् ॥ १०४ ॥

अन्वय- इति इष्टगन्धाढ्यम् बनम् अटन् पिकोपगीतोऽपि, शुकस्तुतोऽपि च असौ बहिश्चरम् आमोदभरम् अविन्दित। विदर्भसुभ्रूविरहेण आन्तरम् न।

शब्दार्थ - इति = इस प्रकार। अटन् घूमता हुआ। पिकोपगीतोऽपि कोयल के द्वारा गाये जाने पर। शुकस्तुतोऽपि - तोते के द्वारा स्तुति करने पर भी। बहिश्चरम् = बाहर संचरण करते हुए, बाहरी रूप से। आमोदभरम् = प्रसन्नता के भार को, अतिशय प्रसन्नता को। अविन्दत प्राप्त किया। विदर्भसुभ्रूविरहेण विदर्भ राज्य की सुन्दरी दमयन्ती के वियोग के कारण। आन्तरम् = आन्तरिक।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वन देखने के पश्चात् हुई राजा नल की दशा का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद - इस प्रकार अभीष्ट गन्ध वाले वन में घूमते हुए कोयलों द्वारा गाये हुए गीतों और तोतों के द्वारा की गयी स्तुति को सुनकर भी राजा नल ने बाहरी रूप से अतिशय आनन्द प्राप्त किया। विदर्भ राज्य की सुन्दरी दमयन्ती के वियोग के कारण आन्तरिक आनन्द प्राप्त नहीं किया।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल जिस प्रमोद वन में भ्रमण कर रहा था, उसमें वही गंध भरी हुई थी, जिसे राजा नल पसन्द करता था। उस उपवन के पुष्पों की गंध राजा नल की रुचि के अनुकूल थी। उस उपवन में जो कोयलें कूक रही थीं, वे भी राजा नल को अपनी प्रशंसा में गीत गाने वाली जान पड़ीं। उस उपवन में बोलने

वाले तोते राजा नल को अपनी स्तुति करने वाले जान पड़े। उस वन को सभी प्रकार अपने अनुकूल जानकर राजा नल को जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह आन्तरिक नहीं, बाह्य था। अपनी प्रेयसी दमयन्ती के वियोग के कारण नल को आन्तरिक आनन्द की प्राप्ति नहीं हुई।

संस्कृत व्याख्या - इति अनेन प्रकारेण। इष्टगन्धाढ्यम् = रुचि सम्बन्धि सुगन्धिना युक्तम्। वनम् = आरण्यम्। अटन् = भ्रमणं कुर्वन्। पिंगगीतः अपि कृताम् स्वकीयाम् प्रशंसाम् आकर्णयन् अपि। असौ कोकिलानां गानं शृण्वन् अपि। शुकस्तुतः अपि कौरैः राजा नलः। बहिश्चरम् = बाह्यम्। आमोदभरम् अत्यधि एकः हर्षम्। अविन्दत = प्राप्तवान्। आन्तरम् आन्तरिकम् आनन्दम् न नहि प्राप्तवान्।

करेण मीनं निजकेतनं दधत्

दुमालवालाम्बुनिवेशशङ्कया।

व्यतर्कि सर्वतुङ्घने वने मधुं

स मित्रमत्रानुसरन्निव स्मरः ॥१०५॥

अन्वय - स निजकेतनं मौनं दुमालवालाम्बुनिवेशशङ्कया करेण दधत् सर्वतुङ्घने अन्न बने मित्रं मधु अनुसरन् स्मर इव व्यतर्कि।

शब्दार्थ - निजकेतनम् = अपने चिह्न को। मीनम् = मछली को। दुमालवालाम्बु = वृक्षों के आलवाल के जल में। निवेशशङ्कया = प्रवेश करने की शंका से। करेण हाथ द्वारा। दधत् धारण करते हुए। सर्वतुङ्घने = सभी ऋतुओं से युक्त। मधुम् बसन्त को। अनुसरन् = अनुगमन करता हुआ। स्मर = कामदेव। व्यतर्कि = समझा।

प्रसंग-सन्दर्भ- नल को कामदेव के रूप में वर्णित करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत हैं।

हिन्दी अनुवाद- नल को अपने चिह्न मछली को वृक्षों के आलबाल के जल में प्रवेश करने की शंका से हाथ द्वारा धारण करते हुए, सभी ऋतुओं से युक्त इस वन में अपने मित्र का अनुगमन करता हुआ कामदेव के समान समझा।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल चक्रवर्ती राजा थे। उनके हाथ में मत्स्य रेखा थी जो चक्रवर्ती होने की सूचक मानी जाती है। मछली को जल से अत्यधिक प्रेम होता है, अतः वह कहीं पेड़ों के थालों के जल में न घुस जाये, इस भय से मानो नल ने उसे अपने हाथ में ही धारण कर लिया था। मछली कामदेव की पताका मानी जाती है। अतः राजा नल को मत्स्य रूपी पताका धारण करने के कारण अपने मित्र वसन्त का अनुगमन करते हुए कामदेव के रूप में वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने समझा।

संस्कृत व्याख्या- सः = नलः। निजकेतनम् स्वलाञ्छनम्। मीनम् = मत्स्याम्। द्रुमालवालाम्बुनिवेशशङ्कया = द्रुमाणां वृक्षाणां आलवालेषु आवोपेषु यत् अम्बु जलं तस्मिन् निवेशः प्रवेशः, तस्य शङ्कया भयकारणेन = हस्तेन, दधत् = धारयन् । मत्स्यरेखाच्छलेन दधानं इति भावः। सर्वर्तुधने सर्वर्तुसङ्कुले अन्त्र अस्मिन्, वने = विपिने। मित्रम् = सख्खायम्। मधुम् वसन्तम्। अनुसरन् अन्विष्यन्। स्मर इव काम इव व्यतर्कि = अमन्यत तत्रस्थजनैः इति शेषः।

लताऽबलालास्यकलागुरुस्तरु-

प्रसून गन्धोत्करपश्यतोहरः ।

असेवतामं मधुगन्धवारिणि,

प्रणीत लीलाप्लवनो वनानिलः ॥ १०६ ॥

अन्वय- लताऽबलालास्यकलागुरुः तरुप्रसून गन्धोत्कर पश्यतोहरः मधुगन्धवारिणि प्रणीतलीलाप्लवनः, वनाऽनिलः अमुम् असेणत्।

शब्दार्थ - लताऽलालास्यकलागुरुः लताओं-रूपी युवतियों को नृत्य विद्या सिखाने वाला गुरुः। तरु प्रसूनं गन्धोत्कर पश्यतोहरः हरे वृक्षों के फूलों की अधिक मात्रा वाली गन्ध चुराने वाला। मधुगन्धवारिणि = पुष्पों के रस से सुगन्धित जल में। प्रणीत लीलाप्लवनो जल-केलि करने वाला। वनानिलः वन के पवन ने। अमुम् = इस राजा नल की। असेवत सेवा की।

प्रसंग-सन्दर्भ- शीतल, मन्द सुगन्ध पवन के प्रभाव का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- लताओं-रूपी युवतियों को नृत्य की शिक्षा देने वाले गुरु, वृक्षों के पुष्पों की अत्यधिक गंध को चुराने वाले तथा पुष्पों के मकरन्द के कारण सुगन्धित जल में तैरने की क्रीड़ा करने वाले पवन ने राजा नल की सेवा की।

हिन्दी व्याख्या- जिस वन में राजा नल ने भ्रमण किया, उसमें पवन के चलने से लताएँ हिल रही थीं। ऐसा जान पड़ता था कि पवन ती नृत्य सिखाने वाला गुरु है और लताएँ नृत्य सिखाने वाली युवतियाँ हैं। उस वन में चलने वाला पवन फूलों के रस अर्थात् मकरन्द की गन्ध के कारण सुगन्धित हो रहा था। उस वन के सरोवरों और सरिताओं का जल पुष्पों के मकरन्द की गंध के कारण सुगन्धित हो गया था। उसमें तैरने के कारण पवन भी सुगन्धित हो गया था। जब राजा नल उस उपवन में पहुँचे तो सुगन्धित शीतल पवन ने उनका स्पर्श किया, जिससे राजा नल को आनन्द का अनुभव हुआ। इस प्रकार अपने मधुर सुगन्धित स्पर्श से बन की वायु ने राजा नल की सेवा की।

संस्कृत व्याख्या- लताबलालास्य गुरुः लता अबला लास्य गुरुः = व्रतति रूपिणीनाम् युवतीनां नृत्यस्य शिक्षकः। तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः तरु प्रसून गन्ध उत्तर पश्यतोहरः वृक्षाणां पुष्पाणां गन्ध समूहस्य चौरः। मधुगंध वारिणि पुष्पाणां मकरन्देन सुगन्धिते जले। प्रणीत लोला प्लवनः = सम्पादित क्रीडावगाहनः। वनानिलः वन अनिलः अरण्यस्य पवनः। अमुम् नृपं नलम्। असेवत सेवितवान् ।

अथ स्वमादाय भयेन मन्थना

चिरत्नरत्नाधिकमुच्चितं चिरात् ।

निलीय तस्मिन्निवसन्नपांनिधि

वने तडागो ददृशेऽवनीभुजा ॥ १०७॥

अन्वय- अथ अवनीभुजा मन्थनात् भयेन चिरात् उच्चितं चिरत्नरत्नाधिकं स्वं आदाय तस्मिन् वने निलीय निवसन् अपान्निधिः तडागः ददृशे।

शब्दार्थ - अवनीभुजा = राजा ने। मन्थनात् मन्थन से। भयेन भय द्वारा। चिरात् = चिरकाल से। उच्चितम् = बढ़ाए हुए। चिरत्नरत्नाधिकम् प्राचीन रत्नों की अधिकता वाले। स्वम् = धन को। आदाब = लेकर। निलीय = छिपकर। निवसन् निवास करते हुए। अपान्निधिः समुद्र। तडागः जलाशय। ददृशे = देखा।

प्रसंग सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में विशाल सरोवर का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- इसके बाद राजा ने मन्थन के भय से चिरकाल से बढ़ाये हुए प्राचीन रत्नों की अधिकता वाले अपने धन को लेकर उस वन में छिपकर निवास करते हुए समुद्र के समान सरोवर को देखा।

हिन्दी व्याख्या- जिस प्रकार कोई धनवान् अपने धन को लेकर चोरी के भय से कहीं छिपकर रहता है, उसी प्रकार मानो समुद्र अपने मन्थन के भय से अपने अन्दर विद्यमान रत्नादि लेकर राजा नल के उस उद्यान में जाकर विशिष्ट जलाशय के रूप में स्थित हो गया हो, ऐसे विशाल जलाशय को राजा नल ने उस उपवन में देखा। वह जलाशय वस्तुतः राजा का क्रीड़ा सरोवर था, जो समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर और विविध रत्नों से युक्त था।

संस्कृत व्याख्या- अथ वनावलोकनानन्तरम्। अवनीभुजा राजा नलेन। भयेन भीत्या। धनाऽर्थ पुनर्मथिष्यति इति भिया इति भावः। चिरात् बहुकालात्, उचितम् = सञ्चितम्। चिरत्नरत्नाधिकम् = चिरत्नं चिरात्तनं पुरातनं वा रत्नाधिकं श्रेष्ठम् = वस्तुभूयिष्ठम्। स्वं धनम्। आदाय गृहीत्या। तस्मिन् वने विपिने। निलीय = तिरोहितीभूय। निवसन् वर्तमानः। अपान्निधिः समुद्रः (इव) तडागः पद्माकरः सरोविशेषः इति भावः। ददृशे दृष्टः।

पयोनिलीनाभ्रमुकामुकावली

रदाननन्तोरग पुच्छसच्छवीन्।

जलार्द्धरुद्धस्य तटान्तभूभिदो

मृणालजालस्य निभाद्बभार यः ॥ १०८ ॥

अन्वय-यः जलार्द्धरुद्धस्य तटान्तभूभिदः मृणालजालस्य निभात् अनन्तोरग पुच्छसच्छवीन् पयोनिलीनाभ्रमुकामुकावलीरदान् बभार।

शब्दार्थ-यः जो। जलार्द्धरुद्धस्य जल में आधे छिपे हुए। तटान्त भूभिदः = किनारे के अन्त की भूमि का भेदन करने वाले। मृणालजालस्य कमल के डंठलों के समूह के। निभात् = बहाने से। अनन्तोरग-पुच्छसच्छवीन् = शेषनाग की पूँछ के

समान उत्तम शोभा वाले। पयोनिलीन सागर के जल में डूबे हुए। अभ्रमुकामुकावली ऐरावत गजों के समूह के। रदान् दाँतों को। बभार = धारण किया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में विशिष्ट सरोवर का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- जो जल में आधे छिपे हुए किनारे के अन्त की भूमिका भेदन करने वाले मृणाल समूह के बहाने शेषनाग की पूँछ के समान उत्तम शोभा वाले जल में छिपे हुए ऐरावतों के दाँतों को धारण करता था।

हिन्दी व्याख्या- उस विशाल सरोवर में अत्यधिक मात्रा में कमल थे, जिनके मृणाल सरोवर के जल में आधे डूबे हुए थे। तात्पर्य यह है कि कमलों के शेष नाल, पत्र और पुष्प सरोवर के जल के ऊपर थे और सरोवर के किनारों की भूमि को विदीर्ण कर रहे थे। वे कमल-नाल शेषनाग की पूँछ के समान प्रतीत हो रहे थे। कमल-नालों के अतिरिक्त ऐरावत के समान विशाल हाथियों के दाँत भी उस सरोवर की शोभा को बढ़ा रहे थे।

संस्कृत व्याख्या- सः उपवनस्थ सरोवरः। जलार्द्धरुद्धस्य सलिल रुद्धावस्यार्द्ध भागस्य। तटान्तभूमिदः सरोवर तटस्थ भूमेः दारण शीलस्य। मृणाल समूहस्य कमलनालवृन्दस्य। निभात् = व्याजात् । अनन्तोरगपुच्छसच्छवीन् = अनन्तनागः सर्पस्य, शेषनागस्य पुच्छस्य शोभा सहितान्। पयोनिलीनाभ्रमुकामुकावलीरदान् = सरोवर जले मग्नानाम् ऐरावत् सदृशानां गजानाम् दन्तान्। बभार धारयामास ।

तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटा-

स्फुटानुबिम्बोदयचुम्बनेन यः ।

बभौ चलद्वीचिकशान्तशातनैः

सहस्रमुच्चैः श्रवसामिव श्रयन् ॥ १०९ ॥

अन्वय - यः तटान्तविश्रान्ततुरङ्गुमच्छटास्युटानुबिम्बोदयचुम्बनेन वीचिकशान्त-शान्तनैः चलत् उच्चैः अवसां सहस्रं श्रयन् इव बभौ।

शब्दार्थ-यः = जो। तटान्त विश्रान्त तट के समीप में ठहरे हुए। 'तुरङ्गगमच्छटा = घोड़ों के प्रतिबिम्बों के। उदय चुम्बनेन = उदय के चुम्बन से। वीचिकशान्तशान्तनैः = तरंग रूपी कोड़ों के छोर के प्रहार से। चलत् = चलते हुए। उच्चैः श्रवसाम् = उच्चैः श्रवाओं की। श्रयन् = धारण करता हुआ । । बभौ = शोभित होता था

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में भी सरोवर की विशेषता प्रतिपादित की गयी है।

हिन्दी अनुवाद- जो सरोवर के तट के समीप ठहरे हुए घोड़ों के प्रतिबिम्बों के सम्बन्ध से तरङ्गरूपी कोड़ों के छोर के प्रहारों से चलते हुए हजारों उच्चैःश्रवाओं को धारण करते हुए के समान शोभित होता है।

हिन्दी व्याख्या- घोड़ों पर जब चाबुक का प्रहार किया जाता है तो वे चञ्चल होकर चलते हैं। नल के साथ आये हुए घोड़े उस जलाशय के तट पर आराम कर रहे थे। उनकी परछाई उसमें पड़ रही थी और उस जलाशय से उठने वाली चाबुक रूपी तरंगें मानो उन प्रतिबिम्बित अश्वों पर प्रहार कर रही थीं, जिससे वे चञ्चल होकर उच्चैःश्रवाओं के समान तेज भागते हुए प्रतीत हो रहे थे।

संस्कृत व्याख्या-यः = राजा नलः। तटान्तविश्रान्तत्तुरंगमच्छटास्फुटानु विम्बोदयचुक्तनेन तटस्य समीपे स्थितानाम् अश्वानां शोभया सम्बन्धिना विम्बेन उत्पन्नेन चुम्बनेन। वीचिकशान्तशातनैः जलस्य लहरोरूपिभिः कशनां ताडितैः। चलत् गच्छत् । उच्चैः श्रवसाम् इन्द्राश्वानाम्। सहस्रम् = दशशतम्। श्रयन् इव = आश्रयं कुर्वन् इव। बभौ = शुशुभे ।

सिताम्बुजानां निवहस्य यश्छलाद्
 बभावलिश्यामलितोदर श्रियाम्।
 तमः समच्छायकलङ्कसङ्कुलं
 कुलं सुधांशोर्बहलं वहन् बहु ॥ ११०॥

अन्वय- यः अलिश्यामलितोदरश्रियां सिताम्बुजानां निवहस्य छलात् तमः समच्छाय कलङ्कसङ्कुलं बहलं बहु सुधांशोः कुलं बहन् वभी।

शब्दार्थ - अलिश्यामलितोदरश्रियाम् भ्रमरों के बैठने के कारण श्यामवर्ण की कान्ति से युक्त। सिताम्बुजानाम् = श्वेत कमलों के। निवहस्य कलङ्कसङ्कुलम् = कलंक के कारण। बहलम् हुआ। वभी = शोभित हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ- चन्द्रमा के समान अनेक श्वेत कमल समूहों को धारण करने वाले तालाब का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में है।

हिन्दी अनुवाद- जो तालाव भ्रमरों के बैठने के कारण श्याम वर्ण वाली कान्ति से युक्त श्वेत कमलों के बहाने श्याम वर्ण वाले कलंकों से व्याप्त बहुत से चन्द्रमाओं को धारण करता हुआ अधिक शोभित हुआ।

हिन्दी व्याख्या- उस जलाशय के मध्य में अत्यधिक कमल खिते हुए थे और उन पर काले काले भ्रमर बैठे हुए थे। उन भ्रमरों के कारण वे श्वेत कमल चन्द्रमा के समान कृष्ण वर्ण रूपी कलंक से युक्त थे। इस प्रकार श्वेत कमल रूप चन्द्र समूह को धारण करने वाला वह तालाब एक ही चन्द्रमा को धारण करने वाले समुद्र से श्रेष्ठ था।

संस्कृत व्याख्या- यः = तडागः। अलिश्यामलितोदरश्रियाम् = अलिभिः भ्रमरैः श्यामलिता श्यामलीकृता उदरश्रीः मध्यभागीयशोभा येषां तादृशानाम्। सिताम्बुजोनाम् = श्वेतपङ्कजानाम् पुण्डरीकाणां वा। निवहस्य = समूहस्य। छलात् = कैतवात् व्याजात् वा। तमः समच्छायकलङ्कसङ्कुलम् = तिमिरवर्णलाञ्छन व्याप्तं। बहुलम् = प्रचुरम्। सुधांशोः = चन्द्रमसः। कुलम् समूहम्। वहन् धारयन्। वभौ शुशुभे।

सही जोड़ी बनाओ

(क) अमुना	-	(क) उसको
(ख) पुरः	-	(ख) इसने
(ग) तां	-	(ग) सामने
(घ) गतान्	-	(घ) वन में
(ङ) वने	-	(ङ) गए हुये

7.4 सार संक्षेप

नैषधीय चरितम् की कथा को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत कर संस्कृत से हिन्दी व्याख्या का समन्वय किया गया हैं व्याख्या के क्रम में अन्वय, संस्कृत व्याख्या के साथ हिन्दी व्याख्या द्वारा व्याख्यात्मक शैली को इसकी में समन्वित किया गया हैं नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग में 76 से 90 श्लोक तक व्याख्या के अंतर्गत व्याकरण भावार्थ आदि को समाहित कर प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है व्याख्यात्मक शैली का अध्ययन करने से श्लोक आदि को भावार्थों के माध्यम से अध्याय में संकलित किया गया हैं

7.5 मुख्य शब्द

1. धियः- बुद्धि
2. मालुरफलम्- बेल का फल
3. उद्दिश्य- उद्देश्य करके
4. द्रुमः- वृक्ष
5. शिरोभिः- सिरो को

7.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (ख) , 2. (ग), 3. (क), 4. (ङ), 5. (घ)

7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम्- श्रीहर्ष, , कृष्णदास अकादमी , वाराणसी, १९८५।
2. आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीय चरितम्- श्रीहर्ष, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २००८।
3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१७
4. डॉ शोभा भरद्वाज, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, आगरा, २०२१ ।

7.8 अभ्यास प्रश्न

1. नल के सौंदर्य का वर्णन कीजिए।
2. अगस्त वृक्ष की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।
3. राजा नल द्वारा वर्षों की वंदना का वर्णन कीजिए।

इकाई -8

नैषधीयचरितम के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 पात्रों के नाम तथा परिचय

8.4 सार संक्षेप -

8.5 मुख्य शब्द

8.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

8.7संदर्भ ग्रंथ सूची

8.8 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

बिगत इकाइयों में महाकाव्य के विषय में अध्ययन करने के पश्चात पात्रों के परिचय के माध्यम से इसके संपूर्ण परिचय प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस प्रस्तुति इकाई में नैषधीय चरितम के प्रमुख पात्रों के चरित्र विशेषताओं के आधार पर उनका चरित्र चित्रण प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्य में पात्रों के माध्यम से प्रतिपाद्य विषय तथा संपूर्ण कथा को प्रस्तुत किया गया है। अतः इसके पश्चात की इकाइयों में महाकाव्य के श्लोक के माध्यम से प्रथम सर्ग की कथावस्तु को पूर्णता प्रतिपादित किया जाएगा। इससे पूर्व इस इकाइयों में महाकाव्य के प्रमुख पात्रों तथा सहायकों का चरित्र चित्रण कर इस इकाई को पूर्ण किया गया है ।

8.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. महाकाव्य के नायक नायिका के चारित्रिक विशेषताओं से परिचित हो सके।
2. महाकाव्य के अन्य पात्रों के विषय में जानकारी हो सके।
3. महाकाव्य में पात्रों के अनुसार उनकी भूमिकाओं का ज्ञान हो सके।
4. चरित्र विशेषताओं के माध्यम से उनके चरित्र चित्रण का वर्णन किया जा सके।

8.3 पात्रों के नाम तथा परिचय

"नैषधीयचरितम्" संस्कृत साहित्य के पंचमहाकाव्यों में एक है, जिसकी रचना श्रीहर्ष ने की थी। यह काव्य नल-दमयन्ती की प्रेमगाथा के माध्यम से राजधर्म, प्रेम, नारी-पुरुष संबंधों, राजनय, मनोविज्ञान और धर्म के गूढ़ तत्वों का आलंकारिक शैली में वर्णन करता है। इस काव्य के पात्र केवल कथा के वाहक नहीं हैं, बल्कि वे तत्कालीन समाज, दर्शन और मानवीय भावनाओं के प्रतिबिंब हैं। इस निबंध में हम इसके प्रमुख पात्रों – नल, दमयन्ती, इन्द्र, रिति (दूतिका), हंस, तथा अन्य देवताओं – का विश्लेषण करेंगे।

1. राजा नल – नैषधराज (नैषध)

(क) रूप और व्यक्तित्व

राजा नल का चरित्र "नैषधीयचरितम्" का केन्द्रीय आकर्षण है। वे केवल एक रूपवान राजा नहीं, बल्कि गुणवान, धर्मनिष्ठ, सत्यप्रिय और अत्यंत विनम्र हैं। कवि ने उनके शारीरिक सौंदर्य का अत्यंत अलंकारिक वर्णन किया है। नल का रूप

देवताओं तक को आकर्षित करता है। उनके नेत्र, वक्षस्थल, बाहुबल, चाल और वाणी सब कुछ आकर्षक हैं।

(ख) मानसिकता और गुण

नल केवल बाह्य सौंदर्य में श्रेष्ठ नहीं हैं, बल्कि उनके अंदर उच्च नैतिक मूल्य भी हैं। वे विनीत, परोपकारी और धर्मनिष्ठ हैं। दमयन्ती के प्रति उनका प्रेम केवल काम नहीं, बल्कि आत्मिक जुड़ाव है। वे संकोचशील हैं, और प्रेम के अभिव्यक्ति में संयम रखते हैं।

(ग) राजधर्म और मर्यादा

राजा नल अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग हैं। वे बिना किसी प्रतिशोध के देवताओं के सम्मुख खड़े होते हैं, और जब दमयन्ती स्वयं उन्हें वरती है, तब भी वे अहंकार नहीं दिखाते। वह क्षात्रधर्म और राजनैतिक चातुर्य के भी प्रतीक हैं।

2. दमयन्ती – विदर्भराजकुमारी

(क) सौंदर्य और आकर्षण

दमयन्ती का वर्णन नायिका के रूप में अद्वितीय है। उनका रूप और सौंदर्य देवताओं को भी आकर्षित करता है। श्रीहर्ष ने उनके नख-शिख वर्णन में अनुप्रास, उपमा और रूपक जैसे अलंकारों का श्रेष्ठ प्रयोग किया है।

(ख) मानसिकता और नारीत्व

दमयन्ती केवल एक सुंदर राजकुमारी नहीं है, बल्कि उसमें गहन भावनात्मक गहराई और मानसिक दृढ़ता है। वह प्रेम के प्रति निष्ठावान है, और नल के प्रति उसकी श्रद्धा तथा प्रेम आत्मिक है। वह अपने मन के निर्णय पर अडिग रहती है और स्वयंवर में देवताओं की उपस्थिति के बावजूद नल को चुनना उसकी आत्मविश्वास और निर्णय शक्ति को दर्शाता है।

(ग) कर्तव्यनिष्ठा और विवेक

दमयन्ती धर्म और नीति में भी दक्ष है। वह अपने पति के प्रति निष्ठावान और संकट में भी धैर्यशील रहती है। उसके निर्णय केवल व्यक्तिगत नहीं होते, बल्कि समाज और धर्म की दृष्टि से भी उचित होते हैं।

3. हंस – दूत पक्षी

(क) भूमिका

हंस इस कथा में महत्वपूर्ण माध्यम है, जो नल और दमयन्ती के मध्य संवाद का सेतु बनता है। वह केवल एक दूत नहीं है, बल्कि काव्य का सौंदर्य बढ़ाने वाला पात्र है। उसकी बुद्धिमत्ता, वाक्पटुता, और वचनकला प्रशंसनीय है।

(ख) सांकेतिक अर्थ

हंस इस काव्य में प्रेम का प्रतीक है। उसकी उड़ान, वाणी और कार्यशैली मनुष्य की इच्छाओं और चेतना के संकेत हैं। वह दूतिका रचना परंपरा को विकसित करता है।

4. इन्द्र और अन्य देवता (वरुण, अग्नि, यम)

(क) भूमिका

इन्द्र, यम, अग्नि और वरुण – चारों देवता भी दमयन्ती के सौंदर्य से आकर्षित होकर स्वयंवर में आते हैं। वे स्वर्ग के प्रतिनिधि होते हुए भी मनुष्य की स्त्री के प्रेम में पड़ते हैं। इस आधार पर वे मानवीय भावनाओं के अधीन दिखाई देते हैं।

(ख) नीति और धर्म का परीक्षण

इन देवताओं के माध्यम से श्रीहर्ष ने धर्म, नीति और ईश्वरत्व का भी परीक्षण प्रस्तुत किया है। जब नल को पहचानने में असमर्थ होकर दमयन्ती स्वयं उन्हें अस्वीकार कर नल को चुनती है, तब देवता उसके नारीत्व और आत्मिक दृष्टि को स्वीकार करते हैं। इससे स्त्री की निर्णय क्षमता और धार्मिक दृष्टिकोण की श्रेष्ठता दर्शायी जाती है।

5. रिति – दूतिका

(क) भूमिका

रिति एक अनुभवी, बुद्धिमान और वाचाल दूतिका है, जिसे दमयन्ती अपनी प्रेमभावना व्यक्त करने के लिए भेजती है। वह नल से मिलने जाती है और अत्यंत चतुराई से संवाद करती है।

(ख) संवादकला

रिति की वाक्पटुता और उसकी गहन स्त्री मनोविज्ञान की समझ इस काव्य को समृद्ध बनाती है। वह नल के मन की थाह लेने का प्रयास करती है और प्रेम-संवाद की पृष्ठभूमि बनाती है।

6. विदर्भराज भीम और नैषधराज वीरसेन

(क) पारिवारिक पृष्ठभूमि

दोनों राजा, दमयन्ती और नल के पिता के रूप में, एक आदर्श शासक के रूप में चित्रित हैं। वे नीतिपरायण, जनप्रिय और अपने बच्चों की भावनाओं का सम्मान करने वाले हैं।

(ख) सामाजिक दृष्टिकोण

दोनों पात्र तत्कालीन समाज में राजा की भूमिका, पुत्री के स्वेच्छा से वर-वरण की स्वतंत्रता, और धर्म के पालन की प्रतिष्ठा को उजागर करते हैं।

7. गौण पात्र: कर्कोटक, पुष्कर, आदि

हालाँकि "नैषधीयचरितम्" में कर्कोटक और पुष्कर जैसे पात्रों का वर्णन मुख्य रूप से उत्तरकथा में आता है (जो अन्य ग्रंथों में अधिक विस्तार से मिलता है), श्रीहर्ष उनके संकेत मात्र देते हैं। वे कथा को पूर्णता की ओर अग्रसर करते हैं, और नैतिक मूल्यों की जाँच के प्रतीक हैं।

"नैषधीयचरितम्" के पात्र केवल चरित्र नहीं, बल्कि मानवीय भावनाओं, आदर्शों और सामाजिक संरचनाओं के प्रतिबिम्ब हैं। राजा नल और दमयन्ती प्रेम, धर्म, नीति और मनोविज्ञान के ऐसे प्रतीक हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं। इनके संवाद, आचरण और निर्णय इस बात को स्पष्ट करते हैं कि श्रीहर्ष ने केवल एक प्रेमकथा नहीं लिखी, बल्कि एक दार्शनिक दृष्टि से समृद्ध महाकाव्य रचा।

1. सही जोड़ी बनाओ

(क) नल	-	(क) नायिका
(ख) वरुण	-	(ख) दूत
(ग) दमयन्ती	-	(ग) देवता
(घ) हंस	-	(घ) दूतिका
(ङ) रिति	-	(ङ) नायक

2. सही जोड़ी बनाओ

(क) दमयन्ती	-	(क) राजधर्म
(ख) रिति	-	(ख) ईश्वरत्व
(ग) हंस	-	(ग) अनुभवी
(घ) इन्द्र	-	(घ) वाक्पटुता
(ङ) नल	-	(ङ) सौंदर्य

8.4 सार संक्षेप

महाकाव्य की नायक नायिका के परिचय के साथ ही अन्य पात्रों के परिचय उनके चरित्र विशेषताओं का समन्वय कर महाकाव्य की प्रथम सर्ग की कथावस्तु को वर्णित किया गया है। पात्रों के परिचय के पश्चात विशेषताओं यथा वीरता, शौर्य, चाटुकारिता, सहयोगी भाव आदि के माध्यम से महाकाव्य में इनकी उपस्थिति को चिन्हित किया गया है।

8.5 मुख्य शब्द

1. दूतिका -संदेश वाहिका
2. इंद्र -प्रमुख देवता
3. स्वेच्छा -अपनी इच्छा
4. वाक्पटुता- वार्तालाप में चतुर
5. प्रतीक- चिन्ह

8.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

- 8.3 - 1. (ड), 2. (ग), 3. (क), 4. (ख), 5. (घ)
 2. (ड), 2. (ग), 3. (घ), 4. (ख), 5. (क)

8.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम- श्रीहर्ष, , कृष्णदास अकादमी , वाराणसी, १९८५।
2. आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीय चरितम- श्रीहर्ष, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २००८।
3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम- श्रीहर्ष, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी, २०१७
4. डॉ शोभा भरद्वाज, नैषधीयचरितम- श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, आगरा, २०२१ ।

8.8 अभ्यास के प्रश्न

- 1 नैषधीयचरितम के अनुसार हंस की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
2. नैषधीयचरितम में वर्णित देवताओं के नाम तथा उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

3. नैषधीयचरितम में वर्णित पात्रों के नाम लिखिए।
- 4 नैषधीयचरितम के अनुसार रीति के पात्र का चित्रण कीजिए।

इकाई -9

नैषधीयचरितम प्रथम सर्ग 111 से 125 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 नैषधीय चरितम के प्रथम सर्ग के १११ से 125 तक श्लोकों की व्याख्या

9.4 सार संक्षेप -

9.5 मुख्य शब्द

9.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

9.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.8 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

नैषधीय चरितम के प्रतिपाद्य विषय तथा दमयंती के चरित्र चित्रण के पश्चात श्लोक के माध्यम से कथा को समझ जाना सुगम हो जाता है। श्री हर्ष के नैषधीय चरित की प्रथम सर्ग के श्लोक की माध्यम से उनकी व्याख्या के द्वारा प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुति इकाई में प्रस्तुत किया गया है। इसी आधार पर संस्कृत भाषा के श्लोक के द्वारा उन में प्रतिपाद्य विषय को जानकार भाषा के ज्ञान तथा व्याकरण टिप्पणी आदि को समाहित कर व्याख्या की गई है। आगे की इकाइयों में भी कथा के मुख्या विषयों की विवेचना के साथ ही श्लोकों की व्याख्या को क्रम से वर्णित किया जायेगा ।

9.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के श्लोकों की व्याख्या करने में समर्थ हो सके।
2. महाकाव्य में वर्णित नल के चरित्र को विशेष श्लोक के माध्यम से जान सके।
3. अन्वय, व्याकरण, भावार्थ आदि के माध्यम से संस्कृत भाषा को समझ सके।
4. संस्कृत विषय की व्याख्यात्मक तथा व्याकरण शैली से परिचित हो सके।
5. नैषधीय चरितम् के श्लोक के महत्व से परिचित हो सके।

9.3 नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग 111 से 125 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा,

शिलीमुखस्तोम सखेन शाङ्गिणा।

सरोजिनीस्तम्बकदम्ब कैतवात्-

मृणाल शेषहिभुवान्वयायि यः ॥ १११ ॥

अन्वय- यः स्थाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा शिलीमुखस्तोमसखेन, मृणाल शेषहिभुवा सरोजिनीस्तम्बकदम्बकैतवात् शाङ्गिणा अन्वयायि।

शब्दार्थ- यः = जो। रथाङ्गभाजा चक्र से युक्त, चक्र सुदर्शन से युक्त। कमलानुषङ्गिणा = कमलों से युक्त लक्ष्मी से सम्बन्धित। शिलीमुखस्तोम सखेन

भौरों के समूह के समान श्याम वर्ण वाले। मृणाल शेषाहिभुवा = कमल नाल के समान शेषनाग की शय्या वाले। सरोजिनी स्तम्बकदम्ब कैतवात् = कमलिनी के पुष्प समूह के बहाने। शाङ्गिणा विष्णु से। अन्वयाहि = अनुगत था।

प्रसंग-सन्दर्भ- सरोवर को विष्णु के समान बताने वाला यह श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- जो चक्रवाक से युक्त, कमलों से सम्पृक्त, भ्रमर समूह रूप सहचर वाले तथा मृणालरूप शेषनाग की उत्पत्ति स्थल होने से कमलिनी के गुच्छों के समूह के कपट से सुदर्शन चक्रयुक्त, लक्ष्मी से संसक्त भ्रमर समूह के समान तथा मृणाल रूपी शेषनाग को शय्या वाले विष्णु से अनुगत था।

हिन्दी व्याख्या- वह सरोवर भगवान् विष्णु का अनुगमन कर रहा था अर्थात् भगवान् विष्णु के समान था। विष्णु रथांग अर्थात् चक्र, सुदर्शन चक्र से युक्त हैं, वह सरोवर रांग अर्थात् चकवे से युक्त था। भगवान् विष्णु कमलानुषंगी अर्थात् लक्ष्मी से सम्बन्धित लक्ष्मी के पत्ति हैं, वह सरोवर भी कमलों से युक्त था, भगवान् विष्णु शिलीमुखस्तोम सखा हैं अर्थात् भँवरों के समान काले रंग के हैं। वह सरोवर भी भ्रमर समूह का मित्र था, वहाँ बहुत से भँवरे मँडराते थे। वह सरोवर कमलिनी के पुष्प गुच्छों के बहाने भगवान् विष्णु की समानता कर रहा था। भगवान् विष्णु मृणाल शेषाहिभू अर्थात् कमल 'नाल के समान कोमल शेषनाग के शय्या वाले हैं, वह सरोवर शेषनाग के समान कमल नाल का उत्पत्ति स्थान था।

संस्कृत व्याख्या- यः = सरोवरः। रथांगभाजा सरोवर पक्षे चक्रवाकयुक्तेन। विष्णुपक्षे सुदर्शनचक्रयुक्तेन। कमलानुषंगिणा = सरोवरपक्षे कमलसहायेन। विष्णुपक्षे लक्ष्मीसहायेन। शिलीमुखस्तोमसखेन = सरोवरपक्षे भ्रमणसमूह सहचरेण। विष्णुपक्षे अमरसमूह सदृश वर्णेन। मृणाल शेषाहिभुवा सरोवरपक्षे शेषनागतुल्य कमलनालानाम् उत्पत्ति स्थानेन। विष्णुपक्षे मृणालतुल्य कोमलस्य शेषनागस्य शैयावता। सरोजिनीस्तम्ब कदम्बकैतवात् = कमलिनीनां गुल्म कदम्बस्य छलेन। शाङ्गिणा विष्णुना। अन्वयायि अनुगतः समधिष्ठित इति। रथांगभाजा, कमलानुषंगिणा,

शिलीमुखस्तोमसखेन, मृणालशेषाहिभुवा में श्लेष अलंकार है। शिलीमुखस्तोमसखेन में लुप्तोपमा है। कैतव शब्द के द्वारा सरोजिनीस्तम्ब का निषेध करके विष्णु की स्थापना होने से अपहवति अलंकार है।

तरङ्गिणीरङ्कजुषः स्ववल्लभाः-

तरङ्गरेखा विभराम्बभूव यः ।

दरोद्गतैः कोकनदौघकोरकै

धृतप्रवालाङ्कुरसञ्चयश्च यः ॥ ११२॥

अन्वय- यः अङ्कजुषः स्ववल्लभाः तरङ्गरेखाः तरङ्गिणीः विभराम्बभूव च यः दरोद्गतैः कोकनदौघकोरकैः धृतप्रवालाङ्कुरसञ्चयः।

शब्दार्थ- अङ्कजुषः = गोद में स्थित। स्ववल्लभाः अपनी प्रिया। तरङ्गरेखाः = तरंग रेखा रूपी। तरङ्गिणी = नदियों को। विभराम्बभूव धारण किये हुए था। यः जो। दरोद्गतैः = कुछ खिले हुए। कोकनदौघकोरकैः = लाल कमलों की खिली हुई कलियों के रूप में। धृतप्रवालाङ्कुरसञ्चयः = मेंगों के अंकुरों के समूह को धारण करने वाला।

प्रसंग-सन्दर्भ- जलाशय की समुद्र रूपता का वर्णन करने वाला यह श्लोक श्री हर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- जो गोद में स्थित अपनी प्रिया तरंग रेखारूपी नदियों को धारण करता था तथा जो कुछ खिले हुए लाल कमलों की खिली हुई कलियों के रूप में मेंगों के अंकुरों के समूह को धारण करने वाला था।

हिन्दी व्याख्या- पहाड़ों से बढ़कर आती हुई नदियाँ समुद्र में जाकर मिलती हैं। वे उसको प्रियतमा होती हैं। समुद्र में लाल-लाल मेंगों के अंकुरों का समूह भी होता है। उपवन में स्थित जलाशय में भी तरंग रेखा रूपिणी नदियाँ विद्यमान थीं तथा थोड़ा बाहर की ओर दिखाई पड़ते हुए लाल कमलों के अंकुर समूह मेंगों के अंकुरों के रूप में विद्यमान थे। इस प्रकार प्रिया तरंग रूपिणी नदियाँ तथा कमल

की अध खिली कलियों को धारण करने के कारण वह जलाशय सागर के सदृश ही था।

संस्कृत व्याख्या- यः तडागः अपां निधिरिव इतिशेषः। अङ्कजुषः निकटवर्तिनीः। उत्सङ्गसङ्गिन्यश्च। तरङ्गरेखा = तरङ्गराजी एव। तरङ्गिणी नद्यः। विभराम्बभूव = धारयामास) (किल्य) यः तडागः दरोद्गतः = ईषदुद्बुदैः। कोकनदौधकोरकैः रक्तोत्पलसमूह कलिकाभिः। भूतप्रवाल, कुरन्यचरच गृहीतविद्वमारकर निकरश्च अस्तीति शेषः।

महीयसः पङ्कजमण्डलस्य

यश्छलेन गौरस्य च मेचकस्य थे।

नलेन मेने सलिले निलीनयो-

स्त्विषं विमुञ्चन् विधुकालकूटयोः ॥ ११३॥

अन्वय- यः नलेन महीयसः गौरस्य मेचकस्य च पङ्कजमण्डलस्य छलेन सलिले निलीनयोः विधुकालकूटयोः त्विषं विमुञ्चन् मेने।

शब्दार्थ- नलेन नल द्वारा। महीयसः महान्। गौरस्य श्वेत। मेचकस्य = नीले। पङ्कजमण्डलस्य = कमल समूह के। छलेन बहाने से। सलिले जल में। निलीनयोः छिपे हुए। विध् तुकालकूटयोः = चन्द्रमा और हलाहल की। त्विषम् कान्ति को। विमुञ्चन् छोड़ते हुए। मेने = माना।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत, श्लोक में जलाशय में विकसित श्वेत एवं नील कमलों का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- जो नल द्वारा विष महान् श्वेत एवं नील कमल समूह के बहाने से जल में छिपे हुए चन्द्रमा और हलाहल विष की कान्ति को फैलता हुआ माना।

हिन्दी व्याख्या- समुद्र मन्थन के समय चन्द्रमा और हलाहल दोर्नी ही पदार्थ समुद्र से बाहर निकले थे अर्थात् चन्द्रमा और हलाहल विष की उत्पत्ति का स्थान समुद्र ही है। अतः जिस प्रकार समुद्र चन्द्रमा और हलाहल नामक विष से युक्त है उसी प्रकार यह तालाब भी श्वेत कमल रूपी चन्द्रमा और नील कमल रूपी विष के विद्यमान होने से समुद्र सदृश ही है।

संस्कृत व्याख्या- यः तडागः। नलेन राज्ञा नलेन। महीयसः महत्तरस्य। गौरस्य श्वेतस्य । मेचकस्य च = नीलस्य च। पंकज मण्डलस्य कमलसमूहस्य। (सितासितसरोजयोः) छलेन कैतवेन । सलिले = जले। निलीनयोः = निमग्नयोः। विधुकालकूटयोः = सितासितयोः चन्द्रविषयोः । त्विषम् = कान्तिम् । विमुञ्चन् = विसृजन्निव मेने = संभावितः ।

चलीकृता यत्र तरङ्गरिङ्गणै-

रवालशैवाललता परम्पराः ।

ध्रुवन्द ध्रुवाडवहव्यवाडव-

स्थितिप्ररोहत्तमभूम धूमताम् ॥ ११४॥

अन्वय- यत्र तरङ्गरिङ्गणैः चलीकृताः अबालशैवाललतापरम्पराः वाडवहव्यवाडव-स्थिति प्ररोहत्तमभूमध् मतां दधुः ध्रुवम् ।

शब्दार्थ- तरङ्गरिङ्गणैः = तरंगों के कम्पन से। चलीकृता चंचलता को प्राप्त कराई गयी। अबाल शैवाललता परम्परा = बड़ी-बड़ी शैवाल लताओं के समूह। वाडवहव्यवाडव स्थिति वाडवाग्नि की स्थिति से। प्ररोहत् तमभूम धूमताम् अतिशय निकलती हुई धूम राशि के स्वरूप की। दधुः धारण किया। ध्रुवम् = प्रतीत होता है।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में शैवाल घास का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- जिसमें तरंगों के कम्पन से चंचलता को प्राप्त करायी गयी बड़ी-बड़ी शैवाल लता के समूह, वाडवाग्नि की स्थिति से अतिशय निकलती हुई धूम राशि के स्वरूप को धारण किया है, ऐसा प्रतीत होता है।

हिन्दी व्याख्या- समुद्र के भीतर वडवानल निवास किया करती है। उपवन में स्थित जलाशय में बड़ी-बड़ी शैवाल लताएँ थीं, जो चञ्चल तरंगों से चलायमान था और उनका रंग धूमिल था। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उस तालाब के अन्दर वाडवाग्नि का निवास हो और ये शैवाल लताएँ, उसकी पनी धूम राशि हो। जलाशय में वडवाग्नि की सम्भावना से वह समुद्र के समरूप हो गया है।

संस्कृत व्याख्या- यत्र यस्मिन्, तडाग इतिभावः। तरङ्गरिङ्गणैः तरङ्गकम्पनैः, चलीकृताः = चञ्चलीकृताः, अबाल शैवाल लतापरम्पराः अबालानां कठोराणां शैबाललतानां परम्पराः पङ्क्तयः, वाडवहव्यवाडवास्थितिप्ररोहत्तममूम धूमत्वं वडवानलाडवस्थानबहिः प्रादुर्भवत्तम बाहुल्य धूमतां, दषुः = ६ धारयामासुः ध्रुवम् = इव, बहिरुत्थित धूमपटलवद्वभुः।

प्रकाममादित्यमवाप्य कण्टकैः,

करम्बितामोदभरं विवृण्वती।

धृतस्फुट श्रीगृह विग्रहहम दिवा,

सरोजिनी यत्प्रभवाप्सरायिता ॥ ११५ ॥

अन्वय - आदित्यम् अवाप्य कण्टकैः प्रकामं कदम्बिता आमोदभरं विवृण्वती दिवा धृतस्फुट श्रीगृह विग्रहा यत्प्रभवा सरोजिनी अप्सरायिता।

शब्दार्थ- आदित्यम् = सूर्य को। अवाप्य प्राप्त करके। कण्टकैः काँटों के द्वारा। प्रकामम् = अधिक मात्रा में। कदम्बिता = व्याप्त। आमोदभरम् = प्रसन्नता अथवा सुगन्धि के भार को, समूह को। विवृण्वती = प्रकट करती हुई। दिवा दिवस में। धृतस्फुट श्रीगृह विग्रहा = खिले हुए कमल के फूलरूपी शरीर वाली। यत्प्रभवा = जिसमें जन्म लेने वाली। सरोजिनी कमलिनी। अप्सरायिता = अप्सरा प्रतीत हो रही थी।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में सरोजिनी की शोभा का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- जिस सरोवर में उत्पन्न अर्थात् प्रतिविम्बित सूर्य को पाकर अत्यधिक संख्या वाले काँटों से युक्त, अपनी सुगन्धिरूपी सम्पत्ति को प्रकट करती हुई तथा दिन में खिलने वाले कमल के फूल-रूपी शरीर को धारण करने वाली कमलिनी उस अप्सरा के समान आचरण कर रही थी जो इन्द्रदेव को पाकर अतिशय रोमांचित, आनन्द के अतिरेक को प्रकट करती हुई एवं स्वर्ग में धारण की गयी स्पष्ट शोभा वाली थी।

हिन्दी व्याख्या- जिस प्रकार राजा इन्द्र को प्राप्त करके, रोमाञ्चों से युक्त होती हुई अतिशय आनन्द को प्राप्त करते हुए, अपने अन्दर स्थित गन्ध की सम्पत्ति रूप में प्रकट करती हुई तथा स्वर्ग से धारण किये प्रकाशमान शोभाधाम रूप शरीर वाली अप्सराएँ सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार जलाशय में विकसित कमलिनी सूर्य के तेज से शोभा प्राप्त करके काँटों से युक्त होती हुई भी गन्ध को फैलाती हुई अप्सरा के समान सुशोभित हो रही थी।

संस्कृत व्याख्या- आदित्यम् = सूर्यम्। इन्द्रम्। अवाप्य प्राप्य। कण्टकैः मृणालगतैः तीक्ष्णायैः। अवयवैः = रोमसमूहैः। प्रकामम् अतिशयेन। करम्बिता दन्तुरिता, रोमांचिता। आमोदभरम् = सुगंधि समूहम्। आनन्दधनम्। विवृण्वती प्रकटं कुर्वती। दिवा दिने, स्वर्गेण। धृतस्फुट श्रीगृहविग्रहा = गृहीत विकसित पद्मरूप शरीरा। धृत प्रकाशमान लक्ष्म्याः स्थान शरीरा। यत्प्रभवा सरोवरेऽत्पन्या। सरोजिनी = कमलिनी।

अप्सरायिता अप्सरा इव आचरणम् अकरोत्।

यदम्बुपूरप्रतिविम्बितायतिः

मरुत्तरङ्गैस्तरलस्तटद्रुमः ।

निमज्ज्य मैनाकमहीभृतः सत-

स्ततानपक्षान् ध्रुवतः पक्षताम् ॥ ११६ ॥

अन्वय- यदम्बुपूरप्रतिविम्बितायतिः मरुत्तरङ्गै तरलः तटद्रुमः निमज्ज्य सतः पक्षान् ध्रुवतः मैनाकमहीभृतः सपक्षतां ततान।

शब्दार्थ - अम्बुपूर = जल प्रवाह में। प्रतिविम्बितायतिः प्रतिविम्बित हो रही थी लम्बाई जिसकी। मरुत्तरङ्गः = वायु द्वारा चालित लहरों से। तरलः चञ्चल। तटद्रुमः किनारे पर स्थित वृक्ष। निमज्ज्य = छिपकर । सतः = अवस्थित। पक्षान् पंखों को। ध्रुवतः हिलाते हुए। मैनाकमहीभृतः मैनाक पर्वत को। सपक्षताम् = समानता को। ततान फैला रहा था।

प्रसंग-सन्दर्भ- जलाशय में वृक्ष का प्रतिबिम्ब मैनाक पर्वत के समान लग रहा है, यह वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया है।

हिन्दी अनुवाद- जिसके जलप्रवाह में प्रतिबिम्बित हो रही थी लम्बाई जिसकी तथा वायु द्वारा चालित लहरों से चञ्चल किनारे पर स्थित वृक्ष छिपकर अवस्थित पंखों को हिलाते हुए मैनाक पर्वत की समानता को फैला रहा था।

हिन्दी व्याख्या- सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष उसके जल में दिखाई दे रहे थे। हवा के चलने के कारण सरोवर का जल हिल रहा था, जिससे वे प्रतिबिम्ब भी हिल रहे थे। प्रतिबिम्बित वृक्षों के हिलने से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जिस प्रकार समुद्र के जल में डूब कर मैनाक पर्वत अपने पंखों को हिलाता है, उसी प्रकार वृक्ष रूपी पर्वत अपने प्रतिबिम्ब रूप पंखों को हिला रहे थे। इस प्रकार वह सरोवर समुद्र सदृश ही था।

संस्कृत व्याख्या- यदम्बुपूरप्रतिबिम्बितायतिः यस्य तडागस्य अम्बुनः जलस्य पूरे प्रवाहे प्रतिबिम्बिता प्रतिफलिता आयतिः आयामः यस्य एवम्भूतः। मरुत्तरङ्गः वातवीजनैः। तरलः चञ्चलः। तटद्रुमः = तीरवृक्षः। निमज्ज्य = निमग्नीभूय। सतः = विद्यमानस्य। पक्षान् = पतत्राणि । ध्रुवतः कम्पयतः। मैनाकमहीभूतः = मैनाकनाम्नः = पर्वतस्य। सपक्षताम् = समानताम् पक्षयुक्ततां च। तताने विस्तारयामास ।

प्रियासु बालासु रतिक्षमासु च

द्विपत्रितं पल्लवितंच विद्वतम्।

स्मरार्जितं रागमहीरुहाङ्कुरं

मिषेण चञ्च्योश्चरण द्वयस्य च ॥ ११८॥

अन्वय-स नैषधः पयोधिलक्ष्मीमुषि केलिपल्लवे रिरंसुहंसीकलनादसादरम् बालासु रतिक्षमासु च प्रियासु चञ्च्योः चरणद्वयस्य च मिषेण द्विपत्रितं पल्लवितं

च स्मरार्जितं रागमहीरुहाङ्कुरं विभ्रतं त? अन्तिके विचरन्तं चित्रं हिरण्मयं हंसम् अबोधि।

शब्दार्थ- पयोधिलक्ष्मीमुषि समुद्र की शोभा को चुराने वाला। केलिपल्लवले = क्रीडा सरोवर में। रिरंसुहंसीकलनादसादरम् = रमण की इच्छुक हंसियों के अस्फुट मधुरालाप के प्रति अभिलाषा युक्त। बालासु = बालाओं में। रतिक्षमासु रमणयोग्य। चञ्चवोः दो चोंचों। चरणद्वयस्य दो चरणों के। मिषेण = बहाने से। द्विपत्रितम् = दो पत्तों वाले। स्मरार्जितम् = कामदेव द्वारा उत्पादित। रागमहीरुहाङ्कुरम् = प्रेम रूपी वृक्ष के अंकुर को। विभ्रतम् धारण करने वाले। अन्तिके समीप में। विचरन्तम् = विचरण करते हुए। अबोधि = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस युग्म श्लोक में सुवर्णमय हंस का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- समुद्र की शोभा को चुराने वाले उस क्रीडा सरोवर में रमण की इच्छुक हंसियों के अस्फुट मधुरालाप के प्रति अभिलाषा युक्त, समीप में ही विचरण करने वाले अद्भुत, सुनहले तथा बालाओं और रमण योग्य प्रियाओं के विषय में दो चोंचों और दो चरणों के बहाने दो पत्तों तथा किसलयों वाले कामदेव द्वारा सम्मोहित अनुराग रूपी वृक्ष के अंकुर को धारण करने वाले हंस को राजा नल ने देखा।

हिन्दी व्याख्या- समुद्र के समतुल्य उस क्रीडा सरोवर की शोभा देखने के बाद राजा नल ने उसमें एक सुवर्णमय अद्भुत हंस को देखा। वह हंस रमणभिलाषिणी हंसिनियों के अव्यक्त एवं मधुर शब्द को सुनने का इच्छुक था। वह सुरत क्रीडा में समर्थ युवती, प्रियाओं के विषय में दोनों चोंचों और दोनों चरणों के बहाने से दो पत्तों और किसलयों से युक्त कामोत्पन्न प्रेम रूपी वृक्ष के अंकुर को धारण करने वाला था। राजा नल उस हंस को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

संस्कृत व्याख्या- सः पूर्वोक्तः नल। पयोधिलक्ष्मीमुषि समुद्र शोभाहरे। समुद्र सदृश इति भावः । तत्र = तस्मिन्। केलिपल्लवले क्रीडासरसि। रिरंसुहंसी

कलनादसादरम् = रमणेच्छुवकानांमधुरशब्दसस्यूहं। बालासु = आसन्नयौवनासु
 अरतिक्षमास्विति भावः। रतिक्षमासु च रति योग्यासु। युवतीष्विति भावः। इत्थं
 द्विविधासु। प्रियासु = बल्लभासु। क्रमात् चञ्च्योः प्रोट्योः चरणद्वयस्य च =
 पादद्वयस्य च। मिषेण = व्याजेन । द्विपत्रितम् = द्विपत्रयुक्तम्। पल्लवितम् =
 किसलययुक्तम् च। स्मरार्जितम् कामजनितम्। रागमहीरुहाङ्कुरम् =
 अनुरागवृक्षनूतनोद्भिदम् विभ्रतम् धारयत्तम्। चच्युपुटमिषेण द्विपत्रितं
 बालागोचरणं। चरणमिषेण पल्लवितं युवतिविषये रागं च धारयन्तमिति भावः।
 अन्तिके हंसी निकटे विचरन्तम् गच्छन्ताम्। चित्रम् = अद्भुतम् । हिरण्मयम् =
 सुवर्णमंच। हंसम् चक्राङ्गम्। अबोधि ज्ञातवान्। अद्राक्षीदिति भावः।

महीमहेन्द्रस्तमवेक्ष्य स क्षणं,

शकुन्तमेकान्त मनोविनोदिनम् ।

प्रिया वियोगाद्विधुरोऽपि निर्भरं,

कुतूहलाक्रान्तमना मनागभूत् ॥ ११९॥

अन्वय- महीमहेन्द्रः सः एकान्तमनोविनोदिनं तम् शकुन्तं क्षणम् अवलोक्य
 प्रिया वियोगात् निर्भरं विधुरः अपि मनाक् कुतूहलाक्रान्तमना अभूत् ।

शब्दार्थ - महीमहेन्द्रः = धरती का राजा। एकान्त मनोविनोदिनम् अतिशय
 मनोरंजन। तम् उस हंस को। शकुन्तम् = पक्षी को। क्षणम् एक क्षण तक। अवेक्ष्य
 देखकर। प्रियावियोगात् = प्रेयसी दमयन्ती के वियोग के कारण। निर्भरम्
 अत्यधिक। विधुरः अपि व्याकुल होने पर भी। मनाक् थोड़ा। कुतूहलाक्रान्तमना =
 आश्चर्य से पूरित मन वाला। अभूत् = हो गया।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत
 श्लोक में हंस को देखकर विचलित मन वाले राजा नल का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- धरती का इन्द्र अर्थात् वह राजा नल अत्यधिक मनोरंजनकारी उस हंस पक्षी को एक क्षण तक देखकर थोड़ी देर के लिए कौतुक से आक्रान्त चित्त वाला हो गया। यद्यपि अपनी प्रिया दमयन्ती के वियोग के कारण वह अत्यन्त व्याकुल था।

हिन्दी व्याख्या- प्रेयसी के वियोग में जो व्यक्ति दुःखी होता है, उसे न कुछ अच्छा लगता है और न कुछ आकर्षित कर पाता है। इसके विपरीत राजा नल दमयन्ती के वियोग में व्याकुल होने पर भी थोड़ी देर के लिए उस हंस के प्रति कुतूहलपूर्ण हो गया। हंस का रूप सौन्दर्य इतना अधिक मनोहारी था कि विरहावस्था में होने पर भी राजा नल उसको पकड़ने की दृष्टि से उत्सुकतावश देखते रहे।

संस्कृत व्याख्या- महीमहेन्द्रः भूमेर्महान् इन्द्रः। नलः इत्यर्थः। सः नलः। एकान्तमनोविनोदिनम् = अत्यधिक मनोरंजनकारकम्। तम् = पूर्वोक्तम्। शकुन्तम् हंसम्। क्षणम् = मुहूर्तमेकम्। अवेक्ष्य = विलोक्य। प्रिया वियोगात् = दमयन्त्या विरहात्। निर्भरम् अतिशयम्। विधुरः अपिदुःखितः अपि। मनाक् ईषत्। कुतूहलाकृष्टमनाः = आश्चर्याभिभूतः चेताः। अभूत् = अभवत्।

अवश्यभव्येष्वनवग्रहाग्रहा

यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा।

तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते

जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ॥ १२०॥

अन्वय- अवश्यभव्येषु अनवग्रहाग्रहा वेधसः स्पृहा यया दिशा धावति तया भृशावशात्मना जनस्य चित्तेन तृणेन वाल्या इव अनुगम्यते।

शब्दार्थ - अवश्यभव्येषु = अवश्य होने वाले विषयों में। अनवग्रहग्रहा = बिना बाधा के चलने वाली। दौड़ती है। भृशावशात्मना अत्यन्त परतन्त्र मन वाला। घास से। वात्या आँधी के। अनुगम्यते अनुगमन किया जाता है।

प्रसंग-सन्दर्भ- भाग्य की प्रबलता द्योतित करने वाला यह श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- अवश्य होने वाले विषयों में बिना बाधा के चलने वाली ब्रह्मा की इच्छा जिस दिशा में दौड़ती है, उसी ओर अत्यन्त परतन्त्र मुन वाले लोगों का मन आँधी के साथ घास के समान अनुगमन किया करता है।

हिन्दी व्याख्या- 'होनी' को कोई नहीं टाल सकता। अच्छे बुरे कर्मों में भाग्य अर्थात् विधाता की इच्छा ही प्रबल होती है। उसमें कोई बाधा नहीं आती। जो कार्य जिस समय होना होता है, उसी समय होता है। व्यक्ति का मन विधि के अनुकूल ही कार्य करता है, उसकी बुद्धि वैसी ही हो जाती है। जिस प्रकार हवा के तेज झोंके से तिनका हवा की दिशा में ही उड़ता है, वैसे ही व्यक्ति भाग्य के अनुकूल ही कार्य करता है। इसीलिए धीर प्रकृति नल का मन हंस को पकड़ने के लिए चञ्चल हो उठा।

संस्कृत व्याख्या- अवश्यभव्येषु निर्गलः ग्रहः अभिनिवेशः प्रसरो यस्याः = येन मार्गेण। धावति गच्छति। तया लोकस्य। चित्तेन = मानसेन। तृणेन अवश्यं भाव्यर्येषु विषये। अनवग्रहग्रहाः = अनवग्रहः अबाध्यमानः एतादृशीः वेधसः विधातुः ब्रह्मणः वा। स्पृहा इच्छा। यया दिशा दिशा। भृशा वशात्मना अत्यर्थपरतन्त्रस्वभावेन। जनस्य = अर्जुनेन। वात्या इव = वात समूह इव अनुगम्यते = अनुस्त्रियते। अथावलम्ब्य क्षणमेकपादिकां

तदा निदद्रावुपपल्वलं खगः ।

स तिर्यगावर्जित कन्धरः शिरः

पिथाब पक्षेण रतिकलमालसः ॥ १२१॥

अन्वय- अथ तदा रतिकलमालसः स खगः एकपादिकां अवलम्बय तिर्यगावर्जित-कन्धरः पक्षेण शिरः पिथाय क्षणं उपपल्वलं निदद्रौ।

शब्दार्थ - रतिकलमालसः रतिजन्य परिश्रम से आलस्ययुक्त। खगः पक्षी। एकपादिकां = एक पैर से स्थिति को। अवलम्ब्य = सहारा लेकर। तिर्यगावर्जित कन्धरः गर्दन को तिरछी करके। शिरः = सिर को। पक्षेण पंख से। पिथाय ढककर। निदद्रौ सो गया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस की शयन क्रिया का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- उसके बाद उस समय रतिजन्य परिश्रम से आलस्ययुक्त वह पक्षी एक पैर की स्थिति का सहारा लेकर गर्दन को तिरछी करके तथा पंख से सिर को ढककर क्षण भर के लिए उस सरोवर के निकट सो गया।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल सरोवर के समीप सुवर्णमय हंस को देखकर प्रसन्न हुआ। वह हंस रतिक्रीडा करने के कारण अत्यन्त थक गया था। अतः परिश्रम से खिन्न मन वाला वह हंस अपनी गर्दन को तिरछी करके तथा एक पैर पर खड़े होकर पंखों से मुँह ढककर वहीं तालाब के किनारे से सो गया।

संस्कृत व्याख्या - अथ अनन्तरम्, तदा तस्मिन् समये, रतिकलमाऽलसः सुरतखेदालस्य युक्तः सः खगः = हंसः पक्षी विशेषः इत्यर्थः। एकपादिकाम् तिर्यगावर्जितकन्धरः = तिर्यगावर्तितग्रीवः

(सन्)। पक्षेण एकपादेन अवस्थानम्, अवलम्ब्य पतत्रेण। शिरः
मूर्धानम्। पिधाय आश्रित्य, आच्छादय। उपपल्वलम् = क्रीडा सरोवर
निकटम्। क्षणम् = कच्चित्कालम् निद्रौ सुष्वाप।

सनालमात्मानननिर्जितप्रथं

हियानतं काञ्चनमम्बुजन्म किम् ।

अबुद्ध तं विदुमदण्डमण्डितम्

सपीतमम्भः प्रभुचामरञ्च किम् ॥१२२॥

अन्वय- सः तं आत्मानननिर्जितप्रभं हिया नतं सनालं काञ्चनम् अम्बुजन्म
किम् विदुमदण्डमण्डितं पीतं अम्भः प्रभुचामरं च किम् अबुद्ध।

शब्दार्थ - आत्मानननिर्जितप्रभम् = अपने मुख की कान्ति से जीते गये।
हिया लज्जा से। नतम् = झुका हुआ। सनालम् = नाल सहित। काञ्चनम्
सुवर्णमय। अम्बुजन्म कमल। विदुमदण्डमण्डितम् = मूँगे के दण्ड से सुशोभित।
पीतम् पीले। अम्भः जल के। प्रभुचामरम् = वरुण का चैवर। अबुद्ध = जाना।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत
श्लोक में हंस की शोभा का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- उसने उस हंस को अपने मुख की कान्ति से जीते गये अतः
लज्जा से झुके हुए नाल सहित सुवर्णमय कमल समझा क्या ? अथवा मूँगों के
दण्ड से सुशोभित पीले जल के स्वामीवरुण का चंवर जाना क्या ?

हिन्दी व्याख्या- वह हंस सरोवर के निकट एक पैर पर सो रहा था। हंस के
पैर लाल होते हैं, अतः वह नाल सहित सुवर्ण कमल जैसा प्रतीत हो रहा था। वह
हंस नीचे मुख करके सो रहा था, अतः वह हंस नल को अपने मुख की शोभा से
पराजित लाल मूँगों से जड़ित दण्ड वाला वरुण का चैवर प्रतीत हुआ अर्थात् नल ने

एक पैर पर सोये हुए उस हंस को रक्त नाल वाले सुवर्णमय कमल के समान तथा विदुम दण्ड वाले सुनहरे वरुण के चैवर के समान समझा।

संस्कृत व्याख्या- सः = नलः। तम् निद्राणं हंसम् । आत्मानननिर्जितप्रभम् = स्वमुखपराजित कान्ति । अतएव हिया = लज्जया। नतम् नम्रम्। सनालम् नालसहितम्। एकचरणाऽवस्थानादितिशेषः। काञ्चनम् = सौवर्णम्। अम्बुजन्म = जलजं कमलमित्यर्थः। किम् = किमु (तथा) विदुमदण्डमण्डितम् = प्रवालदण्डभूषितम्-प्रवालदण्डेन मण्डितम् सुशोभितम्। पीतम् = पीतवर्णम्। अम्भः प्रभु चामरम् = अम्भः प्रभोः वरुणस्य चामरम्। वरुण प्रकीर्णकं च किम् = किमु इति अबुद्ध बुद्धवान् उत्प्रेक्षितवानित्यर्थः।

कृतावरोहस्य हयादुपानही

ततः पदे रेजतुरस्य बिभ्रती।

तयोः प्रवालैर्वनयोस्तथाऽम्बुजे-

नियोद्धकामे किमु बद्धवर्मणी॥ १२३ ॥

अन्वय - ततः हयात् कृतावरोहस्य अस्य उपानही विभ्रती पदे तयोः प्रवालैः तथा अम्बुजैः नियोद्धकामे बद्धवर्मणी किमु रेजतुः ।

शब्दार्थ- हयात् = घोड़े से। कृतावरोहस्य = उतरे हुए। उपानही जूतों को। विभ्रती धारण करने वाले। प्रवालैः = नवकिसलयों से। अम्बुजैः कमलों के साथ। नियोद्धकामे युद्ध करने की इच्छा वाले। बद्धवर्मणी = कवच बाँधे हुए। रेजतुः शोभित हुए।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में जूतों से युक्त राजा नल के चरणों का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- उसके बाद घोड़े से उतरे हुए उनके जूते धारण किये हुए पैर मानी उन दोनों वनों के किसलयों और कमलों से युद्ध करने की इच्छा से कवच बाँधे हुए शोभित हुए।

हिन्दी व्याख्या- जब राजा नल उपवन में आये और घोड़े से उतरे तो उनके पैरों में जूते थे। जूते धारण किये हुए राजा नल के पैर इस प्रकार शोभित हो रहे थे, मानो उपवन के नवीन किसलयों और जलाशय के कमलों से युद्ध करने की इच्छा से कवच धारण करके तैयार हो गये हों अर्थात् राजा नल के पैर कमल के समान सुन्दर तथा नवीन किसलयों के समान कोमल थे, अतः वे हंस के सौन्दर्य को सहन नहीं कर पा रहे थे।

संस्कृत व्याख्या- ततः = तदनन्तरम्। हयात् अश्वात् तुरङ्गात् वा। कृताश्वरीहस्य = विहिताऽवतरणस्य । अस्य = नलस्य। उपानहौ पादत्राणौ। वर्मरूपे इति भावः। विनती धारयती। पदे चरणौ। तयोः। वनयोः = सलिलकाननयोः। प्रवालैः पल्लवैः। तथा च। अम्बुजैः पद्मश्च। नियोक्षुकामे युद्धकामे -इत्यर्थः। अतः बद्धवर्मणी सन्नद्धकवचे। रेजतुः = शुशुभाते। किमु ।

विधाय मूर्ति कपटेन वामनीं,

स्वयं बलिध्वंसिविडम्बिनीमयम् ।

उपेतपाश्वश्चरणेन मौनिना,

नृपः पतङ्ग समधत्त पाणिना ॥ १२४॥

अन्वय- अयं नृपः स्वयं कपटेन बलिध्वंसिविडम्बिनीम् वामनीम् मूर्तिम् विधाय मौनिना चरणेन उपेत पाश्वः पाणिना पतंगम् समधत्त ।

शब्दार्थ - अयं नृपः = इस राजा नल ने। कपटेन कपट के सहारे। बलिध्वंसिविडम्बिनीम् = विष्णु का अनुसरण करने वाली। वामनीम् लघु, छोटी। मूर्तिम् मूर्ति को। विधाय बनाकर, धारण करके। पाणिना = हाथ से। पतंगम् पक्षी हस को। समधत्त पकड़ लिया।

प्रसंग-सन्दर्भ- दमयन्ती के वियोग में व्याकुल राजा नल द्वारा हंस को पकड़ने का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- उस राजा ने कपट के द्वारा राजा बलि का ध्वंस करने वाले वामनरूपधारी विष्णु का अनुसरण करने वाली वामनी मूर्ति धारण करके चुपचाप, निःशब्द कदम बढ़ाते हुए उस हंस को हाथ से पकड़ लिया।

हिन्दी व्याख्या- भगवान् विष्णु ने अपने आकार को लघु बनाकर राजा बलि को पकड़ने का कार्य किया था। विष्णु के समान राजा नल ने भी हंस को पकड़ने हेतु अपने आकार को छोटा बनाया अर्थात् नल खड़े होने की अपेक्षा बैठकर अथवा झुककर हंस के पास गया। उसने निःशब्द चरण रखते हुए हाथ बढ़ाकर हंस को पकड़ लिया। अगर शब्द करते हुए कदमों से राजा नल उसकी ओर बढ़ता तो हंस उड़ सकता था।

संस्कृत व्याख्या- अयम् एषः। नृपः क्षितीशः नलः। स्वयम् स्वयमेव, बिना सहायकेन। कपटेन = छलेन । वलिध्वंसि विडम्बिनीम् = राज्ञः बलेः विध्वंसकर्तुः विष्णोः समानाम्। वामनीम् = लघुरूपाम्। मूर्तिम् = आकृतिम् । विधाय = कृत्वा। मौनिना शब्दहोनेन, चरणेन पाद विन्यासेन। उपेतपाश्र्वः हंसस्य समीपं गत्वा। पाणिना = हस्तेन। पतंगम् विहंगं हंसम् । समधत्त = गृहीतवान् ।

तदात्तमात्मानमवेत्य संभ्रमात्

पुनः पुनः प्रायसदुत्प्लवाय सः ।

गतो विरुत्योड्डयने निराशतां

करौ निरोदुर्दशति स्म केवलम् ॥ १२५ ॥

अन्वय- तदा सः आत्मानं आत्तं अवेत्य संभ्रमात् पुनः पुनः उत्प्लवाय प्रायसत् उड्डयने निराशतां गतः विरुत्य निरोधुः करौ केवलं दशति स्म।

शब्दार्थ - आत्मानम् = स्वयं को। आत्तम् पकड़ा हुआ। अवेत्य जानकर। संभ्रमात् = भय के साथ। उत्प्लवाय उड़ने के लिए। प्रयासत् प्रयास किया। उड्डयने उड़ने में। निराशताम् = निराशा को। गतः = प्राप्त हुआ। विरुत्य रो-रोकर। निरोद्धः पकड़ने वाले के। करौ हाथों को। दशति स्म = काटने लगा।

प्रसंग-सन्दर्भ- नल के हाथ से स्वयं को छुड़ाने का प्रयास करते हुए हंस का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- वह स्वयं को पकड़ा हुआ जानकर भय के साथ बार-बार उड़ने का प्रयास करने लगा। उड़ने में निराशा को प्राप्त हुआ रो-रोकर पकड़ने वाले के हाथों को काटने लगा।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल ने हंस की सुन्दरता पर मोहित होकर सोते हुए हंस को पकड़ लिया। जब स्वयं को हंस ने नल के हाथों में पकड़ा हुआ जाना तो वह उनसे छूटने का प्रयास करने लगा। वह हाथों से छूटकर किसी भी प्रकार से उड़ जाना चाहता था, लेकिन वह राजा नल के हाथों से न छूट सकने के कारण निराश हो गया और रो-रोकर उनके हाथों को ही काटने लगा।

संस्कृत व्याख्या- सः = हंसः। आत्मानम् स्वम्। तदातम् = मलगृहीतम्। अवेत्य = ज्ञात्वा । संभ्रमात् = त्वरायाः। उत्तरलवाय उत्पतनाय। पुनः पुनः भूयर्योभूयः। प्रायसत् प्रयत्नमकरोत्। उड्डयने = उत्पतने निराशताम् = आशाराहित्यम्। गतः प्राप्तः। विरुत्य विक्रुश्य। विरोद्धः गृहीतुः (नलस्य) करी हस्ती, केवलम् = मात्रम् । दशतिस्म = दष्टवान्।

सही जोड़ी बनाओ

(क) प्रतिमा	-	(क) सुवर्णमय
(ख) विधाय	-	(ख) अश्व
(ग) स्वयं	-	(ग) मूर्ति
(घ) हयात	-	(घ) अपना
(ङ) कांचन	-	(ङ) धारण कर

9.4 सार संक्षेप -

नैषधीय चरितम की कथा को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत कर संस्कृत से हिन्दी व्याख्या का समन्वय किया गया है। व्याख्या के क्रम में अन्वय, संस्कृत व्याख्या के साथ हिन्दी व्याख्या द्वारा व्याख्यात्मक शैली को इसकी में समन्वित किया गया है। नैषधीयचरितम के प्रथम सर्ग में 111 से 125 श्लोक तक व्याख्या के अंतर्गत व्याकरण, भावार्थ आदि को समाहित कर प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है। व्याख्यात्मक शैली का अध्ययन करने से श्लोक आदि को भावार्थों के माध्यम से अध्याय में संकलित किया गया है।

9.5 मुख्य शब्द

1. यः - जो
2. सरोजनी - कमलिनी
3. पक्षेण - पंख से
4. अंबुज - कमल
5. तृणेन - घास से

9.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1. (ग), 2. (ङ), 3. (घ), 4. (ख), 5. (क)

9.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम्- श्रीहर्ष, , कृष्णदास अकादमी , वाराणसी, १९८५।
2. आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीय चरितम्- श्रीहर्ष, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २००८।
3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१७
4. डॉ शोभा भरद्वाज, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, आगरा, २०२१ ।

9.8 अभ्यास प्रश्न

1. राजा नल के मनोरथ का वर्णन कीजिये ।
2. हंस की शोभा का वर्णन कीजिये ।
3. राजा नल तथा हंस के मध्य संवाद की व्याख्या कीजिये।
4. निम्न श्लोक की व्याख्या कीजिये

तदात्तमात्मानमवेत्य संभ्रमात्

पुनः पुनः प्रायसदुत्प्लवाय सः ।

गतो विरुत्योड्डयने निराशतां

करौ निरोदुर्दशति स्म केवलम् ॥

इकाई -10

नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग के 126 से 145 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग के 126 से 145 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

10.4 सार संक्षेप -

10.5 मुख्य शब्द

10.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

नैषधीय चरितम् के प्रतिपाद्य विषय तथा दमयंती के चरित्र चित्रण के पश्चात श्लोक के माध्यम से कथा को समझ जाना सुगम हो जाता है। श्री हर्ष के नैषधीय चरित की प्रथम सर्ग के श्लोक की माध्यम से उनकी व्याख्या के द्वारा प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुति इकाई में प्रस्तुत किया गया है। इसी आधार पर संस्कृत भाषा के श्लोक के द्वारा उन में प्रतिपाद्य विषय को जानकार भाषा के ज्ञान तथा व्याकरण टिप्पणी आदि को समाहित कर व्याख्या की गई है। आगे की इकाइयों में भी कथा के मुख्या विषयों की विवेचना के साथ ही श्लोकों की व्याख्या को क्रम से वर्णित किया जायेगा।

10.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के श्लोकों की व्याख्या करने में समर्थ हो सके।
2. महाकाव्य में वर्णित नल के चरित्र को विशेष लोक के माध्यम से जान सके।
3. अन्वय, व्याकरण, भावार्थ आदि के माध्यम से संस्कृत भाषा को समझ सके।
4. संस्कृत विषय की व्याख्यात्मक तथा व्याकरण शैली से परिचित हो सके।
5. नैषधीय चरितम् के श्लोक के महत्व से परिचित हो सके।

10.3 नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग तक श्लोकों की 145 से 126 सप्रसंग व्याख्या

ससंभ्रमीत्पाति पतत्कुलाकुलं

सरः प्रपद्योत्कतयाऽनुकम्पिताम्।

तर्मिलोलैः पतगग्रहान्नृपं

न्यवारय द्वारिरुहैः करैरिव ॥ १२६ ॥

अन्वय - ससंभ्रमीत्पातिपतत्कुलाकुलं सरः उत्कतया अनुकम्पितां प्रपद्य उर्मिलोलैः वारिरुहैः करैः तं नृपं पतगग्रहात् न्यवारयत् इव।

शब्दार्थ- ससंभ्रम = घबराकर। उत्पातिपतत्कुलाकुलम् उड़ते हुए पक्षी समूह से युक्त। सरः = तालाब। उत्कतया = ऊपर उठते हुए जल के कारण। अनुकम्पिताम्

कम्पन्नशीलता को। प्रपद्य प्राप्त करके। ऊर्मिलोलैः = लहरों से चंचल। वारिरुहैः कमल रूपी। करैः हाथों से। पतग्रहात् = पक्षियों को पकड़ने से। न्यवारयत् = मना कर रहा था।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में प्रकृति में मानवसदृश संवेदना का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- घबराकर उड़ते हुए पक्षी समूह से युक्त सरोवर उठते हुए जल के कारण कम्पनशीलता को प्राप्त करके लहरों से चंचल कमलरूप हाथों से उस राजा को पक्षियों को पकड़ने से मना-सा कर रहा था।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल द्वारा हंस को पकड़े जाने पर सरोवर में स्थित अन्य पक्षी भय के कारण उड़ने लगे। उड़ने पर उनके पंखों की हवा से सरोवर का जल कम्पायमान हो गया, जिसके कारण जलाशय में स्थित कमल हिलने-डुलने लगे। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था, मानो वह जलाशय कमल रूपी हाथ हिला-डुलाकर राजा से हंस को न पकड़ने के लिए कह रहा हो अर्थात् वह जलाशय दयाभाव युक्त होकर अपने कमलरूपी हाथों से नल को हंस को छोड़ने के लिए कह रहा था।

संस्कृत व्याख्या-ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाऽऽकुलम् = सत्त्वरोत्पतनशीलपक्षिसमूह व्याकुलम्। सरः = तडागः। उत्कतया = उत्कण्ठितत्वेन । अनुकम्पिताम् = दयालुताम्। प्रपद्य प्राप्य। तम् = पूर्वोक्तम्। नृप = राजानं नलमितिभावः। ऊर्मिलोलैः तरङ्गचञ्चलैः। वारिरुहैः कमलैः। करैः इव हस्तैः इव। पतग्रहात् = पक्षिग्रहणात्। न्यवारयत् इव = निवारितवान् इव ।

पत्रिणा तद्रुचिरेण वञ्चितं

श्रियः प्रयान्त्याः प्रविहाय पल्वलम् ।

चलत्पदाम्भो रुहनुपुरोपमा

चुकूज कूले कलहंसमण्डली॥ १२७॥

अन्वय- रुचिरेण पतत्रिणा वञ्चितं तत् पल्लवं प्रविहाय प्रयान्त्याः श्रियः चलत्पादाम्भोरुहनुपुरोपमा कलहंसमण्डली कूले चुकूज।

शब्दार्थ - रुचिरेण = सुन्दर। पतत्रिणा पक्षी से। वञ्चितम् = रहित। पल्लवम् = जलाशय को। लक्ष्मी के। चलत् चञ्चल। पदाम्भोरुहनुपुरोपमा राजहंस समूह ने। कूले तट पर। चुकूज कूजन प्रविहाय = छोड़कर। प्रयान्त्याः जाती हुई। श्रियः = चरण कमल के नूपुर के समान। कलहंसमण्डली किया।

प्रसंग-सन्दर्भ- सुवर्णमय हंस के पकड़े जाने के विरोध में राजहंस समूह द्वारा किये गये विवाद का श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद - सुन्दर पक्षी से रहित उस जलाशय को छोड़कर जाती हुई लक्ष्मी के चञ्चल चरण कमल के नूपुर के समान राजहंस समूह ने तट पर कूजन किया।

हिन्दी व्याख्या- स्वर्णहंस के पकड़ लिये जाने से सरोवर की शोभा समाप्त हो गयी। उस सुन्दर पक्षी से रहित हो जाने पर तालाब को छोड़कर जाती हुई लक्ष्मी रूपी शोभा के चञ्चल चरण रूपी कमल के नूपुरों की झंकार के समान ही जलाशय में स्थित अन्य राजहंसों का समूह रुष्ट होकर जोर-जोर से चिल्लाकर विवाद करने लगा।

संस्कृत व्याख्या- रुचिरेण = सुन्दरेण मनोज्ञेन वा। पतत्रिणा हंसनेति भावः। वञ्चितम् = विरहितम् । तत् = पूर्वोक्तम् = पल्लवम् = तडागम्। प्रविहाय संत्यज्य। प्रयान्त्याः गच्छन्त्याः। श्रियः = लक्ष्याः-शोभायाः।

चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा चलद्भ्यां चरणकमलनूपुराभ्यां उपमा साम्यं ग्रस्याः सा।
कलहंसमण्डली = राजहंससंहतिः। कुले तीरे। चुकूज अव्यक्तशब्दं चकार।

न वासयोग्या वसुधेयमीदृशः-

त्वमंग ! यस्याः पतिरुज्झितस्थितिः ।

इति प्रहाय क्षितिमाश्रिताः नभः,

खगास्तमाचुकुशुरारवैः खलु ॥ १२८ ॥

अन्वय- अंग । इयं वसुधा वासयोग्या न (वर्तते), यस्याः उज्झितस्थितिः इदृशः त्वं पतिः (असि)। इति क्षितिम् प्रहाय नभः आश्रिताः खगाः तम् आरवैः आचुकुशुः।

शब्दार्थ- अंग = है। इयम् = यह। वसुधा धरती। वासयोग्या निवास करने योग्य । यस्याः = जिसका। उज्झितस्थितिः = मर्यादा त्यागने वाला। ईदृशः इस प्रकार का। त्वम् = तुम। पतिः = स्वामी हो। क्षितिम् = धरती को। प्रहाय त्यागकर। नभः आकाश में। आश्रिताः पहुँचे हुए। खगाः = पक्षीगण ने। आरवैः = ध्वनियों से, शब्दों से। आयुकुशुः निन्दा की।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में पक्षियों द्वारा तीव्र शब्दों द्वारा नल की निन्दा किये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- हे राजन् ! इस प्रकार की यह धरती रहने योग्य नहीं है, क्योंकि तुम जैसा मर्यादाहीन व्यक्ति इसका स्वामी है। इस प्रकार धरती को त्यागकर आकाश में पहुँचे हुए पक्षियों ने अपने शब्दों से राजा नल की निन्दा की।

हिन्दी व्याख्या- राजा प्रजा का रक्षक और अत्याचारियों का विनाशक होता है। राजा का काम किसी निर्दोष को पीड़ा देना और किसी के साथ धोखा करना नहीं है। राजा ने. एक निरपराध हंस को धोखे से पकड़ लिया। उसका यह काम

मर्यादा के विरुद्ध था। अतः पृथ्वी का त्याग करके आकाश का आश्रय प्राप्त करने वाले पक्षियों ने जोर-जोर से राजा नल की निन्दा की।

संस्कृत व्याख्या- अंग = भोः। इयम् एषा। बसुधा यस्याः = धरायाः। उज्झितिस्थितिः = मर्यादात्यागकर्ता। ईदृशः = स्वामी। इति = अनेन कारणेन। क्षितिम् धरित्रीम्। प्रहाय प्राप्ताः। खगाः = पक्षिणः। तम् = राजानम् नलम्। आरवैः स्वोच्चरितैः खलु = निश्चयेन।

न जातरूपच्छदजातरूपता

द्विजस्य दृष्टेयमिति स्तुवन् मुहुः ।

अवादि तेनाथ स मानसौकसा

जनाधिनाथः करपञ्जरस्पृशा ॥ १२९॥

अन्वय- इयं जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य न दृष्टा इति मुहुः स्तुवन् स जनाधिनाथः अथ करपञ्जरस्पृशा तेन मानसौकसा अवादि।

शब्दार्थ - जातरूपच्छदजातरूपता सोने के पंखों से उत्पन्न सुन्दरता। द्विजस्य पक्षी की। दृष्टा = देखी। मुहुः = बार-बार। स्तुवन् = प्रशंसा करने वाले। जनाधिनाथः राजा नल ने। करपञ्जर स्पृशा = हाथ रूपी पिंजड़े में स्थित। मानसौकसा हंस द्वारा। अवादि कहा।

प्रसंग-सन्दर्भ- हंस की शोभा का वर्णन करने वाला यह श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद- पक्षी की तरह यह स्वर्णमय पंखों की सुन्दरता नहीं देखी गई है, इस प्रकार बार-बार प्रशंसा करते हुए राजा नल ने हाथ रूपी पिंजड़े में स्थित उन हंस से कहा गया।

हिन्दी व्याख्या- जलाशय में स्थित हंस की सुन्दरता पर मोहित होकर राजा नल ने उसे पकड़ लिया। वह हंस सुवर्णमय था। आकर्षित होकर राजा नल हंस की प्रशंसा करते हुए बोले कि सोने के पंख से उत्पन्न सुन्दरता किसी पक्षी की कभी नहीं देखी है। राजा नल के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर वह हंस बोला।

संस्कृत व्याख्या- इयम् = ईदक् । जातरूपच्छदजातरूपता = सुपर्णपक्षेत्पन्नसौन्दर्यता। द्विजस्य सुवर्णस्य पक्षिणः। न दृष्टा हिरण्यमयः पक्षी न कुत्रापि दृष्टः, इत्यर्थः। इति इत्थम्। मुहुः वारंवारम् । स्तुवन् = प्रशंसन् । सः = पूर्वोक्तः। जनाधिनाथः सः राजा नलः। अथ अनन्तरं। करपञ्जरस्पृशा = हस्तपिञ्जरस्पर्शकारिणा। तेन पूर्वोक्तेन। मानसौकसा मानसरोवरवासिना। हंसेनेत्यर्थः। अवादि = उक्तः ।

धिगस्तु तृष्णातरलं भवन्मनः ।

समीक्ष्य पक्षान्मम हेमजन्मनः ।

तवार्णवस्येव तुषारशीकरै-

भवेदमीभिः कमलोदयः कियान् ॥ १३०॥

अन्वय - मम हेमजन्मनः पक्षान् समीक्ष्य तृष्णातरलं भवन्मनः धिक् अस्तु। तुषारशीकरैः अर्णवस्य इव तव अमीभिः कियान् कमलोदयः भवेत्।

शब्दार्थ- मम मेरे। हेमजन्मनः तृष्णातरलम् = लोभ से चञ्चल। धिक् स्वर्ण से उत्पन्न। पक्षान् पंखों को। समीक्ष्य देखकर। धिक्कार। अस्तु है। तुषारशीकरैः बर्फ की बूँदों से। अर्णवस्य = समुद्र के । तव तुम्हारा। अमीभिः इनसे। कियान् = कितनी।

प्रसंग-सन्दर्भ- सुवर्ण पंखों के प्रति लोभी राजा नल को हंस द्वारा धिक्कारने का श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद - मेरे स्वर्ण से उत्पन्न पंखों को देखकर लोभ से चञ्चल आपके मन को धिक्कार है। वर्ष की बूँदों से समुद्र के समान आपकी इनसे कितनी श्रीवृद्धि होगी।

हिन्दी व्याख्या- जब राजा नल ने हंस के सुवर्णमय पंखों की प्रशंसा की तो हंस राजा के लोभ की थि विकारने लगा। वह हंस राजा नल से बोला, जिस प्रकार बर्फ की बूँदों से समुद्र के अथाह जल में कोई वृद्धि नहीं होती, उसी प्रकार मेरे सुवर्णमय पंखों से आकर्षित आपका मन लोभ से चञ्चल हो गया है। अतः आपको लोभ करना ठीक नहीं है।

संस्कृत व्याख्या- अथ हंसः पद्य चतुष्टयेन राजानमुपालभते धिगिति । हेम जन्मनः = सौवर्णान्, मम = हंसस्य, पक्षान् = पतत्राणि, समीक्ष्य दृष्ट्वा, तृष्णातरलम् = लालसाचञ्चलम्, भवन्मनः धिक् त्वच्चित्तं, कि ाक, भवन्मनसो निन्देत्यर्थः। अस्तु भवतु, तुषार शीकरैः हिमकणैः, अर्णवस्य इव = समुद्रस्य इव, तव = भवतः, अमोभिः = एभिः, हेमजन्मभिः पक्षैरिति भावः, कियान् किं परिमाणः, कमलोदयः भवतः कमलायाः = लक्ष्म्याः, समुद्रस्य कमलस्य जलस्य, उदयः वृद्धिः, भवेत् स्यात् अतिस्वल्पः स्यादिति भावः॥

न केवलं प्राणिवधो वधो मम

त्वदीक्षणाद्विश्वसितान्तरात्मनः ।

विगर्हितं धर्मधनैर्निर्वहणं

विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि ॥ १३१ ॥

अन्वय - त्वदीक्षणाद् विश्वसितान्तरात्मनः मम वधः केवलं प्राणिवधः न, विश्वासजुषां द्विषामपि निर्बहणं 8 धर्मधनैः विशिष्य विगर्हितम् ।

शब्दार्थ - त्वदीक्षणाद् = आपके दर्शन से। विश्वसितान्तरात्मनः = विश्वस्त मन वाले। मम = मेरे। वधः = वध । विश्वासजुषाम् = विश्वास करने वाले। निर्वहणं वध करना। धर्मधनैः = धर्म ही है धन जिनका, उनके द्वारा। विशिष्य विशेष करके। विगर्हितम् = निन्दित किया गया है।

प्रसंग-सन्दर्भ - हिंसा करना निन्दनीय कार्य है। यह आशय श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में व्यक्त किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- आपके दर्शन से विश्वस्त मन वाले मेरा बध केवल प्राणिमात्र का वध नहीं होगा, विश्वासयुक्त शत्रुओं का भी वध, धर्म ही है धन जिनका, उनके द्वारा विशेष रूप से निन्दित किया गया है।

हिन्दी व्याख्या- जब नल ने हंस को पकड़ लिया तो हंस उनकी निन्दा करते हुए कहता है कि मेरे द्वारा आपके दर्शन मात्र से ही विश्वास कर लिया गया था। यदि अब आप मेरा वध करते हैं तो वह जीव हिंसा मात्र ही नहीं कही जायेगी, अपितु विश्वासघात रूपी महान् पाप के भी आप भागी होंगे, क्योंकि मनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने जो धर्म को ही अपना धन मानते हैं, विश्वास में आये हुए शत्रु का वध करना भी अत्यन्त निन्दनीय कर्म कहा है।

संस्कृत व्याख्या- (हे नृप) त्वदीक्षणाद् भवन्मूर्तिदर्शनात्, विश्वसितान्तरात्मनः = विश्वसितः विश्वासं प्राप्तः अन्तरात्मा मनो यस्य तादृशस्य, मे मम, वेधः हननम् व्यापादनम्, केवलः प्राणिवधः जन्तु व्यापादनमात्रम्, न न अस्ति। किन्तु विश्वासजुषाम् = विस्रम्भभाजां, द्विषाम् अपि = शत्रूणाम् अपि, निर्बहणम्, हिसनम्, धर्मधनैः = धर्म एव धनं येषां तैः मन्वादिभिः इति शेषः। विशिष्य अतिरिच्य, विगर्हितम् = अत्यन्त निन्दितम् इति अर्थः।

पदे पदे सन्ति भटा रणोद्धटा,

न तेषु हिंसारस एष पूर्यते।

धिगीदृशं ते नृपतेः कुविक्रमं,

कृपाश्रये यः कृपणे पतत्रिणि ॥ १३२॥

अन्वय- पदे पदे रणोद्धटाभराः सन्ति। एष हिंसारसः तेषु न पूर्यते। ते नृपतेः ईदृशं कुविक्रमं धिक्, यः कृपाश्रये पतत्रिणि (वर्तते)।

शब्दार्थ- पदे पदे कदम-कदम पर। रणोद्धटाः युद्ध करने में कुशल। भटाः = योद्धा। हिंसा-रस = हिंसा का आनन्द। तेषु उनमें। पूर्यते पूर्णरूपेण। ईदृशम् इस प्रकार के। कुविक्रमम् = निन्दित पराक्रम को। धिक् धिक्कार है। कृपाश्रये कृपा के आश्रय, कृपा करने योग्य पर। कृपणे = करुणा करने योग्य पर। पतत्रिणि= पक्षी पर। प्रदर्शयते = दिखाया जा रहा है।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषण महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस अपने आपको रमणीय एवं कृपा का आश्रय समझता हुआ राजा नल को धिक्कार रहा है।

हिन्दी अनुवाद- हे राजन् पग-पग पर युद्ध कला में प्रचण्ड योद्धा प्राप्त होते हैं। तुम्हारा यह हिंसा सम्बन्धी प्रेम क्या उनमें पूरा नहीं होता? तुम्हारे इस निन्दित पराक्रम को धिक्कार है। तुम दया के पात्र मुझ हीन पक्षी पर अपना पौरुष दिखा रहे हो।

हिन्दी व्याख्या- वीर और योद्धा को अपने समान शक्ति वाले पर अपने बल और पौरुष का प्रदर्शन करना चाहिए। वैर और मैत्री दोनों ही तुल्य बल वाले लोगों के बीच प्रशंसनीय होती है। राजा नल को किसी योद्धा से युद्ध करके अपने हिंसा-रस को, अपनी हिंसा-वृत्ति को शान्त करना चाहिए। निर्बल और विवश पक्षी तो सभी की करुणा का पात्र है। जो व्यक्ति इस प्रकार के निरीह पक्षी पर अपने बल

का प्रदर्शन करता है, उसके बल को धिक्कार है अर्थात् मुझ जैसे कृपापात्र पक्षी पर अपने पराक्रम का प्रयोग करना अपने लिए सर्वथा अनुचित एवं निन्दनीय है।

सर्वत्र। रणोद्धटाः = रण उद्धटाः तव, भवतः। हिसारसः = प्राणिवध तव, भवतः। इंदूशम् = एवं भूतम्।

संस्कृत व्याख्या- हे नृपते हे राजन्। पदे पदे स्थाने स्थाने, = समरे प्रचण्डाः। भटाः शूराः। सन्ति वर्तन्ते। एष अयम्। ते नुरागः, मारणरूपं व्यसनम्। न नहि। पूर्यते पूर्णतां गच्छति। ते कुविक्रमम् = निन्दित पराक्रमम्। धिक् धिक्कारः। अस्तु भवतु। यः पराक्रमः। कृपाश्रये = कृपा + आश्रये = करुणापात्रे। कृपणे दीने। पत्तत्रिणि खगे। प्रदश्यंयते प्रकटं क्रियते।

फलेन मूलेन च वारिभूरुहां

मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः ।

त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा

कथं न पत्या धरणी हणीयते ॥ १३३ ॥

अन्वय- यस्य मम मुनेः इव वारिभूरुहाम् फलेन मूलेन च इत्थं वृत्तयः, तस्मिन् अपि दण्डधारिणा त्वया पत्या अद्य धरणी कथं न हणीयते।

शब्दार्थ- मुनेः = मुनि के। वारिभूरुहाम् = कमलों के। इत्थम् = इस प्रकार। वृत्तयः= जीविकाएँ होती हैं। दण्डधारिणा = दण्ड धारण करने वाले के द्वारा। पत्या पति से। हणीयते लज्जित होती है।

प्रसंग-सन्दर्भ- सत् असत् कर्मों की व्याख्या प्रस्तुत करने वाला यह श्लोक श्री हर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद - मुझ जिसकी जीविका मुनि के समान कमलों के फल और मूल से है, उस पर दण्ड 8 तारण करने वाले आप पति से आज पृथ्वी क्यों नहीं लज्जित होती है ?

हिन्दी व्याख्या- जिस प्रकार वन में रहने वाले, मुनि फल फूल आदि खाकर जीवन का निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार में हंस भी जल में उत्पन्न होने वाले कमल आदि से अपनी जीविका चलाता हूँ अर्थात् मुनियों के समान मेरी वृत्ति है। ऐसे दया पात्र मुझ पर आप दण्ड का प्रयोग क्यों करते हैं? मुनि सदृश मुझको काट देते हुए आप भूपति से पृथ्वी उसी प्रकार लज्जित होगी, जिस प्रकार असताचरण करने वाले पति से पत्नी लज्जित होती है।

संस्कृत व्याख्या- यस्य, मम हंसस्य। मुनेः इव ऋषेः इव। वारिभूरुहाम् = जलरुहां पदमादीनाम्, पद्मवृक्षादीनामित्यर्थः। फलेन = सस्येन। मूलेन च कन्दादिना मृणालेन च। इत्थम् अनेन दृश्यमानप्रकारेण। वृत्तयः = जीविकाः सन्तीतिशेषः। तस्मिन् अपि निरपराधेऽपि मुनिसदृशेऽपि। निर्दोषेऽपीति शेषः, दण्ड शारिणा = निग्रहकारिणा, अदण्ड्यदण्डकेनेत्यर्थः। त्वया भवता। पत्या पालकेन राज्ञेत्यर्थः। अद्य अस्मिन् दिने। धरणी = धरित्री। कथं केन प्रकारेण। न हणीयते जुगुप्सते एव इत्यर्थः ।

इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयैः

सचित्रवैलक्ष्यकृपं नृपं खगः ।

दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथी-

चकार कारुण्यरसापगा गिरः ॥ १३४॥

अन्वय- इति ईदृशैः वाङ्मयैः तं नृपं सचित्रवैलक्ष्यकृपं विरचय्य स खगः दयासमुद्रे तदाशये कारुण्यरसापगाः गिरः अतिथीचकार ।

शब्दार्थ- ईदृशैः = ऐसे। वाङ्मयैः वचनों से। तम् उसको। सचित्र वैलक्ष्यकृपम् आश्चर्य लज्जा और दवापूर्ण। विरचय्य बनाकर। दयासमुद्रे दया के सागर में। कारुण्यरसापगाः करुण रस की नदी रूपी। अतिथीचकार प्रवेश कराया।

प्रसंग-सन्दर्भ- 'सहृदय व्यक्ति पर सारगर्भित वाणी का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है' यही आशय श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में व्यक्त किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- इस प्रकार ऐसे वचनों से उस राजा को आश्चर्य, लज्जा और दयापूर्ण करके उस पक्षी ने दया के सागर रूपी नल के हृदय में करुण रस की नदी रूपी वाणी को प्रवेश कराया।

हिन्दी व्याख्या- जिस प्रकार सागर में विभिन्न नदियाँ आकर प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार हंस के सुवर्णमय स्वरूप को देखकर चकित हुए, अपनी निन्दा सुनने से लज्जित तथा दीन वचन सुनने से कृपायुक्त राजा नल के हृदय में करुणा रूपी जल की नदी रूपी वाणी प्रवाहित हो गयी अर्थात् हंस ने दयालु राजा से करुणापूर्ण वचन उसी प्रकार कहे, जिस प्रकार नदियाँ जलपूर्ण समुद्र में प्रवेश करती हैं।

संस्कृत व्याख्या- इति = इत्थम्। ईदृशैः एतादृशैः। वाङ्मयैः वचनैः। तम्, नृपम् = राजानम् नलमित्यर्थः। सचित्रवैलक्ष्यकृपम् = चित्रं च वैलक्ष्यं च कृपा च तत्सहितम्। विरचय्य विधाय। दयासमुद्रे = दयासागरे। तदाशये तस्य नलस्य आशये हृदये। कारुण्यरसापगाः करुणारसनदीः। गिरः = वाचः। अतिथीचकार = प्रवेशयामासे व्यर्थः। समुद्रे नदीप्रवेशो युक्त इति भावः ।

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा,
नव प्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।

गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्,

अहो विधे ! त्वां करुणा रुणद्धिनो॥ १३५॥

अन्वय- मदेकपुत्रा जननी जरातुरा (अस्ति), तपस्विनी वरटा नवप्रसूतिः (वर्तते) एष (एव) जनः तयोः गतिः (अस्ति) तम् अर्दयन् विधे! त्वाम् करुणा न रुणद्धि, इति अहो।

शब्दार्थ - मदेकपुत्रा = मुझ एक पुत्र वाली। जननी मेरी माता। जरातुरा वृद्धावस्था से पीड़ित है। तपस्विनी = प्रतिव्रता। वरटा हंसिनी। नव प्रसूतिः कुछ समय पूर्व सन्तान उत्पन्न करने वाली। एष जनः = यह व्यक्ति अर्थात् मैं। तयोः उन दोनों की। गतिः सहारा। तम् उसको। अर्दयन् = पीड़ित अर्थात् मारते हुए। विधे = हे विधाता। त्वाम् आपको। करुणा दया। न रुणद्धि नहीं रोकती। अहो= यह आश्चर्य का विषय है।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस को कारुणिक गाथा का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- मुझ एक पुत्र वाली मेरी माता वृद्धावस्था से पीड़ित है। मेरी पतिव्रता पत्नी हंसिनी ने कुछ समय पूर्व ही बच्चे को जन्म दिया है। उन दोनों की गति एकमात्र मैं ही हूँ। है विधाता ! उसको भी मारते हुए तुम्हें करुणा की भावना रोकती नहीं। यह आश्चर्य का विषय है।

हिन्दी व्याख्या - परिवार में स्त्रियों का सहारा पुरुष होता है। हंस के घर में दो स्त्रियाँ हैं-एक उसकी माता और दूसरी पत्नी। माता वृद्धावस्था से परेशान है और पत्नी कुछ समय पूर्व बच्चे को जन्म देने के कारण कुछ कार्य कर पाने में असमर्थ है। अकेला हंस ही अपने परिवार का सहारा है। विधाता ने ऐसा बुरा संयोग उपस्थित किया कि उसके भी मरने की स्थिति उपस्थित है। विधाता को ऐसे व्यक्ति पर तो दया करनी चाहिए।

संस्कृत व्याख्या- मदेकपुत्रा = एकाकिना मया पुत्रवती। जननी माता। जरातुरा = वृद्धावस्था पीडिता। तपस्विनी = पतिव्रता। वरटा हंसिनी। नवप्रसूता = नतूना शिशुजन्मदात्री। एषः जनः अहम् । तम् अपि = तम् जनम् माम् इंसम् अपि। अर्दयन् पीडयन्। विधे हे विधातः। त्वाम् विधातारम्। करुणा दया। न = नहि। रुणद्धि वारयति।

मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दया-

सखाः सखायः खचदश्रवो मम।

निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तर-

स्वयैव मातः ! सुतशोकसागरः ॥ १३६ ॥

अन्वय- हे मातः। मम दयासखाः सखायः स्रवदश्रवः मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया निवृत्तिम एष्यन्ति, परं त्वया एव सुतशोकसागरः दुरुत्तरः ।

शब्दार्थ - दयासखाः = दयालुजन। सखायः मित्र। स्रवदश्रवः = आँसू बहाते हुए। मुहूर्तमात्रम् = क्षणभर । भवनिन्दया = संसार की निन्दा से। निवृत्तिम् = शान्ति को। सुतशोकसागरः = पुत्रजन्य शोक का सागर। दुरुत्तरः = पार करना कठिन होगा।

प्रसंग-सन्दर्भ- पुत्र वियोग जन्य माता के दुःख का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- हे माता । मेरे दयालु मित्र आँसू बहाते हुए क्षणभर में संसार की निन्दा से शान्ति को प्राप्त कर लेंगे, परन्तु तुम्हारे द्वारा पुत्रजन्य शोक का सागर पार करना कठिन होगा।

हिन्दी व्याख्या- संसार में माता का स्नेह सर्वथा निःस्वार्थ होता है। पत्नी, पुत्र का कष्ट ती क्षणमात्र का होता है, परन्तु पुत्र का दुःख माता के लिए जीवनपर्यन्त कष्टकारी होता है। इस प्रकार के कारुणिक भाव को व्यक्त करता हुआ हंस कहता है कि अश्रुधारा बहाते हुए दयालु मेरे सखा आदि यह सोचकर कि यह संसार क्षणभंगुर है, यहाँ जो जन्म लेता है, वह मृत्यु को भी प्राप्त करता है, कुछ समय के बाद मेरी मृत्यु के दुःख को भूल जायेंगे, किन्तु जिस प्रकार सागर को पार करना अत्यन्त दुष्कर है, उसी प्रकार है माता । मेरी मृत्यु से तुमको जीवनपर्यन्त कष्ट सहन करना होगा।

संस्कृत व्याख्या- हे मातः हे जननि। मम मे। दयासखाः दयालवः। सखायः मित्राणि (अन्ये पक्षिणः) । स्रवदश्रवः = स्रवन्ति गलन्ति अश्रूणि येषां तादृशा। मुहूर्तमात्रम् = क्षणमात्रम्। भवनिन्दया = संसार गर्हणेन भवस्य संसारस्य निन्दया। निवृत्तिम् = शोकोपरतिम्। एष्यन्ति यास्यन्ति। परम् किन्तु। त्वया एव, भवत्या एव। सुतशोकसागरः सुतशोकः पुत्रशोकः एव सागरः समुद्रः। दुरुत्तरः दुस्तरः दुखेन एव तरितुं योग्यः भविष्यति।

मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः

प्रियः कियददूर इति त्वयोदिते।

विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिणः

प्रिये ! स कीदृग्भविता तव क्षणः ॥ १३७॥

अन्वय - प्रिये ! मदर्थसन्देश मृणालमन्थरः प्रियः कियदूरे इति त्वया उदिते, अथ रुदत्तः पक्षिणः विलोकयन्त्याः तव स क्षणः कीदृग् भविता।

शब्दार्थ- मदर्थ = मेरे लिए। कियदूरे कितनी दूर। त्वया तुम्हारे द्वारा। उदिते = पूछने पर।

रुदतः = रोते हुए। विलोकयन्त्याः देखती हुई। भविता = होगा।

प्रसंग-सन्दर्भ- हंस की पत्नी के प्रति विलाप गाथा का श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- हे प्रिये ! मेरे लिए सन्देश और मृणाल भेजने में देर करने वाले मेरे प्रिय कितनी दूर हैं ? ऐसा तुम्हारे पूछने पर रोते हुए, पक्षियों को देखती हुई तुम्हारा वह क्षण कैसा होगा ?

हिन्दी व्याख्या- हंस अपनी प्रिया पत्नी की कही गयी बातों का स्मरण करके अत्यन्त कारुणिक विलाप करता हुआ कहता है कि जब वन से वापस लौटकर मेरे अन्य सखा पक्षी तुम्हारे पास पहुँचेंगे तो तुम उनसे पूछोगी कि मेरे लिए सन्देश और मृणाल लाने वाले मेरे पति कितनी दूर हैं? तब वे पक्षी मेरे पकड़े जाने की बात मुख से न कहकर केवल आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित करने लगेंगे, तब उनको रोता हुआ देखकर तुम अनिष्ट को समझ जाओगी। तब तुम्हारी क्या दशा होगी ? तुम किसी अनिष्ट को समझकर वजाहत सी हो जाओगी अर्थात् वह क्षण तुम्हारे लिए अत्यन्त कष्टकारक होगा।

संस्कृत व्याख्या- हे प्रिये! हे बल्लभे । मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः = महयम् इमे मदर्थये सन्देशमृणाले-तयोः सन्देशमृणालयोः वाचिक विसयोः विषये मन्थरः आलसः (तत्प्रेषणे विलम्बित प्रवृत्तिः वा)। प्रियः वल्लभः। कियदूरे = कियति दूरे देशे। वर्तते इति, कि परिमाण विप्रकृष्टप्रदेशे, वर्तत इति शेषः। इति, त्वया भवत्या, उदिते = उक्ते पृष्टे सतीति भावः। अथ प्रश्नाऽनन्तरं। रुदतः अश्रूणि विमुञ्चतः। अनिष्टोच्चारणशक्त्या अश्रूणि विमुञ्चतः। पक्षिणः खगान् विहङ्गान् इतो गतानीति शेषः। विलोकयन्त्याः पश्यन्त्याः। तव = भवत्याः सः क्षणः = कालः कीदृक् कीदृशः। भविता भविष्यति। वज्रपातसदृशः असहनीय इति भावः।

कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्

तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः ।

वियोक्ष्यसे वल्लभयेति निर्गता

लिपिर्ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा॥ १३८॥

अन्वय हे विधातः । प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः तव पाणिपङ्कजात् मयि 'वल्लभया वियोक्ष्यसे' इति ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा लिपिः कथं निर्गता।

शब्दार्थ - प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः प्रिया की शीतलता और कोमलता बनाने वाले। तव = तुम्हारे । पाणिपङ्कजात् = कमल रूपी हाथों से। वल्लभया प्रिया से। वियोक्ष्यसे = वियुक्त होओगे। ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा = मस्तक को संतप्त करने वाले कठोर अक्षरों से युक्त। निर्गता = निकली।

प्रसंग सन्दर्भ- ब्रह्मा की सृष्टि को धिक्कारते हुए हंस का वर्णन श्रीहर्ष वरिचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- हे ब्रह्मदेव प्रिया की शीतलता और कोमलता बनाने वाले तुम्हारे कमल रूपी हाथों से मेरे विषय में तुम प्रिया से वियुक्त होओगे, इस प्रकार मस्तक को संतप्त करने वाले कठोर अक्षरों से युक्त लिपि कैसे निकली ?

हिन्दी व्याख्या- विधाता के कार्य पर आश्चर्य प्रकट करता हुआ हंस कहता है कि ब्रह्मा ने अपने जिन कमल समान हाथों से मेरी प्रिया रानी की शीतलता और कोमलता की रचना की है, उनके वह हाथ इसी प्रकार की वस्तुएँ निर्मित करने में चतुर हैं। इसके विपरीत कठोर वस्तु को रचना या लेख उचित नहीं है। फिर भी उन्होंने मेरे विषय में प्रियतमा से वियोग सम्बन्धी अति कठोर लेख कैसे लिख दिया ?

संस्कृत व्याख्या- हे विधातः । है विधे। प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः = बल्लभाशीतलत्व-कोमलत्वनिर्मातुः, तव = भवतः, पाणिपङ्कजात् = कमलसदृशमृदुशिशिरात् पाणेः, मयि मद्विषये, वल्लभया दयितया, वियोक्ष्यसे =

वियोगं प्राप्स्यसि इति एवरूपा, ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा = ललाटं तपन्ति दहन्ति इति ललाटन्तपानि तानि निष्ठुराणि कर्मकठोराणि च अक्षराणि यस्या सा, भालतापिकठिनवर्णा, लिपिः अक्षरविन्यासनः, कैः प्रकारेण, निःसृता निर्गता = निःसृता।

अपि स्वयूथैरशनिक्षतोपमं

ममाद्य वृत्तान्तमिमं बतोदिता।

मुखानि लोलाक्षि ! दिशामसंशयं

दशापि शून्यानि विलोकयिष्यसि ॥ १३९ ॥

अन्वय- अपि लोलाक्षि । अद्य स्वयूथैः अशनिक्षतोपमं मम इमं वृत्तान्तं उदिता, बत असंशयं दिशां दशापि मुखानि शून्यानि विलोकयिष्यसि ।

शब्दार्थ - लोलाक्षि = चञ्चल नेत्रों वाली। स्वयूथैः = अपने समूह के पक्षियों के द्वारा। वज्र के प्रहार के सदृश। वृत्तान्तम् समाचार की। उदिता कहे जाने पर अशनिक्षतोपमम् । असंशयम् निश्चित रूप से। विलोकयिष्यसि = देखोगी।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में अबला के सबसे बड़े कष्ट प्रियतम वियोग का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- अरे चञ्चल नेत्रों वाली! आज अपने समूह के पक्षियों के द्वारा वज्र के प्रहार के सदृश मेरे इस समाचार को कहे जाने पर खेद है कि तुम निश्चित रूप से दिशाओं के दशों मुखों को शून्य देखोगी।

हिन्दी व्याख्या- प्रिया पत्नी के दुःख का वर्णन करते हुए हंस कहता है कि प्रिय के वियोग में पत्नी की सभी आशाएँ समाप्त हो जाती हैं। जिस प्रकार प्रिय के

आत्यन्तिक वियोग से बढ़कर कोई दूसरा कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार जब मेरे झुण्ड के पक्षी आकर वज्रपात करने वाले मेरे मृत्यु के दुःखद समाचार को तुमसे कहेंगे तो निश्चय ही यह तुम्हें असहा दुःख देगा। तुम्हारे लिए सभी दिशाएँ शून्य होंगी, क्योंकि तुम्हारे लिए कोई सहारा नहीं रह जायेगा।

संस्कृत व्याख्या- अपि च अन्यच्च। अद्य अस्मिन् दिने। स्वयूथैः आत्मसङ्गमैः। हंसैरित्यर्थः। अशनिक्षतोपमम् = वज्रप्रहार सदृशम्। मम प्रियस्य। इमम् तम्। वृत्तान्तम् = उद्गमम्। नरहस्तपतनरूपमिति शेषः। बत् = इत्ति खेदे, असंशयम् निः सन्देहम्। दिशाम् ककुभम्। दश अपि। मुखानि। न्यानि = रिक्तामि। विलोकयिष्यसि द्रक्ष्यसि। मद्वियोगादिति भावः।

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा,

तदस्मि दैवेन हतोऽपि हा हतः,

त्वयाऽपि चित्रांगि ! विपद्यते यदि ।

स्फुटं बतस्ते शिशवः परासवः ॥ १४० ॥

अन्वय- हे चित्रांगि। यदि मम एव शोकेन विदीर्णवक्षसा त्वया विपद्यते, तदा हा दैवेन हतः अपि (पुनः) हतः अस्मि, यतः स्फुटं ते असवः परासवः।

शब्दार्थ- हे चित्रांगि = हे आकर्षक अंगों वाली। मम एव मेरे ही। शोकेन = शोक से। ममैव शोकेन = मेरी ही मृत्यु के शोक से। विदीर्णवक्षसा विदीर्ण हृदय वाली। त्वया तेरे द्वारा। विपद्यते = मरा जाता है। त्वया विपद्यते = तू मर जायेगी। हा हाय। दैवेन दैव के द्वारा। हतः मारा हुआ। पुनः हतः = फिर मरा हुआ। स्फुटम् = स्पष्ट है, निश्चित है। ते तुम्हारे। शिशवः बच्चे। परासवः = प्राण त्याग देंगे।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस के मरने के बाद उसके परिवार की दशा का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- है सुन्दर शरीर वाली प्रिये । यदि मुझ अकेले की मृत्यु के शोक से विदीर्ण हृदय वाली तुम मर जाओगी तो हाय दैव के द्वारा मारा हुआ मैं दुबारा मर जाऊँगा, क्योंकि निश्चय ही तब तुम्हारे वे छोटे बच्चे प्राणहीन हो जायेंगे।

हिन्दी व्याख्या- पति और पत्नी दो शरीर होकर भी एक प्राण होते हैं। पक्षियों में विशेषकर अपने जोड़े के प्रति मनुष्यों की अपेक्षा अधिक लगाव होता है। एक के बिना जोड़े का दूसरा पक्षी रो-रोकर मर जाता है। इस आधार पर हंस को विश्वास है कि उसकी मृत्यु के दुःख से उसकी पत्नी का सीना फट जायेगा और उसकी मृत्यु हो जायेगी। हंस यह आशंका करता है कि उस दशा में दैव के द्वारा मारा हुआ मैं दुबारा मर जाऊँगा। इसका कारण यह है कि माँ के अभाव में बच्चों का जीवन भी नहीं बचेगा। हंस को अपनी मृत्यु की अपेक्षा अपनी पत्नी की मृत्यु का अधिक शोक है।

संस्कृत व्याख्या- हे विचित्रांगि हे रुचिरशरीरे! यदि कदाचित्। मम एव हंसस्य एवं। शोकेन = दुःखेन । विदीर्णवक्षसा = विदलित हृदयया। त्वया = भवत्या हंसिन्या। अपि स्यात् । विपद्यते = प्रियते । तदा = तस्मिन् समये। हा = विषादविषयम्। दैवेन भाग्येन। हतः व्यापादितः। अपि अहम् हंसः। हतः पुनः आश्रयरहिताः। शिशवः = लघु, मारितः। अस्मि भवामि। यतः तस्मात् कारणात्। स्फुटम् = निश्चितम्। ते बालकाः। परासवः = प्राणहीनाः भवेयुः।

तवापि हा हा विरहात्क्षुधाकुलाः,

कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते।

चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैः,

गता क्षणेनास्फुटितेक्षणाः मम। १४१।।

अन्वय- हा हा! तव अपि विरहात् क्षुधाकुलाः (सन्तः) तेषु कुलायकूलेषु विलुण्ठ्य मम बहुभिः मनोरथैः । (सह) चिरेण लब्धा (अपि) ते अस्फुटितेक्षणा (एव) क्षणेन गताः (भविष्यन्ति)।

शब्दार्थ - विरहात् = वियोग से। क्षुधाकुलाः भूख से व्याकुल। कुलाय कूलेषु घोंसलों के किनारों पर। विलुण्ठ्य = लुढ़ककरें। बहुभिः मनोरथैः बहुत-से मनोरथों से, बहुत-सी अभिलाषाओं के साथ। लब्धाः = प्राप्त हुए। ते = वे बच्चे। अस्फुटितेक्षणाः अस्फुटित। ईक्षणा बिना आँखों वाले। क्षणेन एक क्षण में। गताः मर जायेंगे।

प्रसंग-सन्दर्भ- हंस के मरने के बाद उसके बच्चे किस प्रकार मर जायेंगे। श्री हर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत श्लोक में यही वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- हाय हाय। तुम्हारी मृत्यु के कारण तुम्हारे वियोग से एवं भूख के कारण व्याकुल वे बच्चे उन घोंसलों के किनारों पर तड़पकर मर जायेंगे जो मेरे बहुत से मनोरथों के फलस्वरूप बहुत समय बाद प्राप्त हुए हैं। अभी उनकी आँखें भी नहीं खुली हैं।

हिन्दी व्याख्या- हंस और हंसिनी दोनों ही उन बच्चों के भोजन का प्रबन्ध करते थे। अभी बच्चों की आँखें भी नहीं खुली थीं, इसलिए वे स्वयं अपना भोजन प्राप्त नहीं कर सकते। हंस के मरने पर हंसिनी भी मर जायेगी। वह अपने साथी के बिना जीवित नहीं रहेगी, क्योंकि वह पतिव्रता है। माता-पिता दोनों के अभाव में अशक्त बच्चे घोंसले के किनारों पर तड़पते हुए प्राण दे देंगे। इस प्रकार हंस का पूरा परिवार समाप्त हो जायेगा।

संस्कृत व्याख्या- हा-हा = विषादस्य विषयः वर्तते। तव अपि भवत्याः अपि, हंसिन्याः अपि। विरहात् = वियोगात् । क्षुधाकुलाः बुभुक्षया व्याकुलाः। तेषु कुलायुकूलेषु निज नीडाभ्यन्तर भागेषु। विलुण्ठ्य = अंगपरिवर्तनं कृत्वा । मम = हंसस्य। बहुभिः मनोरथैः अनेकाभिः कामनाभिः। चिरेण = अतिदीर्घं समयानन्तरम्। लब्धाः प्राप्ताः। ते बालकाः। अस्फुटितेक्षणा अनुद्घाटित लोचनाः। गताः = मृताः भविष्यन्ति।

सुताः कमाहूय चिराय चुङ्कृतैः-
विधाय कम्प्राणि मुखानि कं प्रति।
कथासु शिष्यध्यमिति प्रमील्य च
सुतस्य सेकाद् युयुधे नृपाश्रुणः ॥ १४२ ॥

अन्वय- सुताः चुङ्कृतैः कं बिराय आहूय के प्रति मुखानि कम्प्राणि विधाय कथासु शिष्यध्वं इति प्रमील्य सः सुतस्य नृपानुणः सेफात् युयुधे।

शब्दार्थ- सुताः = पुत्रणे। चुङ्कृतः - शब्द द्वारा। चिराय देर तक। आहूय = बुलाकर। कम्प्राणि = कम्पन्नपूर्ण। विधाय करके। शिष्यध्वम् शेष रहोगे। प्रमील्य मूर्चिडत होकर। नृपाश्रुणः = राजा के आँसू । युयुधे चेतना प्राप्त की।

प्रसंग-सन्दर्भ- प्रिया को सम्बोधित करने के बाद बच्चों को सम्बोधित करके उनको दुःख का हंस द्वारा वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद हे पुत्रो। चूं-हूँ शब्द द्वारा किसको देर तक बुलाकर किसके प्रति मुखों को कम्पित करके कथाओं में शेष रहोगे। इस प्रकार मूर्च्छित होकर वह हंस बहे हुए राजा के आँसुओं के सेचन से चेतना प्राप्ता कर पाया।

हिन्दी व्याख्या- अपनी प्रिया के दुःख से दुःखी हंस अपने बच्चों को सम्बोधित करते हुए बोला कि तुम हम माता-पिता के न रहने पर चूँ-हूँ शब्दों से किसको भोजनादि के लिए बुलाओगे। तुम्हें चलना-बोलना आदि कौन सिखायेगा ? किसके प्रति तुम अपने मुखों को कम्पित करोगे। भूख प्यास से तड़प-तड़पकर तुम भी मर जाओगे। इतना कहकर वह हंस मूच्छित हो गया। हंस के उपर्युक्त वचनों को सुनकर तथा उसको मूच्छित अवस्था को देखकर राजा का हृदय दया से भर गया और उसकी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वह अश्रुधारा हंस के ऊपर गिरी, जिससे उसने चेतनता प्राप्त की अर्थात् वह होश में आया।

संस्कृत व्याख्या- हंसः शिशूनद्य भूयः परिदेवयते हे सुताः हे पुत्राः। चूङ्कृतैः चूङ्कारैः। "चूँ, चू" इत्यव्यक्तशब्दैः। कम् = कतरं जनम्। चिराय बहुकालपर्यन्तम् आहूय आकार्य। मुखानि = आननानि । कम्प्राणि = चञ्चलानि। विधाय कृत्वा। कथासु शिष्यध्वम् = शब्दमात्रेषु अवशिष्टा भवत। इति एवम् उक्त्वेति शेषः। प्रमील्य मूच्छद्रं प्राप्य। सः हंसः। श्रुतस्य गलितस्य। नृपाऽश्रुणः नलनयनजलस्य । सेकाद् = सेचनाद् । बुबुधे = सज्ञां लेभे ।

इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्-

दीनदयालुतयाऽवनिपालः ।

रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थ

गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय ॥ १४३ ॥

अन्वय- दीनदयालुतया अवनिपालः 'यदर्थं धृतः असि रूपं अदर्शि। अथ यथेच्छं गच्छं इति अभिधाय इत्थं विलपन्तम् अमुम् अमुञ्चत्।'

शब्दार्थ- दीनदयालुतया दोनों के प्रति दयालुता के कारण। अवनिपालः राजा नल। धृत्तः = पकड़े गये। अदर्शि = देख लिया गया। अभिधाय कहकर। विलपन्तम् विलाप करते हुए। अमुञ्चत् -छोड़ दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल की दयालुता का परिचय दिया गया है।

हिन्दी अनुवाद- दोनों के प्रति दयालुता के कारण राजा ने "जिसके लिए पकड़े गये हो, वह रूप देख लिया गया है" ऐसा कहकर इस प्रकार विलाप करते हुए उसको छोड़ दिया।

हिन्दी व्याख्या- हंस द्वारा विभिन्न प्रकार से राजा नल के सामने छोड़ने के लिए विलाप किया गया। अपनी पत्नी और बच्चों की कारुणिक एवं दीन दशा को राजा के समक्ष उपस्थित करने वाले उस हंस पर दयालुता दिखाते हुए राजा नल ने कहा कि तुम्हारे जिस रूप को देखने के लिए मैंने तुमको पकड़ा था, वह रूप अब मैंने देख लिया है, अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ जाना चाहते हो. वहाँ चले जाना। मैंने तुमको अपने बन्धन से मुक्त कर दिया है। इस प्रकार राजा ने हंस को बन्धन मुक्त कर दिया।

संस्कृत व्याख्या- दीनदयालुतया = दीनेषु आर्तेषु दयालुतया कारुणिकतया, अवनिपालः = राजा नलः। "वदर्थम् = यस्मै प्रयोजनाय। धृत्तः गृहीतः असि। (तत्) रूपम् आकृतिः। अदर्शि अवलोकितम्। अपूर्वत्वादिति शेषः। अथ अतः परम् यथेच्छम् स्वेच्छानुस्तरम्। गच्छ"। इति इत्थम् । अभिधाय = उक्त्वा । विलपन्तम् = विलापं कुर्वन्तम्। अमुम् हंसम् । अमुञ्चत मुक्तवान् ।

आनन्दजाश्रुभिरनुस्त्रियमाणमार्गान्

प्राक्छशोकनिर्गलितनेत्रपयः प्रवाहान् ।

चक्रे से चक्क्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन

नीराजनां जनयतां निजबान्धवानाम् ॥ १४४॥

अन्वय- स चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन नीराजनां जनयतां निजबान्धवानां प्राक्शोकनिर्गलितनेत्रपयः प्रचाहान् आनन्दजाश्रुभिः अनुस्त्रियमाणमार्गान् चक्रे ।

शब्दार्थ - चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन चक्र के समान भ्रमण के बहाने से। नीराजनाम् आरती। जनयताम् = करते हुए। निजबान्धवानाम् अपने बन्धुओं के। प्राक्शोकनिर्गलितनेत्रपयः पहले शोक से निकले हुए आँसुओं के। प्रचाहान् प्रवाहों को। आनन्द जाश्रुभिः आनन्द से उत्पन्न आँसुओं से।

अनुस्त्रियमाणमार्गान् = अनुसरण किये गये मार्गों वाला। चक्रे = बना दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस के छूटने की खुशी में अन्य हंसों के हर्ष को व्यक्त किया गया है।

हिन्दी अनुवाद- उसने चक्र के समान भ्रमण के बहाने से आरती करते हुए अपने बन्धुओं के पहले शोक से निकले हुए आँसुओं के प्रवाहों को आनन्द से उत्पन्न आँसुओं से अनुसरण किये गये मार्गों वाला बना दिया।

हिन्दी व्याख्या- जलाशय में स्थित हंस को जब राजा नल ने पकड़ लिया था उस समय उसके साथी मित्र सभी शोक में दुःखी होकर आँसू बहा रहे थे, लेकिन जब राजा नल ने हंस की कारुणिक दशा को सुनकर उसे छोड़ दिया, तब वे हर्षित होकर हंस के प्रति आँसू बहाकर अपनी खुशी व्यक्त कर रहे थे। वे हंस के चारों ओर एकत्रित होकर इस प्रकार बैठे प्रतीत हो रहे थे, मानो उस बन्धनमुक्त हंस की वे आरती उतार रहे हों।

संस्कृत व्याख्या- सः = हंसः। चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन चक्रनिभं मण्डलाकारं चङ्क्रमणं भ्रमणं कुर्वताम्, पयः निजबान्धवानाम् = स्वीयमित्राणाम्। प्राक् शोकेन शुचा निर्गलितान् निःसरितान् नेत्रपयः प्रवाहन् तस्य छलेन व्याजेन। नीराजनाम्

अर्तिक्यम्। जनयताम् = मोचनात् पूर्वम्। शोकनिर्गलितनेत्रपयः प्रवाहान् अश्रुपूरान्
 आनन्दाजाश्रुभिः = हर्षजनयन सलिलैः। अनुस्त्रियमाणमार्गान् =
 अनुगम्यमानाऽध्वनः । चक्रे = कृतवान् ।

श्रीहर्षः कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतम्

श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।

तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृंगारभङ्ग्या महा-

काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः ॥ १४५ ॥

अन्वय- कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः श्रीहीरः मामल्लदेवी च यं
 जितेन्द्रियचयं श्रीहर्ष सुतं सुषुवे. तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृङ्गारभङ्ग्या
 चारुणि नैषधीयचरिते महाकाव्ये अयं आदिः सर्गः गतः।

शब्दार्थ- अलङ्कारहीरः अलङ्काररूपी हीरामणि के समान। यम् = जो।
 जितेन्द्रियम् = जितेन्द्रिय । सुतम् = पुत्र। सुषुवे जन्म दिया। चिन्तनफले चिन्तन
 के फलस्वरूप। शृङ्गार भङ्ग्या = शृङ्गार की रचना से। चारुणि मनोहर। गतः
 समाप्त हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत श्लोक
 परिचयात्मक श्लोक है।

हिन्दी अनुवाद- कविवरों की पंक्ति के मुकुट के अलङ्कार रूपी हीरा मणि के
 समान श्रीहीर तथा मामल्लदेवी ने जिस जितेन्द्रिय श्रीहर्ष पुत्र को जन्म दिया,
 उनके चिन्तामणि मन्त्र के चिन्तन के फलस्वरूप शृङ्गार रस की रचना से सुन्दर
 नैषधीय चरित महाकाव्य में यह प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

हिन्दी व्याख्या- अपने माता-पिता का नाम स्मरण करके अपना परिचय प्रस्तुत करते हुए महाकवि श्रीहर्ष कहते हैं कि उनके पिता का नाम श्रीहीर था जो श्रेष्ठ कवियों के मुकुट की मणि के समान थे अर्थात् कविवरों में अग्रणी थे। उनकी माता का नाम मामल्लदेवी था, जिन्होंने अपने पुत्र श्रीहर्ष को उत्पन्न किया था। महाकवि श्री हर्ष को चिन्तामणि नामक सिद्धमन्त्र प्राप्त था, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने श्रृंगार प्रधान नैषधीय चरितम् महाकाव्य की रचना की। यह उस काव्य का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

संस्कृत व्याख्या - अस्मिन् श्लोके महाकविः सर्गान्ते काव्यवर्णनं सर्गं समाप्तिं च पद्म बन्धेन प्रदर्शयति -कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः = पण्डित श्रेष्ठश्रेणीकिरीट भूषणवज्रमणिः श्रीहीरः = श्रीहीर नामकः, मामल्लदेवी च = मामल्लदेवीनाम्नी च जितेन्द्रियचयम् = वशीकृतहृषीक समूहम्। यं श्रीहर्षम् श्री हर्ष नामक सुतम् = पुत्रम्, सुषुवे = जनयामास, तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले तस्यचिन्तनं उपासना तस्य फले फलभूते। शृङ्गारभङ्गया = आदिरसविच्छित्या। चारुणि मनोहरे। नैषधीयचरिते नैषधीयचरितनामके। नैषधीय नल सम्बन्धिचरितं विद्युते यस्मिन् एवं विधे महाकाव्ये अयम् आदिः प्रथमः। सर्गः गतः समाप्तः॥

सही जोड़ी बनाओ

(क) कर	-	(क) धरती
(ख) सर	-	(ख) लक्ष्मी
(ग) वसुधा	-	(ग) तालाब
(घ) नभ	-	(घ) हाथ
(ङ) श्रिया	-	(ङ) आकाश

10.4 सार संक्षेप

नैषधीय चरितम् की कथा को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत कर संस्कृत से हिन्दी व्याख्या का समन्वय किया गया है। व्याख्या के क्रम में अन्वय, संस्कृत

व्याख्या के साथ हिन्दी व्याख्या द्वारा व्याख्यात्मक शैली को इसकी में समन्वित किया गया है। नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग में 126 से 145 तक श्लोक तक व्याख्या के अंतर्गत व्याकरण, भावार्थ आदि को समाहित कर प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है। व्याख्यात्मक शैली का अध्ययन करने से श्लोक आदि को भावार्थों के माध्यम से अध्याय में संकलित किया गया है।

10.5 मुख्य शब्द

1. खग - पक्षी
 2. कलहंस - राजहंस
 3. प्रविहाय - छोड़कर
 4. मुनेः - मुनि के
 5. जननी - माता
-

10.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1. (घ), 2. (ग), 3. (क), 4. (ङ), 5. (ख)
-

10.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम्- श्रीहर्ष, , कृष्णदास अकादमी , वाराणसी, १९८५।
 2. आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीय चरितम्- श्रीहर्ष, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २००८।
 3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१७
 4. डॉ शोभा भरद्वाज, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, आगरा, २०२१ ।
-

10.8 अभ्यास प्रश्न

1. प्रकृति की संवेदना का वर्णन कीजिये ।
2. हंस की सौंदर्य का विवेचन कीजिये ।
3. सर्ग में विवेचित कर्म की व्याख्या कीजिये ।
- 4 निम्न श्लोक की व्याख्या कीजिये ।

आनन्दजाश्रुभिरनुस्त्रियमाणमार्गान्
 प्राक्छशोकनिर्गलितनेत्रपयः प्रवाहान् ।
 चक्रे से चक्कनिभचङ्क्रमणच्छलेन
 नीराजनां जनयतां निजाबान्ध ॥

इकाई 11

“माघे सन्ति त्रयो गुणा” विवेचना

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 माघे सन्ति त्रयो गुणा” विवेचना
- 11.4 सार - संक्षेप
- 11.5 मुख्य शब्द
- 11.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

महाकवि माघ के महाकाव्य शिशुपाल वध के अध्ययन के साथ ही वहां माघ के जीवन का **विशेष** परिचय उनके गुणों, काव्य तत्वों के प्रयोग आदि के द्वारा संस्कृत साहित्य में उनके स्थान का परिचय प्राप्त किया जाता जा सकता है। प्रस्तुति इकाई में महाकवि मार्ग के विषय में प्रचलित उनकी **विशेषता** माघ की संचित प्रयोग गुणों आदि के आधार पर उनकी काव्य **विशेषताओं** का विवेचन किया गया है। विगत इकाइयों में महाकवि माघ के जन्म, शिक्षा आदि की परिचय के प्रसाद उनकी **विशेष** युक्ति द्वारा प्रशंसा का अध्ययन किया जाएगा इससे आगे की इकाइयों में शिशुपाल वध के प्रथम सर्ग का संपूर्ण अध्ययन किया जाएगा ।

11.2 उद्देश्य

1. महाकवि माघ के संस्कृत साहित्य में स्थान का ज्ञान प्राप्त किया जा सके।
2. काव्य तत्वों के विषय में माघ की **विशेषताओं** का अध्ययन किया जा सके।
3. महाकवि माघ के महाकाव्य में इन **विशेषताओं** की समीक्षा की जा सके ।
4. अन्य विद्वानों से माघ की साहित्यिक रूप से तुलना की जा सके।

11.3 माघे सन्ति त्रयो गुणा" विवेचना

महाकवि माघ अपने पूर्ववर्ती कवियों के सच्चे उत्तराधिकारी हैं, सभी कवियों की **विशेषताओं** को ग्रहण कर उन्हें अनुपम रूप में प्रस्तुत किया है। वे कवि

साहित्य में जहाँ अपनी इस एक-एक विशेषता के लिये प्रसिद्ध हुए वहीं माघ में इन सभी विशेषताओं का समावेश देखने को मिलता है। भट्टि के व्याकरणशास्त्र के काव्य में प्रयोग करने की परम्परा को बढ़ाने वाले वे अकेले उनके प्रतिनिधि हैं, भट्टि जहाँ केवल वैयाकरण ही प्रतीत होते हैं, वे स्वयं ही कहते हैं कि काव्य के माध्यम से वे व्याकरण की शिक्षा दे रहे हैं वहीं माघ कवि हृदय हैं, उनका काव्य में प्रयुक्त व्याकरण रसभङ्ग नहीं करता। रस की गहरी समझ रसानुकूलता, भावाभिव्यंजना, अनुपम-कल्पनाशक्ति और अलंकारों से वे कालिदास, भारवि आदि कवियों की कोटि में जा बैठते हैं। यहाँ भी वे अपने तेज से स्वयं दैदीप्यमान नक्षत्र हैं, कालिदास अपनी उपमाओं के लिये विख्यात हैं, तो भारवि अर्थ गौरव के लिये तथा दण्डी पदलालित्य के लिये, परन्तु माघ में आश्चर्यजनक रूप से ये तीनों गुण देखने को मिलते हैं-

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

उपमा नैपुण्य - महाकवि का उपमा विधान अनुपम है, उनके उपमानों की बहुत बड़ी श्रृंखला हैं, वे कहीं भी किसी भी स्थान से आ सकते हैं, चाहे कोई भी शास्त्र हो, लोक हो, प्रकृति हो उनके कुछ भी अस्पृश्य नहीं हैं। इसीलिये वे उपमायें आश्चर्यचकित करती हैं कि इतने साधारण विषय की उपमा ऐसी सुन्दर हो सकती है, स्वर्ग से उतरते नारद को देखकर वे उपमाओं की झड़ी लगा देते हैं- वे जल से भरित मेघों के समान अच्छी तरह पीसे गये कपूर के चूर्ण के समान श्वेत वर्ण वाले, क्षणभर के लिये ताण्डव नृत्य के अवसर पर गजेन्द्र चर्म को धारण करने वाले तथा भस्म से श्वेतवर्ण वाले शिव जैसे प्रतीत हुए तो कहीं कमलों के किञ्चलों की कान्ति के समान कान्तिशालिनी जटाओं को धारण करते हुए, शरत्कालीन चन्द्रमा की किरणों के समान कान्ति वाले, अतएव पक जाने से पिंगलवर्णवाली तुषार भूमि में उत्पन्न लतासमूहों को धारण करने वाले हिमालय पर्वत से प्रतीत

हुए, कहीं वे मूँज की मेखला से कृष्णमृगचर्म को बाँधे, स्वर्ण मेखला से अपने नीलाम्बर को बाँधे बलराम जैसे प्रतीत हुए, तो कहीं वे तुषार के समान धवलवर्ण वाले शरदृतु में बिजलियों के समूह से युक्त उन्नत मेघ के समान प्रतीत हुए, तो कभी वे ऐरावत जैसे प्रतीत हुए। निकलते सूर्य के समान उत्कृष्ट तपस्वी नारदजी श्रीकृष्ण के समक्ष पृथिवी पर जब तक न उतर पाये थे, तब तक ही श्रीकृष्ण अपने उच्चासन से वेग से उसी प्रकार उठ खड़े हुए जैसे पर्वतशिखर से मेघ उठता है-

पतत्पतङ्गप्रतिगस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत ।

गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः 111/12

श्वेत वर्ण के नारद और श्यामवर्ण के कृष्ण मिलते समय ऐसे प्रतीत हुए जैसे हिमालय और आञ्जस पर्वत एक दूसरे मिल रहे हैं।

श्रीकृष्ण की वडवाग्नि से घिरे समुद्र से तुलना उनकी अनुपम कल्पना है, तपाये गये स्वर्ण के समान देदीप्यमान पीताम्बर धारण किये हुए, पूर्णचन्द्र के कलङ्ग की कान्ति के समान कान्ति वाले श्रीकृष्ण वाडवाग्नि की ज्वालाओं से घिरे हुए समुद्र की भाँति प्रतीत हुए।

शास्त्रीय उपमाओं के लिये उनका द्वितीयसर्ग अत्यन्त प्रसिद्ध है- सहायक, साधनोपाय, देशकाल का विभाजन, विपत्ति का प्रतिकार, कार्यसिद्धि ये राजाओं के लिये पाँच ही मन्त्र हैं, जैसे बौद्धों के स्कन्धपञ्चक के अतिरिक्त कोई आत्मा नहीं है -

सर्वकार्य शरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम् ।

सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम् ॥2/18

गुप्तचरों का महत्व बताते हुए व्याकरणशास्त्र में ग्रन्थ महाभाष्य के पस्पशाह्निक को ही उद्धृत कर देते हैं जैसे उसके बिना व्याकरण सफल नहीं होता वैसे राजनीति भी गुप्तचरों के बिना सफल नहीं होती-

अनुत्सूत्रपदन्यासा सवृत्तिः सन्निबन्धना ।

शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा 112/110

रैवतक पर्वत के वर्णन के प्रसङ्ग में उनकी अनेक उपमायें दर्शनाय है। रैवतक के विशाल जलाशय वाल्मीकि की वाणी के समान हैं, वहीं युद्ध का मैदान विधाता की चित्रशाला के समान है, तो शिशुपाल की सेना अनेक व्यूहरचनाओं से वैसी ही दुर्गम हो गयी जैसे कि सर्वतोभद्र, 'गोमूत्र बन्ध' आदि से महाकाव्य दुर्गम हो जाता है।

विषयं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः ।

श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदद्बलम् ॥19/41

कहीं ये उपमा वस्तुतः उनके महाकाव्य के लिये भी सार्थक प्रतीत होती है। श्रीकृष्ण की सेना का विस्तार हजार शाखाओं वाले सामवेद के समान है।

ऐसी अनेकों सुन्दर उपमायें उनके महाकाव्य में सर्वत्र बिखरी पड़ी हैं। काव्य में ऐसे सुन्दर प्रयोग के कारण के वस्तुतः स्वयं माघ की उपमा किसी से नहीं दी जा सकती, वहाँ वे अतुलनीय हैं, केवल अनन्वय अलंकार ही वहाँ दिखाई देता है कि माघ तो माघ ही है।

अर्थगौरव - काव्य रचना करने में माघ ने भारवि के मार्ग का अनुकरण किया, इसीलिये उनके सभी गुण माघ के काव्य में प्रतिबिम्बित होते हैं। भारवि अपने अर्थ गौरव के लिये प्रसिद्ध हैं, माघ के काव्य में भी अर्थ का गौरव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वे स्वयं अर्थ के महत्व को जानते हैं इसीलिये श्रीकृष्ण के वचन की प्रशंसा करते हुए बलराम कहते हैं कि विस्तृत भाषणों से भी इस सारयुक्त कथन की तुलना नहीं की जा सकती-

नैतल्लघ्वपि भूयस्या वचो वाचातिशय्यते ।

इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम् ।12/23

वहीं बलराम का कथन श्रीकृष्ण के संक्षिप्त वचन के लिये भाष्यस्वरूप ही है-

संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्थर्थगरीयसः ।

सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे ॥2/24

उनके काव्य के प्रयुक्त विविध सूक्तियाँ उनके अर्थ गौरव का पर्याप्त प्रमाण हैं-

गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ॥1/14

ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः ॥1/38

सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥

अर्थगौरव के विषय में निश्चय ही वे भारवि के सच्चे अनुवर्ती हैं। पद लालित्य - महाकवि काव्य में मधुरता के पक्षपाती हैं, वे काव्य में चुन-चुनकर ललित पदों का प्रयोग करते हैं, उनका पद लालित्य दण्डी अथवा श्री हर्ष की ही कोटि का है कहीं-कहीं वे उनका भी अतिक्रमण कर जाते हैं, गौड़ी रीति में ऐसा पद लालित्य कम ही देखा जाता है परन्तु यही उनकी विशेषता है, पदलालित्य का उनका यह श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है-

मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धि समेधितमेधया ।

मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥16/20

वदन सौरभलोभ परिभ्रमभ्रमरसम्भ्रमत्सम्भृतशोभया ।

चलितया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया ॥ 6/14

निश्चय ही नायिका की मेखला की झंकार अर्थ के साथ शब्दों में भी दिखाई देती है। उनकी प्रकृति इस पद्य में उद्दीपक के रूप में दिखाई देती है, तो शब्द सहृदय को काव्य की ओर आकर्षित करने के लिये उद्दीपक है-

नवकदम्बरजोऽरुणिताम्बरैरधिपुरन्धि शिलीन्धसुगन्धिभिः ।

मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे ॥16/32

इसी प्रसंग में नवपलाशपलाशवनं (6/2) बहुत प्रसिद्ध उदाहरण है। सम्पूर्ण षष्ठ सर्ग यमक के सुन्दर प्रयोग के लिये प्रसिद्ध है। चतुर्थ सर्ग में भी यमक के अनेक सुन्दर प्रयोग महाकवि ने किये हैं। युद्ध वर्णन के प्रसंग में महाकवि ने अनुप्रास का चमत्कार दिखाया है। द्वयक्षरानुप्रास के इस पद का लालित्य भी अनुपम है-

शूरः शौरिरशिशिरैराशाऽऽशैराशु राशिशः ।

शरारुः श्रीशरीरेशः शूशुरेऽशिशिरः शरैः 1119/108

इसी प्रकार के अनेक अर्थ का अनुकरण करने वाले लालित्य से आप्लावित पद्य माघ के गौरव को सिद्ध करते हैं। माघ के काव्य में ये तीनों गुण एक साथ पाये जाते हैं, इसलिये माघ सच्चे पण्डित कवि हैं, इसमें कोई संशय नहीं, उनके काव्य का प्रत्येक पद्य इसमें प्रमाण है

11.4 सार - संक्षेप

महाकवि माघ की माघ के गुणों के द्वारा उनकी विशेषताओं का अध्ययन कर अन्य काव्य तत्वों के विषय में उनकी विशिष्ट गुणों का समन्वय किया गया है। इस अध्याय के माध्यम से महाकवि माघ तथा शिशुपाल वध में इन विशेषताओं की समीक्षा की जा सकेगी।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्न-

1. निम्न गुणों से सम्बद्ध महाकवियों के नाम लिखिए
2. अर्थगौरव-.....
3. उपमा अलंकार के प्रयोग
4. पदलालित्य

11.5 मुख्य शब्द

- 1.वैयाकरण -व्याकरण के ज्ञाता
 - 2.रैवतक-पर्वत
 - 3.महाभाष्य -व्याकरण का प्रमुख ग्रंथ
 - 4.उपजाति- छंद का नाम
 - 5.शास्त्रीय -शास्त्रसंबद्ध
-

11.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

- 1.माघ तथा मारवि
 - 2.माघ तथा कालिदास
 - 3.माघ
-

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिशुपालवध-महाकवि माघ, व्याख्या-महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथ- पंडित दुर्गा प्रसादेन- महामहोपाध्याय पंडित शिवदत्तेन, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, दशम संस्करण
 2. पंडित जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, शिशुपालवध- महाकवि माघ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७२
 3. श्री रामजी लाल शर्मा, शिशुपालवध- महाकवि माघ, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, १९९०
 4. श्री अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री, शिशुपालवधरहस्यम्, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, १९९९
 5. डॉ. श्रद्धा सिंह, शिशुपालवध-महाकवि माघ, व्याख्या- जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, २०१२
-

11.8 अभ्यास प्रश्न

1. माघ तथा कालिदास के उपमा प्रयोग की समीक्षा कीजिये ।
2. माघ के तीनो गुणों के आधार पर समीक्षा कीजिये ।
3. अर्थगौरव के आधार पर माघ की रचना की समीक्षा कीजिये ।
4. शिशुपालवध में उपमा प्रयोग की समीक्षा कीजिये ।

इकाई 12

शिशुपालवध के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 शिशुपाल वध के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

12.4 सार - संक्षेप

12.5 मुख्य शब्द

12.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

12.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.8 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत सर्ग में शिशुपाल वध महाकाव्य के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर उनका परिचय दिया गया है। विगत इकाइयों में महाकाव्य के प्रतिपाद्य विषय कथावस्तु का अध्ययन करने के पश्चात पात्रों के माध्यम से वहां काव्य को प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्य के पात्र के चरित्र की विशेषताओं के आधार पर महाकाव्य में उनके स्थान को सुनिश्चित किया जा सकता है। अतः पात्रों के परिचय के पश्चात महाकाव्य के श्लोक के माध्यम से इस रचना को पूर्णता प्रस्तुत किया जाएगा।

12.2 उद्देश्य

1. श्री कृष्ण के आदर्श चरित्र से परिचित होंगे।
2. युधिष्ठिर के चारित्रिक विशेषताओं का ज्ञान हो सकेगा।
3. पात्रों के द्वारा कर्तव्य निष्ठा आदर्श व्यक्तित्व जैसे गुणों का विवेचन कर सकें।
4. जीवन में विद्यमान नकारात्मक भावनाओं को पात्रों के माध्यम से समझ सकें।

12.3 शिशुपाल वध: प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

शिशुपाल वध: प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण 'शिशुपाल वध' महाकवि माघ द्वारा रचित एक संस्कृत महाकाव्य है, जो भगवान कृष्ण द्वारा चेदि नरेश शिशुपाल के वध की कथा पर आधारित है। इस महाकाव्य में कई प्रमुख पात्र हैं, जिनके चरित्र-चित्रण से तत्कालीन समाज, धर्म और राजनीति की गहरी समझ मिलती है। यहाँ हम प्रमुख पात्रों का विस्तृत चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कर रहे हैं:

1. भगवान कृष्ण

भगवान कृष्ण इस महाकाव्य के केंद्रीय नायक हैं और उनका चरित्र-चित्रण अत्यंत बहुआयामी है। वे केवल एक योद्धा नहीं, बल्कि एक नीतिज्ञ, धर्मरक्षक और आदर्श पुरुष के रूप में चित्रित किए गए हैं।

* **दिव्य स्वरूप और अलौकिक शक्ति:** कृष्ण को भगवान विष्णु का अवतार बताया गया है। उनके प्रत्येक कार्य में दैवीय शक्ति का आभास होता है। वे अपनी अलौकिक शक्तियों से देवताओं और मनुष्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करते हैं। शिशुपाल के वध के समय उनकी शक्ति अपने चरम पर दिखाई देती है, जब वे सुदर्शन चक्र का प्रयोग करते हैं।

* **नीतिज्ञ और दूरदर्शी:** कृष्ण केवल बल प्रयोग में विश्वास नहीं रखते, बल्कि वे कूटनीति और दूरदर्शिता के प्रतीक हैं। शिशुपाल को बार-बार चेतावनी देना, युद्ध से बचने का प्रयास करना और अंततः धर्म की रक्षा के लिए वध करना,

उनकी नीतिज्ञता को दर्शाता है। वे जानते हैं कि धर्म की स्थापना के लिए कब साम, दाम, दंड और भेद का प्रयोग करना है।

* **शांत और गंभीर:** कृष्ण का स्वभाव शांत और गंभीर है। शिशुपाल द्वारा बार-बार अपमानित किए जाने पर भी वे धैर्य बनाए रखते हैं और क्रोध को नियंत्रित करते हैं। यह उनकी महानता और आत्म-नियंत्रण को दर्शाता है।

* **भक्तवत्सल और शरणागत रक्षक:** कृष्ण अपने भक्तों के प्रति अत्यंत दयालु हैं। वे हमेशा धर्म का पालन करने वालों की रक्षा करते हैं। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उनका आदर स्वीकार करना और पांडवों के प्रति उनका स्नेह इस बात का प्रमाण है।

* **धार्मिक और आदर्शवादी:** कृष्ण धर्म के रक्षक और सत्य के प्रतीक हैं। वे अधर्म का नाश कर धर्म की स्थापना के लिए अवतार लेते हैं। शिशुपाल का वध व्यक्तिगत प्रतिशोध नहीं, बल्कि धर्म और न्याय की स्थापना के लिए किया गया कार्य था। उनका चरित्र एक आदर्श शासक और धर्मरक्षक का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

2. शिशुपाल

शिशुपाल इस महाकाव्य का प्रमुख प्रतिनायक है। उसका चरित्र दर्प, अहंकार और अन्याय का प्रतीक है।

* **अहंकारी और उद्धंड:** शिशुपाल अत्यंत अहंकारी और उद्धंड स्वभाव का व्यक्ति है। वह स्वयं को सबसे श्रेष्ठ मानता है और किसी का भी अनादर करने से नहीं हिचकता। राजसूय यज्ञ में कृष्ण का अपमान करना और भरी सभा में उन्हें अपशब्द कहना उसके अहंकार का चरम उदाहरण है।

* **क्रूर और अधर्मी:** शिशुपाल अधर्मी और क्रूर शासक है। वह अपनी प्रजा पर अत्याचार करता है और धर्म के नियमों का उल्लंघन करता है। उसके मन में

दूसरों के प्रति कोई सम्मान नहीं है, विशेषकर उन लोगों के प्रति जो उससे श्रेष्ठ हैं।

* **द्वेषपूर्ण और ईर्ष्यालु:** शिशुपाल कृष्ण से अत्यधिक द्वेष और ईर्ष्या रखता है। कृष्ण की बढ़ती प्रसिद्धि और युधिष्ठिर द्वारा उन्हें दिए गए सम्मान को वह सहन नहीं कर पाता। उसकी ईर्ष्या ही उसे कृष्ण के प्रति कटु वचन बोलने और अंततः उनके द्वारा वध किए जाने का कारण बनती है।

* **बड़बोला और अविवेकी:** शिशुपाल बिना सोचे-समझे बोलता है और उसके वचनों में कोई संयम नहीं होता। वह अपनी मर्यादा भूलकर अपशब्दों का प्रयोग करता है। उसका अविवेकी स्वभाव ही उसके पतन का कारण बनता है। वह कृष्ण के धैर्य की परीक्षा लेता रहता है, जब तक कि वह अपनी 100 गालियाँ पूरी नहीं कर लेता।

* **शक्ति का दुरुपयोग करने वाला:** शिशुपाल अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है। वह अपने बल का प्रयोग अन्याय और अधर्म के लिए करता है, जिसके कारण उसका अंत निश्चित हो जाता है। उसका चरित्र यह दर्शाता है कि अहंकार और अधर्म अंततः विनाश की ओर ले जाते हैं।

3. बलराम

बलराम भगवान कृष्ण के बड़े भाई हैं और उनका चरित्र-चित्रण कृष्ण के पूरक के रूप में किया गया है।

* **शक्तिशाली और पराक्रमी:** बलराम अपनी शारीरिक शक्ति और पराक्रम के लिए प्रसिद्ध हैं। वे गदा युद्ध में निपुण हैं और उनका हल-मूसल उनका प्रमुख शस्त्र है। वे कृष्ण के साथ युद्ध में हमेशा उनके सहायक के रूप में खड़े रहते हैं।

* **क्रोधी स्वभाव:** बलराम स्वभाव से कुछ क्रोधी हैं। जब शिशुपाल कृष्ण का अपमान करता है, तो बलराम अत्यंत क्रोधित हो जाते हैं और तुरंत युद्ध करने को तैयार हो जाते हैं। कृष्ण ही उन्हें शांत करते हैं और धैर्य रखने की सलाह देते हैं।

* **भाई के प्रति निष्ठा:** बलराम कृष्ण के प्रति अत्यंत निष्ठावान हैं। वे हमेशा अपने छोटे भाई के साथ खड़े रहते हैं और उनकी रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। उनका प्रेम और समर्थन कृष्ण के लिए एक बड़ी शक्ति है।

* **सीधा-सादा और सरल:** बलराम का स्वभाव कृष्ण की तुलना में अधिक सीधा-सादा और सरल है। वे कूटनीति से अधिक प्रत्यक्ष कार्रवाई में विश्वास रखते हैं।

* **न्यायप्रिय:** बलराम भी धर्म और न्याय के पक्षधर हैं। शिशुपाल के अधर्मी व्यवहार को वे सहन नहीं कर पाते और उसे दंडित करने के लिए आतुर रहते हैं।

4. युधिष्ठिर

युधिष्ठिर पांडवों में सबसे बड़े हैं और राजसूय यज्ञ के आयोजक हैं। उनका चरित्र-चित्रण धर्मपरायणता और न्यायप्रियता का प्रतीक है।

* **धर्मराज:** युधिष्ठिर को 'धर्मराज' के नाम से जाना जाता है। वे धर्म के सिद्धांतों का सख्ती से पालन करते हैं और हमेशा सत्य के मार्ग पर चलते हैं। राजसूय यज्ञ का आयोजन भी उनकी धार्मिकता का ही एक अंग है।

* **न्यायप्रिय और निष्पक्ष:** युधिष्ठिर न्यायप्रिय और निष्पक्ष शासक हैं। वे सभी के प्रति समान व्यवहार रखते हैं और किसी के साथ अन्याय नहीं होने देते। कृष्ण को अग्रपूजा का सम्मान देना उनकी निष्पक्षता और विवेक को दर्शाता है।

* **शांत और गंभीर:** युधिष्ठिर का स्वभाव शांत और गंभीर है। वे विषम परिस्थितियों में भी धैर्य बनाए रखते हैं और सोच-समझकर निर्णय लेते हैं।

* **अतिथि-सत्कार में कुशल:** युधिष्ठिर अतिथि-सत्कार में अत्यंत कुशल हैं। वे राजसूय यज्ञ में आए सभी अतिथियों का सम्मान करते हैं और उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं।

* **दूरदर्शी:** युधिष्ठिर भी दूरदर्शी हैं और वे जानते हैं कि कृष्ण ही सबसे योग्य व्यक्ति हैं जिन्हें अग्रपूजा का सम्मान दिया जाना चाहिए। वे कृष्ण की महत्ता को समझते हैं।

5. नारद मुनि

नारद मुनि देवर्षि हैं और उनका चरित्र-चित्रण इस महाकाव्य में एक मार्गदर्शक और सूचनावाहक के रूप में किया गया है।

* **देवर्षि और ज्ञानी:** नारद मुनि तीनों लोकों में विचरण करने वाले देवर्षि हैं। वे ज्ञानी हैं और उन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान है। वे कृष्ण को शिशुपाल के बढ़ते हुए अत्याचारों के बारे में जानकारी देते हैं और उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं।

* **शांतिदूत और उपदेशक:** नारद मुनि शांति के दूत भी हैं। वे देवताओं और मनुष्यों के बीच संवाद स्थापित करते हैं। वे कृष्ण को धर्म की रक्षा के लिए प्रेरित करते हैं और उन्हें सही मार्ग दिखाते हैं।

* **प्रेरक और मार्गदर्शक:** नारद मुनि कृष्ण को शिशुपाल का वध करने के लिए प्रेरित करते हैं, क्योंकि शिशुपाल के अत्याचार बढ़ गए हैं और उसका वध धर्म की स्थापना के लिए आवश्यक हो गया है। वे कृष्ण को उनके अवतार के उद्देश्य की याद दिलाते हैं।

* **संगीतज्ञ:** नारद मुनि को संगीत का भी ज्ञाता माना जाता है। वे अपनी वीणा के साथ यात्रा करते हैं।

इन प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण से 'शिशुपाल वध' महाकाव्य में गहरे नैतिक, धार्मिक और सामाजिक संदेश निहित हैं। यह काव्य धर्म की विजय और अधर्म के नाश के सिद्धांत को प्रतिपादित करता है।

स्व प्रगति परिक्षण प्रश्न -

1. 'शिशुपाल वध' के रचयिता कौन हैं?
 - a) कालिदास
 - b) माघ
 - c) भवभूति
 - d) बाणभट्ट
2. 'शिशुपाल वध' महाकाव्य का मुख्य नायक कौन है?
 - a) अर्जुन
 - b) शिशुपाल
 - c) श्रीकृष्ण
 - d) भीम
3. शिशुपाल किस राज्य का राजा था?
 - a) हस्तिनापुर
 - b) विदिशा
 - c) चेदि
 - d) काशी
4. शिशुपाल का वध श्रीकृष्ण ने कब किया था?
 - a) रुक्मिणी स्वयंवर में
 - b) राजसूय यज्ञ में
 - c) महाभारत युद्ध में
 - d) वनवास के समय

5. शिशुपाल श्रीकृष्ण का कौन था?

- a) मित्र
- b) गुरु
- c) चचेरा भाई
- d) सेवक

6. शिशुपाल को श्रीकृष्ण ने कितनी गालियाँ सहने के बाद मारा?

- a) 50
- b) 75
- c) 100
- d) 108

7. 'शिशुपाल वध' महाकाव्य किस शैली में रचा गया है?

- a) खंडकाव्य
- b) नाटक
- c) महाकाव्य (Epic)
- d) गीतिकाव्य

8. 'शिशुपाल वध' में प्रमुख रूप से किस रस की प्रधानता है?

- a) श्रृंगार रस
- b) वीर रस
- c) हास्य रस

शिशुपाल वध में वर्णित पात्रों के माध्यम से सामान्य जीवन में व्यक्तित्व उनमें विद्यमान गुणों आदि की समीक्षा किए जाने का समन्वय किया गया है शिशुपाल वध में पात्र अपने गुणों के आधार पर कार्यों का संपादन करते हैं तथा उनसे विभिन्न शिक्षाओं का ग्रहण किया जा सकता है। इन सभी पात्रों के संक्षिप्त परिचय तथा उनकी प्राप्त शिक्षा को समन्वित किया गया है।

12.5 मुख्य शब्द

- 1.योद्धा- युद्ध में पारंगत
- 2.सुदर्शन चक्र- भगवान विष्णु का शास्त्र
- 3.भक्त वत्सल- भक्तों के प्रति कृपण
- 4.अहंकारी -अभिमानि
- 5.द्वेष -जलन

12.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

- 1.उत्तर: b) माघ
- 2.उत्तर: c) श्रीकृष्ण
- 3.उत्तर: c) चेदि
- 4.उत्तर: b) राजसूय यज्ञ में
- 5.उत्तर: c) चचेरा भाई
- 6.उत्तर: c) 100
- 7.उत्तर: c) महाकाव्य (Epic)
- 8.उत्तर: b) वीर रस

12.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिशुपालवध-महाकवि माघ, व्याख्या-महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथ-
पंडित दुर्गा प्रसादेन- महामहोपाध्याय पंडित शिवदत्तेन, निर्णयसागर प्रेस,
मुंबई, दशम संस्करण
2. पंडित जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, शिशुपालवध- महाकवि माघ, मोतीलाल
बनारसीदास, दिल्ली, १९७२
3. श्री रामजी लाल शर्मा, शिशुपालवध- महाकवि माघ, चौखम्भा सुरभारती
प्रकाशन वाराणसी, १९९०
4. श्री अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री, शिशुपालवधरहस्यम्, चौखम्भा सुरभारती
प्रकाशन, १९९९
5. डॉ. श्रद्धा सिंह, शिशुपालवध-महाकवि माघ, व्याख्या- जगदीश संस्कृत
पुस्तकालय, जयपुर, २०१२

12.8 अभ्यास के प्रश्न

1. शिशुपाल वध में वर्णित विभिन्न पात्रों के नाम लिखिए।
2. शिशुपाल के पात्रों का विवेचन कीजिए ।
3. श्री कृष्ण के गुणों का वर्णन कीजिए ।
4. शिशुपाल वध के किन्हीं दो पात्रों के गुणों के आधार पर संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

इकाई -13

शिशुपालवध प्रथम सर्ग के 36 से 55 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 शिशुपालवध के प्रथम सर्ग के 36 से 55 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

13.4 सार संक्षेप -

13.5 मुख्य शब्द

13.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

13.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.8 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत सर्ग में शिशुपाल वध में प्रथम सर्ग में वर्णित श्लोकों में से कतिपय श्लोकों की क्रम से व्याख्या की गई है। विगत इकाइयों में शिशुपाल वध के परिचय तथा उनके प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात श्लोक के माध्यम से इस महाकाव्य का अध्ययन किया गया है। संस्कृत भाषा में श्लोक का विशिष्ट महत्व है तथा महाकाव्य के अध्ययन में उनके परिचय आदि के साथ श्लोक का समन्वय कर इसे पूर्ण करने का प्रयास किया गया है।

13.2 उद्देश्य

1. प्रथम सर्ग की कथावस्तु को श्लोक के माध्यम से समझ सके।
 2. श्लोकों के साथ व्याकरण तथा व्याख्या की शैली से परिचित हो सके।
 3. महाकाव्य की कथा का क्रमबद्ध श्लोक के साथ संबंध अध्ययन जान सके।
 4. सर्ग की विशेषताओं को श्लोक का अध्ययन कर समझ सके।
-

13.3 शिशुपलवध प्रथम सर्ग के 36 से 55 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

लघुकरिष्यन्नतिभारभङ्गुरामम् किल त्वं त्रिदिवादवातरः ।

उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया ॥36 ॥

अन्वय - त्वम् अतिभारभङ्गुराम् अमूं लघूकरिष्यन् त्रिदिवात् अवतारः किल । साम्प्रतम् उदूढलोकत्रितयेन त्वया धरित्री गुरुः क्रियतेतराम् ।

सर्वङ्कषा - लघुकरिष्यन्नति । त्वमतिभारेणोर्जेन स्वरूपेण भङ्गुरां-स्वयं भज्य-मानाम् । 'भञ्जभासभिदो घुरच्' । 'भङ्गुरः कर्मकर्तरि' इति वामनः । अमूं भुवमित्यर्थः । लघुकरिष्यन्-निर्भारां करिष्यन् । किल । 'कृभ्वस्ति' इत्यादिनाभूततद्भावे च्विः च्यौ च' इति दीर्घः । तृतीया द्व्यौः त्रिदिवः स्वर्गस्तस्मात् । 'घञर्थे कवि धानम्' । वृत्तिविषये सङ्ख्याशब्दस्य पूरणार्थत्वं त्रिभागादिवत् । अवतारः अवतीर्णोऽसि । साम्प्रतं सम्प्रति । उदूढलोकत्रितयेन । 'कुक्षाविति' शेषः । त्वया धरित्री गुरुः पूज्या भारवती च क्रियतेतराम्-अतिशयेन क्रियते, तिडश्च इति तरप् किमेत्तिडव्ययघात्-इत्यादिना आमुप्रत्यय । लघुकर्त्ता गुरुकर्त्तेति विरोधाभासोऽलङ्कारः । आभःसत्वे विरोधस्य विरोधाभास उच्यते, इति लक्षणात् ।

शब्दार्थः त्वम्-तुम, अतिभारभङ्गराम् अत्यधिक भार से टूटती हुई. अमूं इस पृथ्वी को, लघुकरिष्यन् हल्का करने के लिये, त्रिदिवात् स्वर्ग से. अवतारः अवतीर्ण हुए हो, साम्प्रतं इस समय त्वया लोकत्रितयेन तीनों लोकों प्रथमो सर्गः

को धारण करने वाले तुम्हारे द्वारा, धरित्री = पृथिवी, गुरुः पूज्या (भारी), क्रियते = की जा रही है। तराम् = अत्यधिक।

अनुवाद - तुम अत्यधिक भार से टूटती हुई इस पृथिवी को हल्का करने के लिये स्वर्ग से अवतीर्ण हुए हो, इस समय तीनों लोकों को धारण करने वाले तुम्हारे द्वारा पृथिवी अत्यधिक पूज्या (भारी) बनाई जा रही है।

संस्कृत व्याख्या: - त्वम् = भगवान् श्रीकृष्णः, अतिभारमङ्गराम् = भाराधिक्येन भज्यमानाम्, अमूम् = पृथिवीम्, लघूकरिष्यन् भाररहितां विधास्यन् किल = निश्चयेन, त्रिदिवात् = स्वर्गात्, अवतारः अवतृतवान् । किन्तु, साम्प्रतम् इदानीम्, उर्दूलोक-त्रियेन = धारितभुवनत्रयभारेण, त्वया भवता श्रीकृष्णेन, धरित्री पृथिवी, गुरुः = भारवती पूज्या च, क्रियते, तराम् अतिशयेन । भवान् श्रीकृष्णः भाराधिक्येन भज्यमानाम् इमां पृथिवीं भाररहितां विधास्यन् निश्चयेन स्वर्गात् अवतृताम् किन्तु इदानीं धारितभुवनत्रयभारेण भवता श्रीकृष्णेन पृथिवी भारवती पूज्या च अतिशयेन क्रियते।

व्याकरण:- त्वम्-दकारान्त (युष्मद्) सर्वनाम प्रथमा विभक्ति एकवचन।

अतिभारमङ्गराम् - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - अतिशयितः भारः अतिभारः तेन भङ्गुरा ताम्।

अमूम्-सकारान्त (अदस्) सर्वनाम स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

लघुकरिष्यन् - तकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

लघु+च्वि+कृ+लुट्+शतृ लघुकरिष्यन्

त्रिदिवात् - अकारान्त पुल्लिङ्ग पंचमी विभक्ति एकवचन।

अवतार- क्रियापद। अत+तृ+लई।

किल् साम्प्रतम् अव्यय।

उर्दूलोकोन्त्रतयेन - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास - उर्दूढे लोकानां त्रितयं येन तेन।

त्वया- दकारान्त (युष्मद्) सर्वनाम तृतीया विभक्ति एकवचन।

धरित्री- ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

गुरुः- उकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

क्रियते- क्रियापाद। कृ+लट् यक् प्रथमपुरुष एकवचन ।

तराम्- आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

छन्द- वंशस्थ ।

अलंकार - विरोधाभास । क्योंकि श्रीकृष्ण ने पृथिवी के भार को हल्का करने के लिये अवतार लिया है और वर्तमान में यह पृथिवी उन्हीं के द्वारा भारयुक्त की जा रही है। इसलिये यह विरोधाभास है।

विशेष- महाकवि शब्दों के प्रयोग में निपुण है। यहाँ उन्होंने गुरु अर्थ का प्रयोग किया है। गुरुशब्द का अर्थ भारी और पूज्य दोनों ही होता है और यह दोनों ही अर्थों में घटित होता है। भगवान् विष्णु ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतार दैत्यों का वध कर पृथिवी पर विचरण करते हैं लोगों के पापों को अपने दर्शन से समाप्त कर उन्हें मुक्ति के अधिकारी बना रहे हैं तो वह इस रूप में पृथिवी को पूज्या ही बना रहे हैं।

प्रसङ्ग- इस श्लोक में नारदजी श्री कृष्ण के मनुष्य रूप में जन्म लेने की सार्थकता बताते हैं कि इससे उन जैसे सभी को उनका दर्शन सुलभ हो गया है अन्यथा योगियों के लिये उनका दर्शन परम दुर्लभ है।

निजौजसोज्जासयितुं जगद्गुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि ।

समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथामीश ! मादृशाम् ॥37 ॥

अन्वय - निजौजसा जगद्गुहाम् उज्जासयितुम् यदि महीतलम् न उपाजिहीवा ततः समाहितैः अपि अनिरूपितः त्वम् हे ईश ! मादृशाम् दृशः। पदम् कथं स्याः।

सर्वङ्कषा - निजेति । निजौजसा स्वतेजसा। जगद्भ्यो द्रुहयन्तीति जगद्द्रुहः-
 कंसादयः । 'सत्सूद्विष' इत्यादिना क्विप्, तेषां उज्जासयितुम् । तान्
 हिंसितुमित्यर्थः । 'जासिनिप्रहण' इत्यादिना कर्मणि शेषे षष्ठी। 'जसुहिंसायाम्' इति
 चुरादिः। महीतलं नोपाजिहीथाः यदि नावतरेषचेत्। 'ओहाङ् गतौ' लङि थासि रूपम्,
 ततः तर्हि। समाहितैः समाधिनिष्ठैरपि। सकर्मकादप्याशितादिवदविवक्षिते कर्मणि
 कर्तरि क्तः । अथवा समाहितैः समाहितचित्तैरित्यर्थः । विभक्तधनेषु 'विभक्ताः
 भ्रातरः' इतिवदुत्त-रपदलोपो दृष्टव्यः । गम्यमानार्थस्याप्रयोग एव लोप इति कैयटः
 । अनिरूपितः अगृहीत-स्त्वमीश, मादृशाम्-चर्मचक्षुषामिति भावः। विनियोक्तिरियम्
 । दृशः दृष्टेः, पदं-गोचरः, कथस्याः ? न कथञ्चिदित्यर्थः । यस्मात्त्वत्साक्षात्कार
 एवागमनप्रयोजनमिति भावः ।

शब्दार्थ - निजौजसा = अपने तेज से, जगद्द्रुहाम् संसार से द्रोह करने वालों
 का, उज्जासयितुं विनाश करने के लिये, यदि महीतलम् यदि पृथ्वी तल पर, न
 उपाजिहीथाः = अवतीर्ण न होते, ततः तो, समाहितैः अपि समाधिनिष्ठों के द्वारा
 भी, अनिरूपितः = न देखे गये, त्वम् तुम, हे ईश! हे ईश्वर !, मादृशाम्= मुझ जैसे
 चर्मचक्षु वालों के, दृशः पदं दृष्टिगोचर, कथं स्थाः कैसे होते हैं।

अनुवाद-अपने तेज से संसार से द्रोह करने वालों का विनाश करने के लिये
 यदि पृथ्वी तल पर अवतीर्ण न होते तो समाधिनिष्ठों के द्वारा भी न देखे गये
 तुम ईश्वर ! मुझ जैसे चर्मचक्षुवालों के दृष्टिगोचर कैसे होते?

संस्कृत व्याख्या - निजौजसा = स्वतेजसा, जगद्द्रुहाम् लोकविद्रोहिणाम्
 उज्जासयितुम्= तान् हिंसितुम्, यदि, महीतलं पृथिवीतलं, न उपाजिहीथाः
 नावतरेषचेत् समाहितैः समाहितचित्तैः योगिजनैः अपि, अनिरूपितः अगृहीतः, त्वम्
 भवान् श्रीकृष्णः, ईशः हे प्रभो! मादृशां मत्सदृशानां, दृशः चर्मचक्षुषाम्, पदं गोचरं,
 कथं स्थाः कथं भवेः, न कथमपीत्यर्थः । अस्मिन् श्लोके नारदः श्रीकृष्णावतारस्य
 सार्थकतां निरूपयति स्वतेजसा लोकविद्रोहिणां तान् हिंसितुं यदि पृथिवीतलं

नावतरेश्चेत् समाहितचित्तैः योगिजनैरपि अगृहीतो भवान् श्रीकृष्णः हे प्रभो!
मत्सदृशानां चर्मचक्षुषां गोचरं कथं भवेद् न कथमपि त्यर्थः ।

व्याकरणः -निजौजसा सकारान्त नपुंसकलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

जगदुहाम्- हकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

समास - जगदभ्यो दुहन्त इति जगद्द्रुह तेषाम् ।

उऽजासायितुम्-अव्यय उत+जस्+णिच्+ तुमुन् ।

महीतलम्- अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

न- अव्यय ।

उपाजिहीथा- क्रियापद। उपओहाङ् लङ् लकार मध्यमपुरुष एकवचन।

यदि अव्यय।

ततः अव्यय, तद् तसिल् ।

समाहितैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

अपि अव्यय

अनिरूपितः अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन। अ+निर्+उप+ इण्+क्त,
तम् दकारान्त (युष्मद्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

हे ईश! अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन राम्बोधन।

मादृशां शकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

दृशः शकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

पदम् अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

कथम् अव्यय।

स्याः क्रियापद। अस् धातु विधिलिङ्ग मध्यमपुरुष एकवचन ।

विशेष- इस पद्य में नारदजी ने श्रीकृष्ण के मनुष्यरूप में जन्म लेने की विशेषता की ओर संकेत किया है। प्रभु का दर्शन कई जन्मों के पुण्यों और तपस्याओं के उपरान्त भी दुर्लभ ही है, समाहित चित्त वाले योगी भी जिन्हें कठिनाई से प्राप्त कर पाते हैं। वही प्रभु जब से मनुष्य रूप में पृथिवी पर आ गये हैं तब से उन जैसे चर्मचक्षुधारियों को भी प्रभु का दर्शन सुलभ हो गया है।

प्रसङ्ग - इस पद्य में भी नारदजी श्री कृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं कि जिस विश्व की सृष्टि उनके द्वारा की गई है उसका पालन करने और संहार करने में उनके अतिरिक्त और कौन समर्थ हो सकता है।

ननु यतिरसमाहितः, ननु च शिशुपालवधे भवान् समर्थ इति स्तुतिमुखेन सूचयितुमाह-

उपप्लुतं पातुस्दो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वम्भर ! विश्वमीशिषे ।

ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः ॥38 ॥

अन्वय - विश्वम्भर, मदोद्धतैः, उपप्लुतम् अदः विश्वं पातुं त्वम् इव ईशिषे। क्षपातमस्काण्डमलीमस नभः क्षालयितुं रवेः ऋते कः क्षमेत।

ननु कोऽयं नियमो यन्ममैवायं दुष्टनिग्रहाधिकार इत्याशङ्ख्यानन्यसाध्यत्वमेवाह-

सर्वङ्कषा - उपप्लुतमिति । विश्व बिभर्तीति विश्वम्भरस्तत्सम्बुद्धौ हे विश्वम्भर ! विश्वत्रातः । 'संज्ञायां भृतृवृजि' इत्यादिना खच्प्रत्यये मुमागमः । मदोद्धतैः कंसादिभिः, उपप्लुतं-पीडितम्। अदो विश्वपातुं त्वमेव ईशिषे शक्तोऽसि। विश्वम्भरत्वादिति भावः । 'ईश ऐश्वर्ये' लिटि थासि रूपम्। अत्र वैधर्मण दृष्टान्तमाहक्षपायास्तमस्काण्डैः-तमोवर्गः । 'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्धवर्गावसरवारिषु'

इत्यमरः । 'कस्कादिषु च' इति विसर्जनीयस्य सत्वम्। मलीमसमलिनम्। 'मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम् इत्यमरः । 'ज्योत्स्नातमिस्रा' इत्यादिना मत्वर्थीयो निपातः। नभः क्षालयितुं रवेः ऋते-रवि विना। 'अन्यारादितरतै' इति पञ्चमी। कः क्षमेत शक्नुयात्, न कोऽपीत्यर्थः । अत्र वाक्यद्वये समानधर्मस्यैकस्येशिषेक्षमेतेति शब्दद्वयेन वस्तुभावेन निर्देशात्तत्रापि व्यतिरेक-मुखत्वाद्वैधम्येण प्रतिवस्तूपमालङ्कारः तदुक्तम्-एकस्य वाक्यार्धगतत्वेन सामान्यस्य वाक्यद्वये पृथनिर्देशे प्रतिवस्तूपमा।

शब्दार्थ - हे विश्वम्भर हे विश्व का पालन पोषण करने वाले, मदोद्धतैः = मद से उद्धत, उपप्लुतम् (दैत्यों द्वारा) पीड़ित, अदः विश्वं इस विश्व की, पातुं रक्षा करने में, त्वम् एव तुम ही, ईशिषे समर्थ हो, क्षपातमस्काण्डमलीमसं रात्रि के अन्धकार समूह से मलिन, नभः आकाश का, क्षालयितुं प्रक्षालन करने के लिये (निर्मल बनाने को), रवेः ऋते सूर्य के बिना, क्षमेत कौन समर्थ हो जाता है।

अनुवादः- हे विश्व का पालन-पोषण करने वाले। मद से उद्धत, दैत्यों से पीड़ित इस विश्व की रक्षा में तुम ही समर्थ हो। रात्रि के अन्धकार-समूह से मलिन आकाश का प्रक्षालन करने के लिये सूर्य के बिना और कौन समर्थ हो सकता है।

संस्कृत व्याख्या:- विश्वम्भर = जगत्पालक, मदोद्धतैः = गर्वोन्मत्तैः उपप्लुतम् पीडितुम्, अवः इदम्, विश्वम् जगत्, पातुम् रक्षितुम्, त्वम् भवान् श्रीकृष्ण एव, ईशिषे समर्थोऽसि। क्षपातमस्काण्डमलीमसम् = निशायाः अन्धकार समूहेन मलिनम्, नभः = गगनम्, क्षालयितुम् प्रकाशयितुम्, रहेः जाते। क्षमेत प्रभवेत् ।भो जगत्पालक। गर्वोन्मत्तैः कंसादिभिः पीडितुम् इदं जगत् रक्षितुं भवान् श्रीकृष्ण एव समर्थोऽसि। निशायाः अन्धकारसमूहेन मलिनं गगनं प्रकाशयितुं सूत्राद् ऋते कः प्रभवेत् ।

व्याकरणः समास विश्वं बिभतीर्ति विश्वम्भरः तत्सम्बोधने

विश्वम्भरः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन सम्बोधन

मदोद्धतैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

समास मदेन उद्धतास्तैः

उपप्लुतम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन

अदः- सकारान्त (अदस्) नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

पातुम् अव्यय पातुमन् ।

त्वम्- दकारान्त (युष्मद्) सर्वनाम प्रथमा विभक्ति एकवचन।

एव- अव्यय।

ईशिषे- क्रियापद। ईश लट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन।

क्षपातमस्काण्डमलीमसम्-अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - क्षपायाः तमसः काण्डानि क्षपातमस्काण्डानि तैः मलीमसम् तत्।

नमः सकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

क्षालयितुम् अव्यय। क्षाल्+णिच्+ तुमुन् ।

रवेः - इकारान्त पुल्लिङ्ग पञ्चमी विभक्ति एकवचन ऋते के योग में पञ्चमी।

ऋते- अव्यय ।

कः- मकारान्त (किम्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

क्षमेत् - क्रियापद। क्षम्+विधिलिङ् प्रथमपुरुष एकवचन।

छन्दः- वंशस्थ

अलंकार - प्रतिवस्तूपमा। क्योंकि यहाँ दो वाक्यों में एक ही साधारण धर्म का भिन्न-भिन्न शब्दों (ईशिषे और क्षमेत्) के द्वारा कथन किया गया है।

प्रसङ्ग - नारदजी श्री कृष्ण को शिशुपाल के वध के लिये प्रेरित करते हुए कहते हैं कि आपने हिरण्याक्ष और हिरण्याक्ष्यप जैसे दैत्यों का संहार किया है

फिर वर्तमान में कंस जैसे तुच्छ राजाओं के वध से जो आपकी प्रशंसा की जा रही है वह वस्तुतः आपकी प्रशंसा नहीं है अपितु निन्दा ही है।

करोति कंसादिमही भता वधाज्जनो मृगाणामिव यत्तव स्तवम् ।

हरे ! हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया ॥39 ॥

अन्वय - जनः मृगाणाम् इव कंसादिमहीभृताम् वधात् यत् तव स्तवं करोति । हरे सा हिरण्याक्षपुरः सरासुरद्विपद्विषः तव प्रत्युत तिरस्क्रिया।

सर्वङ्कषा - करोतीति । किश-जनो मृगाणामिव कंसादिमहीभृतां वधाद्धेतोः स्तवं स्तोत्रम् । 'स्तवः स्तोत्रं स्तुतिर्नुतिः इत्यमरः। करोति यत्। हे हरे हे कृष्ण, हे सिंहेति च गम्यते। सा स्तुतिक्रिया। हिरण्याक्षपुरस्सराः- हिरण्याक्षप्रभृतयो येऽसुरास्त एव द्विपास्तेषां द्विषः । हन्तुरित्यर्थः। तस्य तव प्रत्युत वैपरीत्येन । 'प्रयुतेत्युक्तवैपरीत्ये' इति गणव्याख्यानात्। तिरस्क्रिया अवमानः । यदिति सामान्ये नपुंसकम् । सेति विधेय-लिङ्गम्। गजधातिनः सिंहस्य मृगवधवर्णनमिव महासुरहन्तुस्तव कंसादिक्षुद्रनृपवधवर्णनं तिरस्कार एवेत्यर्थः अत्रासुरद्विपानामिति हरिवद्धरितिश्लिष्टपरम्परितरूपकं मृगाणा-मिवेत्युपमयाऽङ्गाङ्गि भावेन संकीर्णयते।

शब्दार्थ- जनः = लोग, मृगाणाम् इव मृगों के समान, कंसादिमहीभृताम् = कंसादि राजाओं के, वधात्वघ से, यत् जो, तव तुम्हारी, स्तवः करोति स्तुति करता है। हरे != हे हरि, सावह, हिरण्याक्षपुरः सरासुरद्विपद्विषः = हिरण्याक्ष आदि असुर रूपी हाथियों के मारने वाले, तव प्रत्युत बल्कि तुम्हारा, तिरस्क्रिया = तिरस्कार है।

अनुवाद- लोग, मृगों के समान कंसादि राजाओं के वध से जो तुम्हारी स्तुति करता है। हे हरि! वह हिरण्याक्ष आदि असुररूपी हाथियों के मारने वाले आपका बल्कि तिरस्कार है।

संस्कृत व्याख्या: जनः लोकः, मृगाणाम् = हरिणानाम्, इव, कंसादिम-
हीभृताम् = कंसादिराजानां, वधात् मारणात्, यत् (तव), स्तवम् स्तुतिं करोति =
विदधाति, सा=स्तुतिः हे हरे विष्णो ! हिरण्याक्ष पुरःसरासुरद्विपद्विषः हिरण्या-
क्षादिदैत्यगजशत्रोः, तव = श्रीकृष्णस्य, प्रत्युत वस्तुतः तिरस्क्रिया = तिरस्कार एव।
लोकः हरिणानाम् इव कंसादिराजानाम् मारणात् यत् तव स्तुतिं विदधाति सा स्तुतिः
हे विष्णो । हिरण्याक्षदिदैत्यगजशत्रोः श्रीकृष्णस्य वस्तुतः तिरस्कार एवं।

व्याकरणः - जनः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

मृगाणाम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

इव- अव्यय।

कंसादिमहीभृताम् - तकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन।

समास - कंसः आदिः येषां ते कंसादयः, कंसादयश्च ते महीभृतः।

तेषाम् - कंसादिमहीभृताम्। महीं विभर्ति इति महीभृत् तेषां महीभृताम्।

वधात्-अकारान्त पुल्लिङ्ग पञ्चमी विभक्ति एकवचन ।

यत्- तकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

तव - दकारान्त (युष्मद्) सर्वनाम षष्ठी विभक्ति एकवचन।

स्तवम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

करोति - क्रियापद। कृ धातु लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

सा- दकारान्त (तद्) स्त्रीलिङ्ग प्रथमाविभक्ति एकवचन ।

हे हरे- सम्बोधन

हिरण्याक्षपुरः सरासुरद्विपद्विषः षकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी एकवचन।

समास - हिरण्याक्ष एव पुरः सरो येषान्ते हिरण्याक्ष पुरः सराः ते च

असुराः हिरण्याक्षपुरः सरासुरः ते एव द्विपाः इति हिरण्याक्षपुरः सरासुरद्विपा तेषां द्विट् तस्य ।

प्रत्युत- प्रति+उत-अव्यय और निपात के रूप में प्रयुक्त है

तिरस्क्रिया - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

अलंकारः - उपमा, रूपक, अङ्गाङ्गिभावसंकर-मृगाणामिव कंसादि महीभृताम् यहाँ मृगों से कंसादि राजाओं की उपमा दी गई है। हे हरे! यह सम्बोधन-कृष्णरूपी सिंह सिंह के लिये है यह श्लिष्टपरम्परित रूपक है, इसी प्रकार असुरद्विपद्विषः में भी श्लिष्टपरम्परित रूपक है। इन दोनों अलंकारों का यहाँ अङ्गाङ्गिभावसंकर है।

विशेष - इस श्लोक में मृगाणाम् इव कंसादिमहीभृताम् में उपमा है। असुर रूपी हाथियों के लिए हरि (सिंह) के समान हरि (कृष्ण) यह श्लिष्ट रूपक उपर्युक्त उपमा पर आधारित है। इस प्रकार यहाँ उपमा और श्लिष्ट परम्परित रूपक का अङ्गाङ्गिभाव संकर है।

प्रसङ्ग - कृष्ण की स्तुति करने के उपरान्त नारदजी अपने आप प्रयोजन एकान्त में बताने को उत्सुक है, यद्यपि वे जानते हैं श्रीकृष्ण इससे पूर्वपरिचित हैं लेकिन फिर भी उसे कह देना चाहते हैं-

इदानीं प्रकटमेव कार्यं विवक्षुराह-

प्रवृत्त एव स्वयमुज्झितश्रमः क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि ।

तथापि वाचालतया युनक्ति मां मिथस्त्वदाभाषणलोलुपं मनः ॥40

अन्वय - उज्झितश्रमः (त्वम्) क्रमेण भुवनद्विषां पेष्टुं स्वयम् एव प्रवृत्तः असि, तथापि मिथः त्वदाभाषणलोलुपं मनः मां वाचालतया युनक्ति ।

एवं स्तुत्या देवमभिमुखीकृत्यागमनप्रयोजनं वक्तुमुपोद्धातयति-

सर्वङ्कषा - प्रवृत्त इति । त्वम् उज्झित त्रमः त्यक्तश्रमः सन् । क्रमेण भुवनानि द्विषन्तीति भुवनद्विषः- दुष्टास्तेषां पेष्टुम् ताहिंसितुमित्यर्थः । 'जासिनिप्रहण' - इत्यादिना कर्मणि शेषे षष्ठी। स्वयम् अपरप्रेरित एव प्रवृत्तोऽसि। एवं तर्हि पिष्टपेषणं किमिति चेत्तत्राह-तथापि स्वतः प्रवृत्तेऽपि, मिथो रहसि त्वदाभाषणे त्वया सह संलापे, लोलुपं-लुब्धम्। लुब्धोऽभिलाषुकस्तृष्णकसमौ लोलुपलोलुभो इत्यमरः । मनो मां वाचालतया सह युनक्ति वाचालं करोतीत्यर्थः। वाचो बढ्योऽस्य सन्तीति वाचालः (आलजाटचौ बहुभाषिणि) इत्यालच्। स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्हावाक् इत्यमरः ।

शब्दार्थ - उज्झितश्रमः थकान को छोड़कर (आप), क्रमेण क्रम से, भुवनद्विषां = संसार से द्वेष करने वालों को, पेष्टुं पीसने के लिए, स्वयम् एव स्वयं ही, प्रवृत्तः असि प्रवृत्त हो, तथापि फिर भी, मिथः परस्पर में, त्वदाभाषणलोलुपं = आपसे बातचीत करने के लिए लोलुप, मनः मन, मां मुझे, वाचालतया वाचालता के साथ, युनक्ति युक्त कर रहा है।

अनुवाद - थकान को छोड़कर क्रम से संसार से द्वेष करने वालों को पीसने के लिये आप स्वयं ही प्रवृत्त हो, फिर भी परस्पर में आपसे बातचीत करने के लिये लोलुप मेरा मन मुझे वाचालता के साथ युक्त कर रहा है।

संस्कृत व्याख्या - उज्झितश्रम = परित्यक्तश्रमः, क्रमेण = क्रमशः, भुवन-द्विषाम् = लोकविद्रोहिणाम्, पेष्टुम् = विनाशयितुम् स्वयमेव-स्वत एव, प्रवृत्तः = सत्रद्ध, असि । तथापि, मिथः = एकान्ते, त्वदाभाषणलोलुपम् = त्वया सह संलापाय लोलुभम्, मनः = चित्तः, माम् = नारदम्, वाचालनया = बहुभाषणतया, युनक्ति = विद्धाति ।

परित्यक्तश्रमः भवान् क्रमशः लोकविद्रोहिणां विनाशयितुं स्वत एवं सन्नद्धोऽसि । तथापि एकान्ते त्वया सह संलापाय लोलुभं चित्तः, मां नारदं, बहुभाषणतया विदधाति ।

व्याकरणः - उज्झितश्रमः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - उज्झितश्रमः येन सः ।

क्रमेण - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

भुवनद्विषाम् - षकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

समास - भुवनानि द्विषन्ति ये ते

पेष्टुम्- अव्यय पिष्टृ तुमुन्

स्वयम्, एव अव्यय ।

प्रवृत्तः- अकारान्त पुल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

असि क्रियापद। अस्लट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन।

तथा, अपि मिथः अव्यय।

त्वदाभाषणलोलुपम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - त्वया सह आभाषणे लोलुपम् यत्, त्वदाभाषणलोलुपम्।

मनः- सकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

माम् - दकारान्त (अस्मद्) सर्वनाम् द्वितीया विभक्ति एकवचन।

वाचालतया-आकारान्त स्त्रीलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

युनक्ति- क्रियापद। युज्+लट् लकार प्रथमा पुरुष एकवचन।

विशेष - श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार हैं और नारदजी उनकी भक्ति करते। विष्णुलोक में उनका निरन्तर आना जाना रहता है। लेकिन श्री कृष्ण जब से पृथ्वी स आये हैं वे राक्षसों के विनाश में निरन्तर संलग्न हैं, और नारदजी का भी पृथ्वीलाक आगमन कम ही हो पाता है इसलिये नारदजी इस बात से भली-भांति हैं परिचित कि श्रीकृष्ण स्वयं ही दष्टों के विनाश में प्रवृत्त हैं तथापि जैसे ही इन्द्र ने उन्हें सन्देश देक भेजा, वे प्रसन्नता से तैयार हो गये और अब भी श्रीकृष्ण से एकान्त में बात करने लालायित हैं।

प्रसङ्ग - अब नारदजी सबसे पहले इन्द्र का सन्देश ही सुनाते हैं कि आप लोकोपकारी कार्यों में पहले ही व्यस्त हैं तथापि इन्द्र का सन्देश सुनने की करें-

तदिन्द्रसंदिष्टमुपेन्द्र ! यद्वचः क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते ।

समस्तकार्येषु गतेन धुर्यतामहिद्विषस्तद्भवता निशम्यताम् ॥41 ॥

अन्वय - तत् उपेन्द्र ! इन्द्रसन्दिष्टं विश्वजनीनं यद् वचः क्षणं मया उच्यते तत् अहिद्विषः समस्तकार्येषु धुर्यतां गतेन भवता निशम्यताम्।

अथ स्ववाक्यश्रवणं सहेतुकं प्रार्थयते-

सर्वङ्कषा - तदिति । तत्-तस्मात् । इन्द्रमुपमतः उपेन्द्रः- इन्द्रावरजः । अत- एवेन्द्रसन्दिष्टम् श्रोतव्यमिति भावः । किञ्च विश्वस्मै जनाय हितं विश्वजनीनम् । 'आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः यद्वचः क्षणं न तु चिरं मयोच्यते, तत् वचोऽहिद्विषो-वृत्रघ्नः । 'सर्पे वृत्रासुरेऽप्यहिः' इति वैजयन्ती। समस्तकार्येषु धुर्यता धुरन्धरत्वं गतेन । अतोऽपि भवता निशम्यताम्। प्रार्थनायां लोट्। धुर वहतीति धुर्यः 'धुरो यङ्ढकौ' इति यत्प्रत्ययः । स्फुटमत्र पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः ।

शब्दार्थ - तत् उपेन्द्र ! अतः हे श्रीकृष्ण जी!, इन्द्रसंदिष्टं इन्द्र के द्वारा सन्देश रूप में भेजा गया, विश्वजनीनं सनके लिए हितकारी, यद्वचः जो वचन, क्षणं मया उच्यते क्षण भर के लिये मेरे द्वारा कहा जाता है, तत् वह अहिद्विषः वृत्रासुर के मारने वाले इन्द्र के, समस्तकार्येषु समस्त कार्यों में, धुर्यतां गतेन धुरन्धरता को प्राप्त हुए, भवता = आपके द्वारा, निशम्यताम् = सुना जाना चाहिए।

अनुवाद - अतः हे श्रीकृष्ण जी! इन्द्र के द्वारा सन्देश रूप में भेजा गया, सबके लिये हितकारी जो वचन क्षण भर के लिए मेरे द्वारा कहा जाता है, वह

वृत्रासुर के मारने वाले, इन्द्र के समस्त कार्यो में धुरन्धरता को प्राप्त हुए आपके द्वारा सुना जाना चाहिए।

संस्कृत व्याख्या: - तत्= तस्मात्, कारणात्, उपेन्द्र हे इन्द्रानुज श्रीकृष्ण।, इन्द्रसन्दिष्टम् = इन्द्रेण प्रोक्तं, विश्वजनीनम् = सर्वलोकहितकारि, यद् वचः = यद्वचनं, क्षणं = क्षणमात्रे, मया = नारदेन उच्यते कथ्यते, तत् तद्वचनं, अहिद्विषः वृत्रघ्नः, समस्तकार्येषु सर्वेषु कार्येषु, धुर्यतां धुरन्धरत्वं, गतेन प्राप्तेन, भवता = श्रीकृष्णे निशम्यताम् = श्रूयताम् । तस्मात् कारणात् है इन्द्रानुज श्रीकृष्ण ! इन्द्रेण प्रोक्तं सर्वलोकहितकारि यद्वचनं क्षणमात्रे मया नारदेन कथ्यते, तद्वचनं, वृत्रघ्नः सर्वेषु कार्येषु धुरन्धरत्वं प्राप्तेन भवता श्रीकृष्णेन श्रूयताम् ।

व्याकरण: - प्रथमाविभक्ति एकवचन।

उपेन्द्रः - अकारान्त पुल्लिङ्ग सम्बोधन प्रथमाविभक्ति एकवचन।

इन्द्रसन्दिष्टम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

इन्द्र+सम्+दिष्+क्त = इन्द्रसन्दिष्ट

समास - इन्द्रेण सन्दिष्टम्

विश्वजनीनम् - अकारान्त नपुंसलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

विश्वस्मै जनाय हित तत्

यद् - तकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

वचः- सकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

क्षणं-अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

मया- दकारान्त (अस्मद्) सर्वनाम तृतीया विभक्ति एकवचन।

उच्यते- क्रियापद । ब्रू+लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

तत्- तकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

आहिद्विषः - षकारान्त पुल्लिङ्गः षष्ठी विभक्ति एकवचन।

समस्तकार्येषु - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग सप्तमी विभक्ति बहुवचन ।

धुर्यताम् - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

गतेन - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

भवता - तकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

निशम्यताम् - क्रियापद । नि+शम् लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

छन्द - वंशस्थ -

अलंकारः - काव्यलिङ्ग । नारदजी श्रीकृष्ण ने इन्द्र का सन्देश सुनने के कारण बताते हैं

1. वे इन्द्र के द्वारा सन्दिष्ट हैं।
2. उन सन्देश विश्व के समस्त लोगों के लिये हितकारी हैं।
3. श्रीकृष्ण जी इन्द्र के समस्त कार्यों में धुरन्धर हैं।

प्रसङ्ग - नारदजी शिशुपाल के इसी जन्म के दृष्टकृत्यों को नहीं बताते, अपितु जन्म-जन्मान्तर के उसके दुष्टकृत्यों को बताते हैं। अतः इस जन्म में भी उसका वध किया जाना अनिवार्य है। सर्वप्रथम वे उसके प्रथम जन्म हिरण्यकशिपु के रूप की ओर संकेत करते हैं।

तदेव वक्तुमाह-

अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां भियां तनूजस्तपनद्युतिर्दितेः ।

यमिन्द्रशब्दार्थनिषूदनं हरेर्हिरण्यपूर्व कशिपुं प्रचक्षते ॥42 ॥

अन्वय - प्रतिपक्षजन्मनां भियाम् अभूमिः तपनद्युतिः दितेः तनुजः अभूत्, हरेः इन्द्रशब्दार्थनिषूदनं य हिरण्यपूर्व कशिपुं प्रचक्षते।

अथ शिशुपालो हन्तव्य इति वक्तुं तस्यावश्यवध्यत्वेऽनन्यवध्यत्वज्ञापनौपयिकतया औद्धत्यप्रकटनार्थं जन्मान्तरवृत्तान्तं तावदुद्घाटयति:-

सर्वङ्कषा- अभूदिति। प्रतिपक्षात् शत्रोः जन्म यासां तासां भियामभूमिः अविषयः, निर्भीक इत्यर्थः। तपनद्युतिः सूर्यतापो दितेस्तनूजोदैत्योऽभूत् कोऽसावत आह-हरेः- इन्द्रस्य इन्द्रशब्दार्थनिषूदनम् । इन्द्रतीति इन्द्रः 'इदि परमैश्वर्ये' 'ऋजेन्द्रः' -इत्यादिना रत्प्रत्ययान्त औणादिकनिपातः । तस्य इन्द्र इति शब्दस्येन्द्र इति संज्ञापदस्य योऽर्थः परमैश्वर्यलक्षणस्तस्य निषूदनं-निवर्तकम्। कर्तरिल्युट् । हरेरैश्वर्यनिहन्तारमित्यर्थः । यं दैत्यं हिरण्यशब्दः पूर्वकशिपुं शब्दं प्रचक्षते । हिरण्यकशिपुमाहुरित्यर्थः । अत्र हिरण्यशब्द पूर्वकत्वं कशिपुशब्दस्यैव न तु संज्ञिनस्तदर्थस्येति शब्दपरस्य कशिपुशब्दस्यार्थगतत्वेना-प्रयोज्यस्य प्रयोगादवाच्यवचनाख्यार्थदोषमाहुः । 'यदेवावाच्यवचनमवाच्यवचनं हि तत्' इति । समाधानम्-एवविधविषये शब्द परेणार्थलक्षणेति । कथञ्चित्सम्पाद्यमित्युक्तमस्माभिः 'देवपूर्वं गिरिं ते' इति 'धनुरुपपदमस्मै वेदमभ्यादिदेश' इत्येतद्व्याख्यानावसरे सञ्जीविन्यां घण्टापथे च । विशेषश्चात्रय दैत्यमुदिश्य हिरण्यपूर्व कशिपुं प्रचक्षते संज्ञात्वेन प्रयुङ्क्ते ।

शब्दार्थ - प्रतिपक्षजन्मनां शत्रुओं से उत्पन्न, भियाम् = भयों का, अभूमिः जो विषय नहीं है ऐसा, तपनद्युतिः सूर्य के समान द्युति वाला, दितेः दिति का, तनूजः = पुत्र, अभूत् = हुआ। हरेः इन्द्र के, इन्द्रशब्दार्थनिषूदनं = इन्द्र के परमैश्वर्यवान् इस अर्थ को मिटाने वाले, यजिसको, हिरण्यपूर्वकशिपुं = हिरण्यकशिपु, प्रचक्षते = कहा जाता है।

अनुवाद - शत्रुओं से उत्पन्न भयों का जो विषय नहीं है ऐसा सूर्य के समान द्युति वाला दिति का पुत्र हुआ। इन्द्र शब्द के, 'परमैश्वर्यवान्' इस अर्थ को मिटाने वाला जिसको हिरण्यकशिपु कहा जाता है।

संस्कृत व्याख्या: - प्रतिपक्षजन्मनाम् शत्रोः जन्म यासां तासां, भियां भीतीनाम्, अभूमिः = अविषयः, तपनद्युतिः = सूर्यप्रकाशः दितेः तनूजः = दैत्यः, अभूत बभूव, हरेः = इन्द्रस्य, इन्द्रशब्दार्थ निषूदनम् = इन्द्रेति पदस्य योऽर्थः परमैश्वर्यलक्षणस्य तस्य, निषूदनम् = विहिंसकम्, यः हिरण्यपूर्व = हिरण्येति-शब्दपूर्वकं, कशिपुं = कशिपुमिति, प्रचक्षते कथयन्ति । शत्रोः जन्म यासां तासां भीतीनाम् अविषयः, सूर्यप्रकाशः दैत्यः बभूव । इन्द्रस्य 'इन्द्रेति पदस्य योऽर्थः परमैश्वर्यलक्षणस्य तस्य विहिंसकं हिरण्येति शब्दपूर्वक कशिपुमिति कथयन्ति ।

व्याकरण: -प्रतिपक्षजन्मनाम् - नकारान्त नपुसंकलिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

समास - प्रतिपक्षात् जन्म यासां तासाम् ।

भियाम् - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

अभूमिः - इकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

तपनद्युतिः - इकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - तपनस्य द्युतिरिव द्युतिः यस्य असौ

दितेः- इकारान्त स्त्रीलिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

तनूजः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

अभूत- क्रियापद। भू-लुङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

हरेः- इकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

इन्द्रशब्दार्थनिषूदनम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - इन्द्रशब्दस्य योऽर्थः तस्य निषूदनम्

यः- तकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

हिरण्यपूर्व- अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

कशिपुम्-उकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

प्रचक्षते - क्रियापद । प्रचक्ष लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

छन्द- वंशस्थ ।

प्रसङ्ग - हिरण्यकशिपु से पूर्व देवता भय का नाम भी नहीं जानते थे, लेकिन सबसे पहले इसी ने देवताओं के हृदय में भय व्याप्त कर दिया।

समत्सरेणाऽसुर इत्युपेयुषा चिराय नाम्नः प्रथमाभिधेयताम् ।

भयस्य पूर्वावतरस्तरस्विना मनस्सु येन द्युसदां न्यधीयत ॥43 ॥

अन्वय - समत्सरेण असुर इति नाम्नः चिराय प्रथमाभिधेयताम् उपेयुषा तरस्विना येन द्युसदां मनस्सु भयस्य पूर्वावतरः न्यधीयत ।

सर्वङ्गुषा - समत्सरणेति । समत्सरेण अन्यशुभद्वेषसहितेन । 'मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे' इत्यमरः । अस्यतीत्यसुरः। असेरुरन्। असुर इति नाम्नः चिराय चिरकालेन। 'चिराय विरान्नाय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः' इत्यमरः । प्रथमाभिधेयतामुपेयुषा अन्वर्थतयां मुख्यार्थतां गतेन । तरस्विनाबलवता। 'तरसो बलरंहसी' इति विश्वः । येन-हिरण्यकशिपुना दिवि सीदन्तीति घुसदां देवानां मनस्सु भयस्य पूर्वावतरः प्रथमप्रवेशः। ऋदोरप्। न्यधीयत-निहितः । छात्रः कर्मणि लिङ्। अस्मादेव देवानां प्रथमं भयस्योत्पत्तिरभूदित्यर्थः ।

शब्दार्थ - समत्सरेण द्वेष से युक्त, असुर इति नाम्नः असुर इस नाम की, चिराय चिरकाल के लिये, प्रथमाभिधेयताम् = मुख्यार्थता को, उपेयुषा प्राप्त,

तरस्विना = बलवान्, येन = जिसके द्वारा, द्युमदां देवों के, मनस्सुमन में, भयस्य = भय का, पूर्वावतरः = प्रथम प्रवेश, न्यधीयत रखा गया (कराया गया)।

अनुवाद - द्वेष से युक्त, असुर इस नाम की चिरकाल के लिये मुख्यार्थता को प्राप्त, बलवान् जिसके द्वारा देवों के मन में भय का प्रथम प्रवेश कराया गया अर्थात् इससे ही देवों के मन में भय उत्पन्न हुआ।

संस्कृत व्याख्या - समत्सरेण = अन्येषाम् अभ्युदयद्वेषिणः, असुरः इति नाम्नः = असुर इत्यभिधानस्य, चिराय दीर्घकालाय, प्रथमाभिधेयताम् = प्रथमवाच्यताम्, उपेयुषा-प्राप्तवता, तरस्विना= बलवता, येन हिरण्यकशिपुना, द्युसदाम् देवानां, मनस्सु = हृदयेषु, भयस्य = भीतेः, पूर्वावतरः प्रथमः प्रवेशः, न्यधीयत = कारितवान्, निहितः।

अन्येषामभ्युदयद्वेषिणः असुर इत्यभिधानस्य दीर्घकालाय प्रथमवाच्यतां प्राप्तवता बलवता हिरण्यकशिपुना देवानां हृदयेषु भीतेः प्रथम प्रवेशः कारितवान्।

व्याकरण- समत्सरेण - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास-मत्सरेण सहितः समत्सरस्तेन

असुरः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन

इति - अव्यय

नाम्नः - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

चिराय - अकारान्त पुल्लिङ्ग चतुर्थी विभक्ति एकवचन।

प्रथमाभिधेयताम् - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

उपेयुषा - षकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

तरस्विना - नकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

येन-दकारान्त (यद्) पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

द्युसदाम् - दकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

समास - दिवि सीदन्ति तेषां द्युसदाम्।

मनस्सु - सकारान्त नपुंसकलिङ्ग सप्तमी विभक्ति बहुवचन।

भयस्य - अकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

पूर्वावतर:- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - पूर्वश्चासौ अवतरश्चेति पूर्वावतरः ।

न्यधीत - क्रियापद। नी+धा+ललकार प्रथमपुरुष एकवचन।

प्रसङ्ग - हिरण्यकशिपु के प्रताप का वर्णन करते हुए माघ कहते हैं कि उसने इन्द्रादि चारों दिक्पालों को भी पराजित कर दिया, और यह उसके पराक्रम की पराकाष्ठा थी, लक्ष्मी भी उसके पराक्रम से आकृष्ट होकर उसके पास रहने लगी।

दिशामधीशांश्चतुरो यतः सुरानपास्य तं रागहृतः सिषेविरे ।

अवापुरारभ्य ततश्चला इति प्रवादमुच्चैरयशस्करं श्रियः ॥44 ॥

अन्वय - यतः दिशाम् अधीशान् चतुरः सुरान् अपास्य श्रियः रागहृताः ते सिषेविरे। ततः आरभ्य अयशस्कर, उच्चैः चलाः इति प्रवादं अवापुः ।

सर्वङ्गुषा - दिशामिति । श्रियः-सम्पदो यतः यदेत्यर्थः । दिशामधीशान् दिक्पतीनपि । चतुरः सुरान् इन्द्रवरुणयमकुबेरान्, अपास्य-त्यक्त्वा, तं-हिरण्यकशिपु रागडता -रागाकृष्टाः सत्यः न तु बलादिति भावः । सिषेविरे । यतो वीरप्रियाः श्रियः। इति भावः । तत आरभ्यः तदा प्रभृति। अयशः करोतीतित्यशस्करम् । दुष्कीर्तिहेतुमित्यर्थः । 'कृजो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' इति ट प्रत्ययः । 'अतः कृकमि'

इत्यादिना विसर्जनीयस्य सत्वम्। उच्चैः-प्रचुरं, चलाः-अस्थिरा इति प्रवादं जनापवादमवापुः । दिगीशानामपि सर्वस्वहारित्वात्तदौद्धत्यस्य प्राकट्यमिति भावः ।

शब्दार्थ-यतः = जब से, दिशाम् = दिशाओं के, अधीशान् स्वामी (दिग्पति), चतुरः = चार, सुरान् देवों को, अपास्य छोड़कर, श्रियः = लक्ष्मी ने, रागहताः = राग से आकृष्ट होकर, तं= उस हिरण्यकशिपु की, सिषेविरे = सेवा की, ततः आरभ्य तब से लेकर, अयशस्करं = अकीर्ति का कारण, उच्चैः प्रचुर, चलाः अस्थिर, इति प्रवादं इस निन्दा को, अवापुः = प्राप्त किया।

अनुवाद जब से दिशाओं के स्वामी चार देवों को छोड़कर लक्ष्मी ने राग से आकृष्ट होकर उस हिरण्यकशिपु की सेवा की, तब से लेकर उसने अकीर्ति का कारण 'प्रचुर अस्थिर' इस निन्दा को प्राप्त किया है।

संस्कृत व्याख्या: - यतः = यतो हि, दिशाम् = पूर्वादिदिशाम्, अधीशान् = इन्द्रादिस्वामिनश्चतुरः, सुरान् देवान्, अपास्य परित्यज्य, लक्ष्म्यः, रागहताः = तस्य अनुरागेण आकृष्टाः, तं हिरण्यकशिपुं, सिषेविरे सेवयामासुः ततः आरभ्य = तदा प्रभृति, अयशस्करं अकीर्तिकर, उच्चैः प्रचुरं, चलाः अस्थिराः, प्रवादं = जनापवाद, अवापुः = प्राप्तवती ।

यतो हि पूर्वादिदिशाम् इन्द्रादिस्वामिनः चतुरः देवान् परित्यज्य लक्ष्म्यः, तस्य अनुरागेण आकृष्टा हिरण्यकशिपुं सेवयामासुः तदा प्रभृति अकीर्तिकरं प्रचुरं अस्थिराः इति जनापवादं, प्राप्तवती ।

व्याकरणः - यतः अव्यय ।

दिशाम् = ककारान्त स्त्रीलिङ्ग षष्ठी बहुवचन ।

अधीशान् = अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

चतुरः - रकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

सुरान् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

अपास्य- अव्यय। अप+आस्+ल्यप्।

श्रियः - ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन ।

रागहताः - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

समास - रागेण हताः इति रागहतः ।

तम् - दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

सिषेविरे- क्रियापद। सेव्+लिट्‌लकार प्रथमपुरुष बहुवचन ।

ततः अव्यय।

अयशस्करं - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

चलाः- आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन।

अपवादम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

अवापुः - क्रियापद। अव+आप्+लिलकार प्रथम पुरुष बहुवचन ।

प्रसङ्ग - नारदजी श्रीकृष्ण को बताते हैं कि हिरण्यकशिपु के भय से ही देवताओं ने दुर्ग आदि का निर्माण किया, लेकिन फिर भी वे उससे निरन्तर भयभीत रहते थे।

**पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं बलानि शूराणि घनाश्च कञ्चुकाः ।
स्वरूपशोभैकफलानि नाकिनां गणैर्यनाशङ्क्य तदादि चक्रिरे ॥45 ॥**

अन्वय - नाकिनां गणैः यम् आशङ्क्य तदादि स्वरूपशोभैकफलानि पुराणि दुर्गाणि, आयुधं निशातं, बलानिशूराणि, कञ्चुकाः च घनाः चक्रिरे।

सर्वङ्कषा - पुराणीति । किञ्च नाकिना-सुराणां, गणैः यं हिरण्यकशिपुमाशङ्क्य- बाधकत्वेनोत्प्रेक्ष्य, सः कालः आदिर्यस्मिंस्तदादि तत्-

तदाप्रभृति स्वरूपशोभैवैक फलं मुख्यं प्रयोजनं येषां तेषां पुरादीनां तानि तथोक्तानि । प्रागीदृगसाध्यशत्रोरभावादिति भावः । 'नपुंसकमनपुंसकेन' इत्यादिना नपुंसकशेषः । पुराणि दुर्गाणि प्रकारपरिखादिना अगम्यानि चक्रिरे । 'सुदुरोरधिकरणे' इति गमेर्ङः । आयुधं निशातं-निशितं चक्रे इति । विभक्ति विपरिणामेनान्वयः । 'शो तनूकरणे' इति धातोः क्तः । 'शाच्छोरन्यतरस्याम्' इतीत्वविकल्पात्पक्षे आत्वम् । बलानिसैन्यानि । शूराणि शौर्यवन्ति, चक्रिरे सम्पादितानि । कञ्चुकावारबाणाः । लोहवर्माणीत्यर्थः । 'कशुको वारबाणोऽस्त्री' इत्यमरः । घनादुर्भेदाश्च-क्रिरे । इत्थं नित्यसन्नद्धा जाग्रति स्मेत्यर्थः ।

शब्दार्थ - नाकिनां गणैः = स्वर्ग में रहने वाले देवसमूहों ने, यम् आशङ्क्य जिसकी आशङ्का से, तदादि स्वरूप शोभैक फलानि तब से लेकर जिनका स्वरूप की शोभा बढ़ाना ही फल था ऐसे, पुराणि नगरों को, दुर्गाणि दुर्गम बनाया, आयुधं आयुधों को, निशात = तीक्ष्ण (किया), बलानि सेनाओं को, शूराणि शूर (बनाया), कञ्चुकाः च और कवचों को, घनाः चक्रिरे दुर्भेद्य बनाया।

अनुवाद - स्वर्ग में रहने वाले देवसमूहों ने जिसकी आशंका से तब से लेकर जिसके स्वरूप की शोभा बढ़ाना ही फल था ऐसे नगरों को दुर्गम बनाया, आयुर्थों को तीक्ष्ण किया, सेनाओं को शूर बनाया और कवचों को दुर्भेद्य बनाया। तात्पर्य यह है कि पहले भय का अभाव होने के कारण ये सब वस्तुयें केवल शोभा के लिये थीं।

संस्कृत व्याख्या-नाकिनाम् = देवानाम्, गणैः समूहैः, यम् = हिरण्यकशिपुं, आशङ्क्य= सम्भाव्य, तदादि तदा प्रभृति, स्वरूपशोभैकफलानि = स्वरूपस्य कान्तिरेव मुख्यं प्रयोजनं येषां तेषां, पुराणि नगराणि, दुर्गाणि = प्रकारपरिखादिना, अगम्यानि चक्रिरे । आयुधं शस्त्रम्, निशातं निशितं चक्रे, बलानि= सैन्यानि, शूराणि = शूरवन्ति, कञ्चुकाः = वारवाणाः, च, घनाः दुर्भेदाः, चक्रिरे = कृतवन्तः । देवानां समूहैः यं हिरण्यकशिपुम् सम्भाव्य तदा प्रभृति स्वरूपस्य कान्तिरेव मुख्यं प्रयोजनं

येषां तेषां नगराणि प्रकारपरिखादिना अगम्यानि चक्रिरे। शस्त्रं निशितं चक्रे।
सैन्यानि शूरवन्ति, वारबाणाः दुर्भेदाः कृतवन्तः ।

व्याकरण- नाकिनाम्-नकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

गणैः - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन।

यम्-दकारान्त (यद्) पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

आशङ्कय- अव्यय। आशङ्क+ल्यप्

तदा- अव्यय।

तदादि-इकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - स आदिर्यस्मिन्तत् ।

स्वरूपशोभकफलानि - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

समास - स्वरूपस्य शोभा स्वरूपशोभा। सा एव एकं फलं येषान्तानि

पुराणि - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन ।

दुर्गाणि - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

आयुधम्- अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

निशातम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

बलानि शूराणि - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन ।

कञ्चुकाः घनाः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन ।

च- अव्यय

चक्रिरे - क्रियापद। कृ+लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन।

विशेष - कवि की कल्पना है कि हिरण्यकशिपु से डरकर देवताओं ने सुरक्षा के विशेष उपाय किये। स्वर्ग तो वैसे ही अगम्य है वहाँ भी उससे बचने के लिये

उन्होंने अपने नगर को दुर्गम बनाया सेना को शूरवीरों से युक्त किया, अपने शस्त्रों को धारदार बनाया तथा सेना को कवच आदि देकर सुरक्षित किया।

प्रसङ्ग - हिरण्यकशिपु निर्बाध गति से सभी लोकों में विचरण करता था, और उसके भय से कांपते हुए देवता झुक झुक कर तीनों सन्ध्याओं में उसे प्रणाम करते थे-

स सञ्चरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाऽशिश्रियदाश्रयः श्रियः ।

अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसन्ध्यं त्रिदशैर्दिशे नमः ॥46

अन्वय - भुवान्तरेणु सञ्चरिष्णुः श्रियः आश्रयः सः यदृच्छया यां (दिशाम्) अशिश्रियत् मुकुटोपलस्खलत्करैः त्रिदशैः त्रिसन्ध्यं तस्यै दिशे नमः अकारि।

सर्वङ्कषा - स इति । शान्येषु भुवनेषु भुवनान्तरेषु। 'सुप्सुपा' इति समासः। सञ्चरिष्णु-सञ्चरणशीलः । अलङ्कृञ्-इत्यादिना चरेरिष्णुच्। श्रियः लक्ष्म्याः, आश्रयः स-हिरण्यकशिपुः । यदृच्छयास्वैरवृत्या । 'यदृच्छास्वैरवृत्तिः' इत्यमरः । यां दिशम्-शिश्रियत्-अगमत् । श्रयतेर्लुङ्। 'णिश्रि' इत्यादिना चङि द्विर्भावः इयडादेशः । मुकुटोपलेषु-मौलिरत्नेषु-स्खलन्तः करा येषां तैः। शिरसि बद्धाञ्जलिभिः इत्यर्थः । 'उपलः प्रस्तरे रत्ने' इति विश्वः । तिम्रो दशा बाल्यकौमार-यौवनानि, जन्मसत्तावृद्धयो वा येषां तैस्त्रिदशैर्दिशैः यद्वा त्रिदशपरिणाममेषामिति - 'बहुव्रीहौ सङ्ख्येये डजबहुगणनात्' इति समासान्तः । तिस्रः सन्ध्याः समाहितास्त्रिसन्ध्यम्। 'तद्धितार्थोत्तरपद' इत्यादिना समाहारे द्विगुः । 'द्विगुरेक्वचनम्' वा टाबन्त इति पक्षे नपुंसकत्वम्। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। तस्यै दिशे करैर्हस्तैः । 'नमःस्वस्ति' इत्यादिना चतुर्थी। नमः नमस्कारोऽकारि-कृतम्। कृञः कर्मणि लुङ्। 'चिण्भावकर्मणोः' इति चिण्। सन्ध्यावन्दनेऽपि दिन्नियमं परित्यज्य तदागमनभयात्तस्यै दिशे नमस्कारः कृत इति भावः ।

शब्दार्थ - भुवनान्तरेषु = अन्य लोकों में, सञ्चरिष्णुः = भ्रमण करने वाला, श्रियः = लक्ष्मी का, आश्रयः = आश्रय, सः = वह हिरण्यकशिपु, यां (दिशम्) अशिश्रियत् = जिस दिशा में जाता था, मुकुटोपलस्खलत्करैः = मुकुट की मणियों पर फिसलते हुए हाथों द्वारा, त्रिदशैः = देवताओं के द्वारा, त्रिसन्ध्यं प्रातः, मध्याह्न और सायं तीन सन्ध्याओं में, तस्यै दिशे उसी दिशा को, नमः अकारि= नमस्कार किया जाता था।

अनुवाद - अन्य लोकों में भ्रमण करने वाला वह हिरण्यकशिपु जिस दिशा में जाता था, मुकुट की मणियों से फिसलते हुये हाथों द्वारा देवता लोग प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों सन्ध्याओं में उसी दिशा को नमस्कार करते थे।

संस्कृत व्याख्या - भुवनान्तरेषु अन्येषु लोकेषु, सञ्चरिष्णुः = भ्रमणशीलः, श्रियः = राजलक्ष्म्याः, आश्रयः = निवासभूतः, सः = हिरण्यकशिपुः, यदृच्छया = स्वेच्छया, याम् पूर्वादिदिशम्, अशिश्रियत् = अध्यतिष्ठत्, मुकुटोपलस्खलत्करैः = मुकुटानां रत्नानि सञ्चरत्हस्तैः त्रिदशैः देवैः, त्रिसन्ध्यम् = तिसृष्वपि सन्ध्यासु तस्यै दिशे तस्यै दिशायै नमः = प्रणामः, अकारि कृतः ।

अन्येषु लोकेषु भ्रमणशीलः राजलक्ष्म्याः निवासभूतः सः हिरण्यकशिपुः स्वेच्छया यां पूर्वादि दिशम् अध्यतिष्ठत् मुकुटानां रत्नानि सञ्चरत्हस्तैः देवैः तिसृष्वपि सन्ध्यासु तस्यै दिशायै प्रणामः कृतः।

व्याकरण-

भुवनान्तरेषु - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग सप्तमी विभक्ति बहुवचन।

समास - अन्यानि भुवनानि भुवनान्तराणि तेषु भुवनान्तरेषु ।

सञ्चरिष्णुः - उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन सम्+चर्+इष्णुच् ।

श्रियः - ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

आश्रयः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

सः- दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

यदृच्छया - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

याम् - दकारान्त (यद्) स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

अशिश्रियत्- क्रिया पद। श्रि लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

मुकुटोपलस्खलत्करैः - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन।

समास - मुकुटेषु उपलाः मुकुटोपलाः तेषु स्खलन्तः करा येषान्ते तैः।

त्रिदशैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

समास तिस्रः दशाः येषान्ते तैः

त्रिसन्ध्यम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

तस्यै - दकारान्त (तद्) स्त्रीलिङ्ग चतुर्थी विभक्ति एकवचन।

दिशै - ककारान्त स्त्रीलिङ्ग चतुर्थी विभक्ति एकवचन।

नमः - अव्यय। नमः के योग में ही यहाँ चतुर्थी है।

अकारि- क्रियापद। कृ लुलकार प्रथम पुरुष एकवचन।

प्रसङ्ग - इस श्लोक में नारदजी श्रीकृष्ण के पूर्वज शिशुपाल के पूर्वजन्म के विषय में बता रहे हैं, जब वह हिरण्यकशिपु के रूप में था और आपने नृसिंह अवतार लेकर उसका वध किया था, उस समय आपके गर्दन के बालों और नाखूनों का ओज अनुपम ही था-

सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंह ! सैहीमतनुं तनुं त्वया।

स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः ॥ 47 ॥

अन्वय - नृसिंह, अतनुं सैहीं तनुं बिभ्रता सटाच्छटाभिन्नघने त्वया सः मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गरैः नखैः उरोविदारं प्रतिचस्करे।

अथ सोऽपि त्वयैव हत इत्याह-

सर्वङ्कषा - सटाच्छटेति । हे नृसिंह नरः इवेत्युपमित समासाः ना चासौ सिंहश्चेति प्रस्तावात्। सिंहस्येमां सैहीं तनुं कार्य बिभ्रता-नृसिंहावतारभाजेत्यर्थः । किम्भूताम्। अंतनु-विस्तीर्णाम् ! अतएव सटाच्छटाभिः- केसरसमूहैः, भिन्नाः घनाः मेघा येन। अनङ्कषविग्रहत्वादिति भावः । 'सटा जटाकेसरयोः' इति 'तनुः काये कृशेऽल्पे च' इति च विश्वः । त्वया स दैत्यः । मुग्धौ नवौ। 'मुग्धः सौम्ये नवे मूढे' इति वैजयन्ती। बौ कान्तास्तनौ तयोः सङ्गेनापि भङ्गरैः- कुटिलैर्नखैरुरोविदारम्- उरोविदार्य। 'परिकलश्यमाने च' इति णमुल्प्रत्ययः । प्रतिचस्करे-हतः । किरतेः कर्मणि लिट्। 'ऋच्छत्यूताम्' इति गुणः। 'हिंसायां प्रतेश्च' इति सुडागमः । वज्रकठिनोऽपि नखैर्विदारित इति वाङ्मन-संयोरगोचरमहिम्नस्ते किमसाध्यमिति भावः ।

शब्दार्थ - नृसिंह हे नृसिंह, अतनुं विस्तीर्ण, सैहीं तनु सिंह के शरीर को, बिभ्रता धारण करने वाले, सटाच्छटाभिन्नघनेन गर्दन के बालों से मेघ को विदीर्ण करने वाले, त्वया = तुम्हारे द्वारा, सः = वह दैत्य, मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गरैः = नूतन कान्ता के स्तनों के सम्पर्क से भी टेढ़े हो जाने वाले, नखैः = नाखूनों से, उरोविदारं वक्षःस्थल फाड़कर, प्रतिचस्करे मार डाला गया।

अनुवाद - हे नृसिंह ! विस्तीर्ण सिंह के शरीर को धारण करने वाले, गर्दन के बालों से मेघ को विदीर्ण करने वाले आपके द्वारा वह दैत्य नूतन कान्ता के स्तनों के सम्पर्क से भी टेढ़े हो जाने वाले नाखूनों से वक्षःस्थल फाड़कर मार डाला गया।

संस्कृत व्याख्या: - नृसिंह! हे नृसिंहावतारधारिण ! भगवन् श्रीकृष्ण अतनुम्-
अतिविस्तीर्णा, सैहीम् = सिंहसम्बन्धिनीम् तनुं शरीरम्, विभ्रता = धारयता,
सटाच्छटाभिन्न-घनेन = केसरसमूहैः विच्छिन्नाः मेघा येन, त्वया भवता,
सहिरण्यकशिपुः, मुग्धकान्ता-स्तनसङ्गभङ्गुरैः = नवरमणीकुचस्पर्शमात्रवनैः, नखैः
करुहैः उरोविदारम् = हृदयविस्फारम् प्रतिचस्करे = हतः ।

नारदोमुनिः श्रीकृष्णं कथयति हे नृसिंहावतारधारिन् भगवन् श्रीकृष्ण।
अतिविस्तीर्णा सिंहसम्बन्धिनीं शरीरं धारयता केसरसमूहैः विच्छिन्नाः मेघाः येन
भवता हिरण्यकशिपुः नवरमणीकुचस्पर्शमात्रवनैः करुहैः हृदयविस्फारं हतः ।

व्याकरणः -

नृसिंह- अकारान्त पुल्लिङ्ग सम्बोधन।

समास- ना चासौ सिंहश्च इति।

अतनुम् - उकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

सैही- ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

तनुम् - उकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

विभ्रता - भृञ्+शतृ तकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचनं

सटाच्छटाभिन्नघनेन - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास - सटाच्छटाभिः भिन्नाः घनाः येन तेन।

त्वया- दकारान्त (युष्मद्) सर्वनाम तृतीया विभक्ति एकवचन।

सः- दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैः - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

समास - मुग्धौ यी कान्तास्तनौ तयोः सङ्गेन भङ्गुरैः इति।

नखैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन ।

उविदारम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन। उरस्+वि++ ण्मुल= ओविदारम्

प्रतिचस्करे-क्रियापद। प्रति+कृ+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन। हिंसायां प्रतेश्च' से सुट् का आगम।

छन्दः - वंशस्थ

अलंकार - विरोध ।

विशेषः - नृसिंह के नाखनों की यह विशेषता है कि वे इतने कोमल हैं कि नूतन कान्ता के स्तनों की कठोरता से उसके स्पर्श मात्र से टेढ़े होते जाते हैं। वहीं वे इतने कठोर हैं कि हिरण्यकशिपु जैसे दैत्य को मारने के लिये नृसिंह को किसी अन्य शस्त्र का अपेक्षा नहीं हुई, उन्होंने उन्हीं से उसके वक्षः स्थल को फाड़कर मार दिया।

स्वेच्छाकेसरिणः स्वच्छच्छायायासितेन्दवः ।

त्रायन्तां वो मधुरिपोः प्रपन्नार्तिच्छदो नखाः ॥ मंगलाचरण।

ध्वन्यालोककार ने इस मंगलाचरण में नृसिंह के इन्हीं नाखूनों की स्तुति की है-

प्रसङ्ग - अब नारदजी शिशुपाल के ही दूसरे जन्म का वर्णन करते हैं जब वह रावण हुआ, वास्तव में उसके भयङ्कर कार्यों के कारण ही उसका नाम रावण हुआ।

अथास्य जन्मान्तरचेष्टितान्याचष्टे-

विनोदमिच्छन्नथ दर्पजन्मनो रणेन कण्ड्वास्त्रिदशैः समं पुनः ।

स रावणो नाम निकामभीषणं बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः ॥48 ॥

अन्वय- अथ सः पुनः त्रिदशैः समं रणेन दर्पजन्मनः कण्ड्वाः विनोदम् इच्छन् दिवः क्षतरक्षणं निकामभीषणं रावणो नाम रक्षः बभूव ।

सर्वङ्कषा - विनोदमिति । अथ सः हिरण्यकशिपुः । पुनः भूयोऽपि त्रिदशैः समं-'सह साकं सार्धं समं सह' इत्यमरः। रणेन दर्पादन्तः साराज्जन्म यस्यास्तस्या, कण्ड्वाः- भुजकण्डूतेर्विनोदमपनोदमिच्छन् । प्राग्भवनखक्षतैस्तदपनोदाभावादित्यर्थः । दिवः-स्वर्गस्य, क्षतं नष्टं रक्षणं रक्षा येन तत्। क्षतद्युरक्षणमित्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । अनेन देवसर्वस्वापहारित्वमुक्तम्। भीषयत इति भीषणः । नन्दादित्वाल्ल्युः। 'भियो हेतुभये ष्क । निकामं भीषणः । 'सुप्सुपा इति समासः । रावणो नाम-रावण

इति प्रसिद्ध रक्षो बभूव । राक्षसयोनौ जात इत्यर्थः । विश्रवसोऽपत्यं पुमान् रावण इति विग्रहः । 'तस्यापत्यम्-इत्यणि कृते 'विश्रवसो विश्रवणरवणौ-' इति प्रकृते रवणादेशः। पौराणिकास्तु रावयतीति व्युत्पादयन्ति । तदुक्तमुत्तरकाण्डे- 'यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम्। तस्मात्वं, रावणो नाम नाम्ना वीरो भविष्यसि इति। रौतेर्ण्यन्तात्कर्तरि ल्युट् । रावणरक्षसोनियतलिङ्गत्वाद्विशेषणविशेष्यभावेऽपि स्वलिङ्गता।

शब्दार्थ - अथ अनन्तर, सः = वह (हिरण्यकशिपु), त्रिदशैः समं देवताओं के साथ, रणेन = युद्ध के द्वारा, दर्पजन्मनः अभिमानजन्य, कण्ड्वा = खुजली, विनोदम् = दूर करने की, इच्छन्- इच्छा करता हुआ। दिवः = स्वर्ग की; क्षतरक्षणम् रक्षा को नष्ट करने वाला, निकामभीषणं अत्यधिक भयङ्कर, रावणः नाम रावण नाम का, रक्षः बभूव राक्षस हुआ।

अनुवाद- अनन्तर वह देवताओं के साथ युद्ध के द्वारा अभिमानजन्य खुजली दूर करने की इच्छा करता हुआ स्वर्ग की रक्षा को नष्ट करने वाला अत्यधिक भयङ्कर रावण नाम का राक्षस हुआ।

संस्कृत व्याख्या: अथ अनन्तरं, सः हिरण्यकशिपुः, पुनः भूयोऽपि, त्रिदशैः = देवैः, समं सह, कण्ड्वाः बाह्योः कण्डूतेः, विनोदम् = अपनोदम्, इच्छन् = कामयन्

दिवः स्वर्गस्य, क्षतरक्षणम् नष्टं रक्षणयन् तत् निकामभीषणं, रावणो नाम = रावण इति नाम्नः प्रसिद्धो, रक्षः राक्षसो, बभूव = अजायत ।

अनन्तरं स हिरण्कशिपुः भूयोऽपि देवैः सह बाहवोः कण्डूतेः अपनोदं कामयन् स्वर्गस्य नष्टं रक्षणं येन तत् अतिभयङ्करं रावण इति नाम्नः प्रसिद्धो रक्षोऽजायत ।

व्याकरण:-

अथ अव्यय।

सः- दकारान्त (तद) सर्वनाम पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

पुनः - अव्यय ।

त्रिदशैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

समं- अव्यय ।

रणेन - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

दर्पजन्मनः- नकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

समास - दर्पोऽजन्म यस्याः सा दर्पजन्मा तस्याः ।

कण्ड्वा - उकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

विनोदं- अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

इच्छन् - तकारान्त पुल्लिङ्ग (इष्+शतृ) प्रथमा विभक्ति एकवचन।

दिवः - सकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

क्षतरक्षणं - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - क्षतं रक्षणं येन तत्।

निकामभीषण - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - भीषयते इति भीषणः निकामं भीषणः तम्।

रावणः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

नाम - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमाविभक्ति एकवचन ।

रक्षः - सकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमाविभक्ति एकवचन ।

बभूव - क्रियापद। भू+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

रावण मुनि विश्रवा का पुत्र था, किन्तु उसकी माँ कैकसी राक्षसी थी, उसके उत्पन्न होते ही तीनों लोकों को उसके भय उत्पन्न हुआ इसीलिये उसे रावण कहा गया है।

यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमयागतम् ।

तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना वीरो भविष्यसि ॥ वा.रा. उत्तर।

प्रसङ्ग - अब महाकवि रावण के प्रताप का वर्णन करते हैं, अपार ऐश्वर्य की कामना करते हुए उसने तीनों लोकों का स्वामी होने की इच्छा की और इस निमित्त किये गये उसके तप का ही वर्णन इस श्लोक में है-

कीदृशोऽसाविति इदानीं तद्वर्णनमाह-

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोऽतिरागादशमं चिकर्तिषुः ।

अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः ॥ 49 ॥

अन्वय भुवनत्रयस्य प्रभुः बुभूषः इष्टसाहसः यः अतिरागात् दशमं शि चिकर्तिषुः इच्छासदृशं पिनाकिनः प्रसादं विघ्नम् इव अतर्कयत्।

अथास्यौद्धत्यमष्टादशश्लोक्याऽऽचष्टे-

सर्वङ्कषा - प्रभुरिति यो रावणः भुवनत्रयस्य प्रभुः स्वामी बुभूषुः भवितुमिच्छुः भुवः सन्नन्तादुप्रत्ययः । अतिरागात्-उत्साहात् न तु फलविलम्बेन निर्वेदादिति भावः । दशमं शिरः चिकर्तिषु-कर्तितुं छेत्तुमिच्छुः । 'कृती छेदने' धातोः सन्नन्तादुप्रत्ययः । इष्टसाहस-प्रियसाहस, अतएवेच्छा सदृशम्-इच्छानुरूपं पिनाकिनः प्रसादं-वरं विघ्नमिवाऽतर्क्यदुत्प्रेक्षितवानिति परमसाहसिकत्वोक्तिः । इत आरभ्य श्लोक षट्कोऽपि यच्छब्दस्य 'स रावणो नाम रक्षो बभूवे' ति पूर्वेणान्वयः । 'रङ्गराजस्तु - न चक्रमस्या-क्रमताधिकन्धरम्' इति उपरिष्ठादन्वय इत्याह। तदसत्। 'गुणानां च परार्थत्वात्' इति न्यायादारुण्यादिवत्प्रत्येकं प्रधानान्वयिनां मिथः सम्बन्धायोगादित्यलं शाखाचङ् क्रमणेन । पुरा किल रावणः काम्ये कर्मणि पशुपतिप्रीणनाय नवशिरांस्यग्नौ हुत्वा दशमारम्भे सन्तुष्टात्तस्मात्त्रैलोक्याधिपत्यै वने इति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्ध्येय ।

शब्दार्थ- भुवनत्रयस्य = तीनों लोकों का, प्रभुः स्वामी, बुभूषुः = होने की इच्छा वाले, इष्टसाहसः साहसप्रिय, यः जिसने, अतिरागात् अत्यन्त अनुराग से, दशमं शिरः = दसवाँ सिर, चिकर्तिषुः = दसवाँ सिर काटने की इच्छा रखते हुए। इच्छा के अनुरूप, पिनाकिनः = शिव के, प्रसादंवर को, विघ्नमिव विघ्न के समान, अतर्क्यत् = माना।

अनुवाद - तीनों लोकों का स्वामी होने की इच्छा वाले, साहसप्रिय जिसने अत्यन्त अनुराग से दसवाँ सिर काटने की इच्छा रखते हुए इच्छा के अनुरूप शिव के वर को विघ्न के समान माना।

संस्कृत व्याख्या:- भुवनत्रयस्य लोकत्रयस्य, प्रभुः = ईश्वरः बुभूषुः = भवितुमिच्छुः, अतिरागात् = अत्युत्साहात् दशमं शिरः = दशमं मूर्धानं, चिकर्तिषुः = छेत्तुमिच्छुः इष्टसाहसः = साहसप्रियः, यः = रावणः, इच्छासदृशं = इच्छानुरूपं, पिनाकिनः = शिवस्य, प्रसादम् = वरम्, विघ्नम् इव = अन्तरायामिव, अतर्क्यत्-अमन्यत ।

लोकत्रयस्य ईश्वरः भवितुमिच्छु अत्युत्साहात् दशमं मूर्धानं छेत्तुमिच्छुः साहसप्रियः
रावणः इच्छानुरूपं शिवस्य वरम् अन्तरायमिव अमन्यत ।

व्याकरण-

भवनत्रयस्य- अकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन/aman

समास - भुवनानां त्रयं तस्य ।

प्रभुः- उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

बुभूषः भू+सन्+उ उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति

अतिरागात् - अकारान्त पुल्लिङ्ग पञ्चमी विभक्ति एकवचन।

दशमम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचनः।

शिरः- सकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

चिकर्तिषुः - उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन। कृती+सन्+उ, उकारान्त
पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

इष्टसाहसः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

यः- (यद्) तकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

इच्छासदृशम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

पिनाकिनः- नकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

प्रसादम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

विघ्नम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

इव- अव्यय ।

अतकयित्- क्रियापद । तर्क लङ् प्रथमपुरुष एकवचन ।

प्रसङ्ग - इस श्लोक में महाकवि रावण का वर्णन करते हुए उसके द्वारा कैलासपर्वत उठाने की घटना का वर्णन करते हैं। कैलासपर्वत उठाकर मानो उसने शिव पर उपकार ही कर दिया और याचना के दोष से भी बच गया, यह कवि की इस श्लोक में सुन्दर कल्पना है-

समुत्क्षिपन्त्यः पृथ्वीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः ।

त्रसत्तुषाराद्रिसुताससंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ॥ 50 ॥

अन्वय - वः पृथ्वीभृतां वरं समुत्क्षिपन् त्रसत्तुषाराद्रिसुताससंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेष सुखेन शूलिनः वरप्रदानस्य निष्क्रयम् चकार ।

अथ कैलासोत्क्षेपणवृत्तान्तमाह-

सर्वङ्कषा - समुत्क्षिपन्निति । यो रावणः पृथ्वीभृतां पर्वतानां, बरं-श्रेष्ठ कैलास । समुत्क्षिपन् । दर्पादिति शेषः । शूलिनो वरप्रदानस्य-पूर्वोक्तस्य त्रसन्न्या-शैलचलनेर बिभ्यत्यास्तुषाराद्रिसुतायाः पार्वत्याः ससंभ्रमौ यः स्वयङ्ग्रहः प्रियप्रार्थनां विना कण्ठ-ग्रहणम् । 'सुप्सुपा' इति समासः । तेन आश्लेषः सम्मेलनं तेन यत्सुखं तेन त्रैजाक्याधि-पत्यसुखादुत्कृष्टेनेति भावः । निष्क्रयं प्रत्युपकारनिर्गतिं । चकार । 'निष्क्रयो बुद्धियोगेस्या-त्सामर्थ्यं निर्गतावपि' इति वैजयन्ती । यद्वा निष्क्रय चकारः क्रयेण व्यवहारेण या वादोषदेन ममार्जेत्यर्थः अत्र सुखवरदानयोर्विनिमयात्परिवृत्तिरलंकारः ।

शब्दार्थ - यः = जिसने, पृथ्वीभृतां वरं पर्वतों में श्रेष्ठ (कैलाश पर्वत) को, समुत्क्षिपन्= उठाते हुए, त्रसत्तुषाराद्रिसुताससंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन = डरी हुई हिमालय की कन्या पर्वती के द्वारा घबड़ाहट में किए गए स्वयं आलिङ्गन के सुख

से, शूलिनः शूलधारी (शंकर) के, वरप्रदानस्य वरप्रदान का, निष्क्रयम् चकार = बदला चुका दिया।

अनुवाद - जिसने पर्वतों में श्रेष्ठ कैलाश पर्वत को उठाते हुए डरी हुई हिमालय की कन्या पार्वती के द्वारा घबड़ाहट में किए गए स्वयं आलिङ्गन के सुख से शूलधारी (शंकर) के वरप्रदान का बदला चुका दिया।

संस्कृत व्याख्या: - पृथिवीभृतां भूमिधारिणां, वरम्-श्रेष्ठम्, समुत्क्षिप्त्वा = उत्थापयन् यः = रावणः, त्रसत्तुषाराद्रिसुतासम्भ्रमस्वयङ्ग्रहाश्लेषसुखेन = बिभ्यत्या हिमालयस्य सुतायाः पार्वत्याः ससम्भ्रमेण स्वयमेव प्रियस्य प्रार्थनया विनैव कृतकण्ठ-ग्रहणालिङ्गनसुखेन, शूलिनः शिवस्य, वरप्रदानस्य वरदानस्य, निष्क्रयं = क्रयरहितं, चकार = कृतवान् ।

भूमिधारिणां श्रेष्ठं कैलासपर्वतम् उत्थापयन् रावणः बिभ्यत्या हिमालयस्य सुतायाः पार्वत्याः ससम्भ्रमेण प्रियस्य प्रार्थनया विनैव स्वयमेव कृतकण्ठग्रहणालिङ्गनसुखेन शिवस्य वरदानस्य क्रयरहितं कृतवान् ।

एकवचन । समुत्क्षिपन्- सम्+उत्+क्षिप्+शतृ तकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति

व्याकरण:-

यः- दकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

पृथिवीभृताम् - तकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

वरम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

त्रसत्तुषाराद्रिसुताससंभ्रमस्वयङ्ग्रहाश्लेषसुखेन अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास-त्रसन्ती चाऽसौ तुषाराद्रिसुता च त्रसत्तुषाराद्रिसुता, सम्भ्रमेण सहितः ससम्भ्रमः, ससम्भ्रमश्चासौ स्वयङ्ग्रहश्च ससम्भवस्वयङ्ग्रहः तेन य आश्लेषः त्रसत्तुषाराद्रि-सुतासमम्भ्रमस्वयङ्ग्रहाश्लेष, तेन यत्, सुख, तेन।

शूलिनः - नकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

वरप्रदानस्य - अकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

निष्क्रयम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

चकार- क्रियापद । कृ+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

अलंकार:- शिव जी ने रावण को वर प्रदान किया, किंतु रावण के कैलास पर्वत उठाने की क्रिया से भयभीत पार्वती ने स्वयं शिव का आलिङ्गन कर लिया, इससे शिव को अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ। इस प्रकार शिव को सुख देकर रावण ने उस वा का बदला चुका दिया। इसमें आश्लेष सुख और वरप्रदान दोनों में परस्पर विनिमय हो जाने के कारण परिवृत्ति अलंकार है।

विशेष:- जैसा कि पूर्व श्लोक में भी वर्णित है रावण ने तीनों लोकों का स्वामी होने के लिये अत्यन्त उग्र तप किया, यहाँ तक कि अपने नौ सिर भी उसने शिव की पूजा में अर्पित कर दिये, जिससे प्रसन्न होकर शिव ने उसे वर प्रदान किया। लेकिन गर्व से उद्धत रावण इससे भी सन्तुष्ट न था वह कैलास समेत शिव को लब्धा ले जाना चाहता था। जब इस निमित्त उसने हिमालय को उखाड़ना चाहा तो, वह पूरा काँपने लगा, जिससे पार्वती अत्यन्त भयभीत हो गई और अनायास ही बचने के लिये शिव के वक्ष से जा लगी। विना प्रार्थना के ही शिव को जो आलिङ्गन सुख प्राप्त हुआ, उससे प्रसन्न हुए शिव ने रावण के याचकत्व दोष को दूर कर दिया और वह शिव के वर प्रदान के ऋण से उऋण हो गया, यह महाकवि की अद्भुत कल्पना है।

प्रसङ्ग - शिव से वर प्राप्त कर रावण अत्यन्त शक्तिशाली हो गया फिर उसने न केवल पृथिवीलोक अपितु स्वर्गलोक तक उत्पात मचाया, फिर वह वास्तव में राक्षस ही प्रतीत हुआ।

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हराऽमराङ्गनाः ।

विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥51॥

अन्वय - यः बली नमुचिद्विषा विगृह्य पुरीम् अवस्कन्द, नन्दनं लुनीहि रत्नानि मुषाण, अमराङ्गनाः, हर, इत्थम् अहर्दिवम् दिवः अस्वास्थ्यं चक्रे ।

सर्वङ्कषा - पुरीमिति । यो बली-बलवान् रावणः । नमुचिद्विषा-इन्द्रेण। विगृह्य

विरुध्य । पुरीम् अमरावतीम् । अवस्कन्द अवरुोध । नन्दनम् इन्द्रवनम् । 'नन्दनं वनम् इत्यमरः । लुनीहि विच्छेद । 'ई हल्यघोः' इतीकारः । रत्नानि श्रेष्ठ वस्तुनि मणीन्या. 'रत्नं श्रेष्ठे मणावपि' इति विश्वः । मुषाण-मुमोष । 'मुष स्तेये' । 'हलः श्नः शानज्यौ' इति सः शानजादेशः । अमराङ्गनाः । हर-जहार। सर्वत्र पौनः पुन्येनेत्यर्थः । इत्थम् अने

प्रकारेण। अहनि च दिवा च अहर्दिवम्। अहन्यहनीत्यर्थः । 'अचतुर' इत्यादिना सप्तम्यर्थवृत्तौ द्वन्द्व समासान्तो निपातः। दिवः स्वर्गस्य । अस्वास्थ्यमुपद्रवं चक्रे । अत्रावस्कन्देत्यादौ 'क्रिया समभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमो' इत्यनुवृत्तौ 'समुच्चयेऽन्यतरस्याम्' इति विकल्पेन काल सामान्ये लोट्। तस्य यथोपग्रहं सर्वतिडादेशो हिस्वौच। प्रकरणादिना त्वर्थविशेषावसानम्। 'अतो हेः' इति यथायोग्यं हिलुक् । पौनः-पुन्यं भृशार्थोवा क्रिया समभिहारः। अवस्कन्दनादिक्रियाविशेषाणां समुच्चयः क्रिया समभिहारः तत्सामान्यस्य करोतेः 'समुच्चये सामान्यवचनस्य' इत्यनुप्रयोगः चक्रे इति। अत्र तिङ् वैचित्र्यात्सौशब्दाख्यो गुणः । 'सुपा तिङां परावृत्तिः' सौशब्दम् । इति लक्षणात्। समुच्चयाश्चालंकारः ।

शब्दार्थ - यः बली = जिस बलवान् रावण ने, नमुचिद्विषा नमुचि नामक राक्षस से द्वेष करने वाले इन्द्र से, विगृह्य विरोध करके, पुराम् (अमरावती) नगरी को, अवस्कन्दं घेर लिया, नन्दनं नन्दन वन को, लुनीहि काट डाला, रत्नानि =

रत्नों को, मुषाण चुरा लिया, अमराङ्गनाः देवाङ्गनाओं को, हर-हर लिया, इत्थम् इस प्रकार, अहर्दिवं प्रतिदिन, दिवः स्वर्ग में, अस्वास्थ्यं उपद्रव, चक्रे किया।

अनुवाद - जिस बलवान् रावण ने नमुचि नामक राक्षस से द्वेष करने वाले इन्द्र से विरोध करके अमरावती नगरी को घेर लिया, नन्दन वन को काट डाला रत्नों को चुरा लिया तथा देवाङ्गनाओं को हर लिया। इस प्रकार स्वर्ग में प्रतिदिन उपद्रव किया।

संस्कृत व्याख्या:- बली बलवान्, यः रावणः, नुमचिद्विषा = इन्द्रेण सह विग्रहय = विरोधं कृत्वा, पुरीम् अमरावतीपुरीं, अवस्कन्द अवरोध, नन्दनम् = नन्दनकाननम्, लुनीहि विच्छेद, रत्नानि विविधमणिमौक्तिकादीनि, मुषाण = मुमोष, अमराङ्गनाः देवाङ्गनाः, हर जहार, इत्थम् एवम्, अहर्दिवम् = प्रतिदिनम्, दिवः = स्वर्ग, अस्वास्थ्यं उपद्रवं, चक्रे कृतवान् ।

बलवान् यः रावणः इन्द्रेण सह विरोधं कृत्वा अमरावती पुरीं अवरोध, नन्दनकाननं विच्छेद विविधमणिमौक्तिकादीनि मुमोष, देवाङ्गनाः जहार, एवं प्रतिदिनं स्वर्गम् उपद्रवं कृतवान् ।

व्याकरण-

बली - नकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

यः- दकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

नुमचिद्विषा - षकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास - नुमचिम् द्वेष्टि इति नुमचिद्विट् तेन

विग्रहाः वि+ग्रह्+ल्यप्-अव्यय ।

पुरीम् - ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

अवस्कन्द - क्रियापद। अव स्कन्द्+लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन।

नन्दनम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

लुनीहि - क्रियापद। लूञ्+लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन।

रत्नानि - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन।

मुषाण - क्रियापद। मुष्+लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन ।

अमराङ्गनाः- आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - अमराणाम् अङ्गनाः इति अमराङ्गनाः। अहनि च दिवा च अहर्दिवम्।

हर- क्रियापद। ह+लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन ।

इत्थम् - अव्यय ।

अहर्दिवम्: अव्यय। अहनि च दिवा च।

दिवः- सकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

स्थास्थ्यं- अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

चक्रे- क्रियापद। कृ+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

अलंकार:- इस श्लोक में रावण के उपद्रवों का समुच्चय होने से समुच्चय अलंकार है।

विशेष: यह श्लोक भी महाकवि माघ के व्याकरण ज्ञान का सुन्दर निदर्शन है। अवस्कन्द, लुनीहि, मुषाण, हर आदि क्रियायें यद्यपि लोट् लकार की हैं, तथापि यहाँ इनका अर्थ भूतकालिक किया के रूप है। 'समुच्चयेऽन्यतरस्याम्' से क्रिया समभिहार अर्थ में जब एक ही कर्ता द्वारा अनेक कार्यों को बार-बार किया जाता है। तो विकल्प से वहाँ लोट् लकार का प्रयोग होता है तथा एक सामान्य क्रिया का अनुप्रयोग भी होता है। जैसा यहाँ लिट्परक कृ का अनुप्रयोग करके चक्रे रूप का प्रयोग है। जिससे ये सभी धातुयें भी भूतकालिक हो गई हैं।

प्रसङ्ग - रावण के प्रताप का ही वर्णन करते हुए महाकवि लिखते हैं कि उसने स्वर्ग में ऐसा उपद्रव मचाया कि उससे डरकर इन्द्र भी स्वर्ग से पलायन कर गये हैं।

सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमोर्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम् ।

अनुद्रुतः संयति येन केवलं बलस्य शत्रुः प्रशंशस शीघ्रताम् ॥52 ॥

अन्वय - संयति येन अनुद्रुतः बलस्य शत्रुः न अनमोः भर्तुः सलीलयातानि (प्रशंशस), न उच्चैः श्रवसः चित्रं पदक्रमं (प्रशंशस) केवलम् शीघ्रताम् प्रशंशस ।

सर्वङ्कषा - सलीलेति। संयति युद्धे। 'समुदायः स्त्रियां संयत्समित्या-जिसमिद्युधः' इत्यमरः । येन-रावणेन। अनुद्रुतोऽनुधावितः, बलस्य शत्रुः इन्द्रः । अभ्रमोर्भर्तुः ऐरावतस्य । सलीलयातानि सभङ्गीकगमनानि न प्रशंशस। तथा उच्चैःश्रवसः-स्वाश्वस्य । चित्रं-नानाविधं। पदक्रमं पादविक्षेपम्। अर्धपलायितादिगतिविशेषमित्यर्थः । न प्रशंशस। किन्तु केवल शीघ्रतां शीघ्रगामित्वमेव प्रशंशस। अन्यथा शीघ्रं मामास्कन्ध ग्रहीष्यतीति भयादिति भावः।

शब्दार्थ - संयति युद्ध में, येन जिसके द्वारा, अनुद्रुतः = पीछा किये जाते हुये, बलस्य बल नामक राक्षस के, शत्रुः इन्द्र ने, न अनमोः भर्तुः न अभ्रमु के पति ऐरावत हाथी के, सलीलयातानि लीला पूर्वक गमन की (प्रशंसा की), न उच्चैः श्रवसः = न उच्चैः श्रवा के, चित्र पदक्रमं नाना प्रकार की चाल की (प्रशंसा की), केवलम्, शीघ्रताम् शीघ्रता की, प्रशंशस प्रशंसा की।

अनुवाद - युद्ध में जिसके द्वारा पीछा किये जाते हुए बल नामक राक्षस के शत्रु इन्द्र ने न अभ्रमु के पति ऐरावत हाथी की प्रशंसा की न उच्चैःश्रवा (घोड़े) की नाना प्रकार की चाल की प्रशंसा की, केवल शीघ्रता की प्रशंसा की।

संस्कृत व्याख्या - संयति= संग्रामे, येन रावणेन, अनुद्रुतः, अनुधावितः, बलस्य शत्रुः = बलनाम्नोऽसुरस्य रिपुः, अभ्रमोः = पूर्वदिक्करिण्याः, भर्तुः स्वामिनः,

सलीलयातानि = सविलासगतीः न, प्रशंसः न श्लाघयामास, उच्चैःश्रवसः = एतन्नाम्नः स्वकीयस्य अश्वस्य, चित्रं विचित्रं, पदक्रमम् = पादप्रक्षेपं न, (श्लाघयामास), केवलम्-एकाम् शीघ्रतामेव = तीव्रगतिमेव ।

बलनाम्नोऽसुरस्य रिपुः अर्थात् इन्द्रः पूर्वदिक्करिण्याः स्वामिनः सविलासगतीः न श्लाघयामास उच्चैः श्रवा इति नाम्नः स्वकीयस्य अश्वस्य विचित्रं पादप्रक्षेपं न श्लाघयामास अपितु तस्य एकां तीव्रगतिमेव श्लाघयामास ।

व्याकरणः - संयति - तकारान्त स्त्रीलिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन।

येन:- दकारान्त (यद्) पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

अनुद्रुत:- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

बलस्य - अकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

शत्रु:- उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

न- अव्यय ।

अनमोः - उकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

भर्तुः ऋकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

सलीलयातानि - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

न- अव्यय

उच्चैः श्रवसः - सकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

चित्रं- अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

पदक्रमम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

केवलम् - अव्यय ।

शीघ्रताम्- आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

प्रशंशस- क्रियापद। प्रशंस+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

विशेषः - इस श्लोक में भयभीत इन्द्र का विरोध सहित बहुत सुन्दर वर्णन हुआ है। अब तक इन्द्र को अपने ऐरावत के विलासपूर्वक मन्द मन्द चलने पर गर्व था उसी की प्रशंसा किया करता था, इसी प्रकार उच्चैः श्रवा नामक अपने घोड़े के विचित्र पादन्यासों पर वह गर्व करता था, किन्तु जब रावण ने स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया और उसे स्वर्ग से भागना पड़ा क्योंकि ये दोनों विशेषतायें ही विरोधी हो गईं और वह इनकी प्रशंसा न कर सका, अपितु इनकी तेजगति से भागने की ही प्रशंसा कर सका ताकि स्वयं की रक्षा कर सके।

प्रसङ्ग - इस श्लोक में भी रावण से भयभीत इन्द्र का वर्णन करते हुए महाकवि लिखते हैं कि वह रावण से डरकर उल्लू की भाँति पर्वत की गुफा में छिपकर रहने लगा।

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः सहस्रशमेरिव यस्य दर्शनम् ।

प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निनाय बिभ्यद्दिवसानि कौशिकः 1153 ॥

अन्वय - अधीरलोचनः कौशिकः सहस्रशमेः इव यस्य दर्शनं सोढुम् अशक्नुवन् हेमाद्रिगुहागृहान्तरे प्रविश्य बिभ्यत् दिवसानि निनाय ।

सर्वङ्कषा - अशक्नुवन्निति । अधीर लोचनः अस्थिरदृष्टिः। कौशिकः महेन्द्रः, उलूकश्च 'महेन्द्रगुग्गुलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः इत्यमरः । सहस्रशमेः-सूर्यस्येव । यस्य-रावणस्य विक्रमकर्मणः, दर्शनं सोढुमनुवन्। हेमाद्रेर्गृहैव गृहं तस्यान्तरं प्रविश्य बिभ्यत् तत्रापि वेपमान एव । बिभीतेः शतरि 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमभावः । दिवसानि-वासराणि। निनाय। वा तु क्लीबे दिवसवासरी इत्यमरः। यथा पेचकः सूर्योदये भीतः सन्तिष्ठति तथा सोऽपीति भावः। कौशिक इत्यभिधायाः

प्रस्तुतैकगोचरत्वेनोभयश्लेषेऽपि विशेष्यश्लेषासम्प्रवादुलूकविषयशब्दशक्तिमूलो ध्वनिः। सहस्ररश्मेरिवेत्युपमाननिर्वाह-कत्वाद्वाच्यसिद्धयङ्गम् ।

शब्दार्थ - अधीरलोचनः अधीरनेत्रों वाले, कौशिकः = इन्द्र ने, सहस्ररश्मेः इव = सूर्य के समान, यस्य दर्शनं जिसके दर्शन, सोढुम् = सहन करने के लिये, अशक्नुवन् = असमर्थ होकर, हेमाद्रिगुहागृहान्तरं हेमाद्रि पर्वत की गुफा में, प्रविश्य प्रवेश करके, दिवसानि दिन, निनाय = बिताये ।

अनुवाद - अधीर नेत्रों वाले इन्द्र ने (उल्लू ने) सूर्य के समान जिसके दर्शन में असमर्थ होकर हेमाद्रि (हिमालय) की गुफा में प्रवेश करके दिन बिताये।

संस्कृत व्याख्या: - अधीरलोचनः = कातरदृष्टिः, कौशिकः = महेन्द्रः, उलूकः, सहस्ररश्मेः = सूर्यस्य, इव, यस्य रावणस्य, दर्शनम् = प्रेक्षणम् सोढुम् = मर्षयितुम्, अशक्नुवन् अपारयन् हेमाद्रिगुहागृहान्तरम् = सुमेरुपर्वतस्य कन्दानिकेतनाभ्यन्तरम्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, बिभ्यत्वेपमान एव, दिवसानि दिनानि, निनाय = नयति स्म।

कातरदृष्टिः स महेन्द्रः यथा उलूकः सूर्यस्य इव तथैव रावणस्य प्रेक्षणं मर्षयितुम् अपारयन् हेमाद्रिगुहागृहान्तरं सुमेरुपर्वतस्य कन्दरानिकेतनाभ्यन्तरं प्रवेशं कृत्वा वेपमान एव दिनानि नयति स्म।

व्याकरणः -

अधीरलोचनः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - अधीराणि लोचनानि यस्य सः।

समासः अधीरे लोचने यस्यासौ।

कौशिकः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

सहस्ररश्मेः - इकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन् ।

सहस्रं रश्मयो यस्य तस्य

इव- अव्यय ।

यस्य- (पद) दकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

दर्शनम्-अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

सोढुम् - अव्यय । सह+ तुमुन् ।

अशक्नुवन् - तकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन । नञ्+शक्+शतृ ।

हिमाद्रिगृहगुहान्तरम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - हेम्नोऽद्रिस्तस्य हेमाद्रेः, हेमाद्रेः गुहा एव गृहम्।

हेमाद्रिगुहागृहं तस्याभ्यन्तरं तत् ।

प्रविश्य - अव्यय । प्र+विश्+ल्यप् ।

बिभ्यत्- भीञ्+शतृ तकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

दिवसानि - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

निनाय क्रियापद। नी+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

छन्द- वंशस्थ

व्यंग्य - यह वाच्यसिद्धयङ्ग के गुणीभूतव्यंग्य का उदाहरण है।

अलंकारः - उपमा। श्लेष। इस श्लोक में इन्द्र की उलूक से उपमा दी गई है अतः उपमा अलंकार है। कौशिक पद का अर्थ इन्द्र और उलूक दोनों ही होते हैं। यह श्लोक दोनों के सन्दर्भ में घटित होता है। अतः यहाँ श्लेष अलंकार भी है।

विशेषः - इस श्लोक में कौशिक पद से इन्द्र और उलूक दोनों को ही कहा गया है। इन्द्र रावण के स्वर्ग पर कब्जा कर लेने से इतना डर गया था कि वह

उससे डरकर सुमेरु पर्वत की गुफा में छिपकर रहने लगा जैसे सूर्य के तेज से अभिभूत होकर उल्लू गुफा में रहता है।

प्रसङ्ग - इस श्लोक भी रावण के ही पराक्रम का वर्णन करते महाकवि कहते हैं, कि केवल इन्द्रादि देवता ही नहीं, अपितु स्वयं भगवान् विष्णु का चक्र भी रावण की गर्दन को काटने में असमर्थ ही रहा-

**बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनाद्विकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः ।
जगत्प्रभोरप्रसहिष्णु वैष्णवं न चक्रमस्याक्रमताधिकन्धरम् ॥54 ॥**

अन्वय - बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात् विकीर्णलोलाग्निकणम् अप्रसहिष्णु वैष्णवं चक्रं जगत्प्रभोः सुरद्विषः अस्य अधिकन्धरम् न अक्रमत् ।

सर्वङ्कषा - बृहच्छिलेति । बृहति शिलेव निष्ठुरे कण्ठे घट्टनात् अभिघातात् विकीर्णा विक्षिप्ताः । लोलाश्चाग्निकणाः स्फुलिङ्गा यस्य तत् । अतएव अप्रसहिष्णु अनभिभावकम् । प्रसहनमभिभव इति वृत्तिकारः । 'अलङ्कञ्' इत्यादिना इष्णुच् । वैष्णवं चक्रं सुदर्शनं जगत्प्रभोः सकललोकैकस्वामिनः । अस्य सुरद्विषो रावणस्य । कन्धरायामधि अधिकन्धरम् अधिग्रीवम् । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । 'अव्ययीभावश्च' इति नपुंसकत्वात् 'हुस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' इति ह्रस्वत्वम् । 'कण्ठो गलोऽथ ग्रीवाया शिरोधिः कन्धरेत्यपि इत्यमरः । नाक्रमत अप्रतिहतं न क्रमते स्म । न प्रवर्तते स्म । किन्तु प्रति-हतमेवेत्यर्थः । 'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' इति वृत्तावात्मनेपदम् । वृत्तिरप्रतिबन्धः ।

शब्दार्थ :- बृहच्छिलाग्निकणम् = निकली हुई चंचल चिनगारियों वाला, अप्रसहिष्णु = अभिभव न कर सकने वाला, वैष्णवं चक्रं विष्णु का चक्र, जगत्प्रभोः = संसार के स्वामी, सुरद्विषः देवताओं के शत्रु, अस्य इस (रावण) की, अधिकन्धरं = गले में न अक्रमत = प्रवृत्त नहीं हो सका।

अनुवाद - विशाल शिला के समान कठोर कण्ठ पर टकराने से निकली हुई चंचल चिनगारियों वाला, अभिभव न कर सकने वाला विष्णु का चक्र, संसार के स्वामी इस रावण के गले में प्रवृत्त नहीं हो सका।

संस्कृत व्याख्या: - बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात् = विशाला या शिला सेव निष्ठुरे कण्ठे संघर्षणात्, विकीर्णलोलाग्निकणम् = विक्षिप्तचञ्चलस्फुलिङ्गम् अप्रसहिष्णु = असहनशीलम्, वैष्णवं = विष्णुसम्बन्धिनम्, चक्रं = सुदर्शनचक्रे, जगत्प्रभोः = परमेश्वरस्य सुरद्विषः देवानां शत्रोः, अस्य रावणस्य, अधिकंधरम् = कन्धरायामपि न, अक्रमत न अप्रवर्तत ।

विशाला या शिला सेव निष्ठुरे कण्ठे संघर्षणात् विक्षिप्तचञ्चलस्फुलिङ्गम् असहनशीलम् विष्णुसम्बन्धि सुदर्शनचक्रं परमेश्वरस्य देवानां शत्रोः रावणस्य कन्धरायामपि न अप्रवर्तत।

व्याकरण: -

बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात्-अकारान्त नपुंसकलिङ्ग पञ्चमी विभक्ति एकवचन।

समास - बृहती चासौ शिला चेति बृहच्छिला, सेव निष्ठुरः यः कण्ठः तत्र घट्टनं तस्मात् ।

विकीर्णलोलाग्निकणम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - विकीर्णाः लोलाः अग्नेः कणाः यस्य तत् ।

अप्रसहिष्णु - उकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

वैष्णवम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

चक्रम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

अस्य - तकारान्त (इदम्) पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

संरद्विषः षकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

समास - सुरान् द्वेष्टि सुरद्वित्, तस्य ।

अधिकन्धरम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - कन्धरायामिति

व- अव्यय ।

अक्रमत - क्रियापद। लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

विशेष:- रावण की गर्दन मानो विशाल शिलाओं के समान कठोर थी। इसलिये उसे काटने में कोई भी समर्थ नहीं था। जब विष्णु ने भी उसे मारने के लिये अपना सुदर्शन चक्र चलाया तो लौहखण्ड से टकराने के समान उसमें से चंचल अग्निकण ही निकलने लगे, किन्तु वह भी उसकी गर्दन को काटने में सक्षम न हो सका।

प्रसङ्ग - रावण ने अपने प्रताप से शिव, विष्णु, इन्द्रादि देवों को ही अव्यस्थित नहीं किया, अपितु अपने ही बड़े भाई कुबेर के मन को भी वैसे ही प्रकम्पित कर दिया जैसे हाथी मानसरोवर के जल को प्रकम्पित कर देता है।

**विभिन्नशङ्खः कलुषीभवन्मुहुर्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः ।
निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुष्पकं प्रकम्पयामास न मानसं न सः ॥55 ॥**

अन्वय - मदेन दन्ती इव विभिन्नशङ्खः सः कलुषीभवत् निरस्तगाम्भीर्यम् अपास्तपुष्पकं मनुष्यधर्मणः मानसं मुहुः न प्रकम्पयामास (इति) न।

सर्वङ्कषा - विभिन्नेति । स रावणो मदेन दर्पण, इभदानेन च। 'मदो दर्पेभदानवोः'

इति विश्वः । दन्तीव-गज इव। विभिन्नो विघटितः। शङ्खो-निधिभेदः, कम्बुश्च येन सः (सन्) 'शङ्खो निध्यन्तरे कम्बुललाटास्थिनखेषु च' इति विश्वः। अकलुषं कलुषं

सुब्धमाविलं च भवत् कलुषीभवत् निरस्तं गाम्भीर्यम् अविकारित्वं अगाधत्वं च यस्य तत्। अपास्तानि पुष्पाणि पुष्पकं विमानं च यस्मात्तत् पुष्पपक्षे वैभाषिकः कप्प्रत्ययः । मनुष्यस्येव धर्मः श्मश्रुलत्वादिर्यस्येति स्वामी। तस्य मनुष्यधर्मणः । 'धर्मादनिच्केवलात्' इत्यनिच्। मानसं चित्तं, तदीयं सरश्च। 'मानसं सरसि स्वान्ते' इति विश्वः । मुहुर्न कम्पयामास न-क्षोभयामासेति न, किन्तु कम्पयासासैवेत्यर्थः । कुबेरस्य महामहिमतया सम्भाविताप्रकम्पित्वनिवारणाय नञ्वयम्। 'सम्भाव्यनिषेधनिवर्तन नञ्द्वयम्' इति वामनः । अत्र दन्तिरावणयोः प्रकृताऽप्रकृतयोः श्लेषः ।

शब्दार्थः हाथी के पक्ष में मदेन गजमद से, दन्ती इव गजराज के समान, विभिन्नशङ्खः = शंख को तोड़ देने वाले, सः उस हाथी ने, कलुषीभवत् = पङ्किल होते हुए, निरस्तगाम्भीर्यम् गहराई से रहित किये गये, अपास्तपुष्पकम् = पुष्पों से रहित किये गये, मनुष्यधर्मणः = कुबेर के, मानसम्मानसरोवर को, मुहुः बार-बार, नः = नहीं प्रकम्पयामास प्रकम्पित नहीं किया (अपितु किया ही)।

कुबेर के पक्ष में-मदेन दर्प से, दन्ती इव गजराज के समास, विभिन्नशङ्खः = कुबेर की शंख नामक निधि को तोड़ देने वाला सः = उस रावण ने, कलुषीभवत् क्षुब्ध होते हुए, निरस्तगाम्भीर्यम् गम्भीरता से रहित किये गये, अपास्तपुष्पकम् = परित्यक्त पुष्पक विमान वाले मनुष्यधर्मणः कुबेर के मानसम्मान को, मुहुः = बार-बार न= नहीं प्रकम्पयामास = प्रकम्पित किया (अपितु अवश्य ही किया)

अनुवाद - हाथी के पक्ष में-मदजल से गजराज के समान शङ्ख को तोड़ देने वाले हाथी ने पङ्किल होते हुए गहराई से रहित किये गये तथा पुष्पों से रहित किये गये कुबेर के मानसरोवर को बार-बार प्रकम्पित नहीं किया अपितु अवश्य ही किया।

कुबेर के पक्ष में दर्प से गजराज के समान कुबेर की शंख नामक निधि को तोड़ देने वाले उस रावण ने क्षुब्ध होते हुए गम्भीरता से रहित किये गये तथा

परित्यक्त पुष्पक विमान वाले कुबेर के मन को बार-बार प्रकम्पित नहीं किया अपितु अवश्य ही किया।

संस्कृत व्याख्या:- गजस्य पक्षे-भदेन मदजलेन, दन्ती इव = गज इव, विभिन्नशङ्खः = प्रस्फुटितः कपोलास्थि विशेषः यस्य सः, सः हस्ती, कलुषीभवत् = मलिनीभवत्, निरस्तगाम्भीर्यम् = दूरीकृतागाधताम्, अपास्तपुष्पकम् = विनाशितानि यस्य पुष्पाणि, मनुष्यधर्मणः = कुबेरस्य, मानसम्मानसरोवरम् मुहुः = वारं वारं न प्रकम्पयामास = प्रकम्पितवान् । कुबेरस्य पक्षे मदेन दर्पण, दन्ती इव गज इव, विभिन्नशङ्खः = नष्ट-शङ्खनिधिः सः = रावणः, कलुषीभवत् = विक्षोभं गच्छत्, निरस्तगाम्भीर्यम् = विनाशिता-विकारित्वम्, अपास्तपुष्पकम् = परित्याजितपुष्पकाख्यविमानम्, मनुष्यधर्मणः = कुबेरस्य, मानसम्मानः, मुहुः = वारं वारं, न= नहि प्रकम्पयामास प्रकम्पितवान् अपितु कम्पितवान् एव।

गजस्य पक्षे-मदजलेन गज इव, प्रस्फुटितः कपोलास्थिः विशेषः यस्य सः. हस्ती, मलिनीभवत्, दूरीकृतागाधताम् विनाशितानि यस्य पुष्पाणि तस्य कुबेरस्य मानसरोवरं वारं वारं न प्रकम्पितवान् ।

कुबेरस्य पक्षे-दर्पण गज इव नष्टशङ्खनिधिः सः रावणः विक्षोभं गच्छत्, विनाशिताविकारित्वम् परित्याजितपुष्पकाख्यविमानम्, कुबेरस्य मनः वारवारं न हि प्रकम्पितवान् अपितु प्रकम्पितवान् एव ।

व्याकरणः -

मदेन-अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन ।

दन्ती- नकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

इव- अव्यय

विभिन्नशङ्खः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - विभिन्नशंखः येन सः

सः- दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

कलुषीभवत् - ऋकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

कलुष+च्चि+भू+शतृ कलुषीभवत्

निरस्तगाम्भीर्यम्-अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - निरस्त गाम्भीर्यम् यस्य तत्।

अपास्तपुष्पकम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - अपास्तं पुष्पकं यस्मात्तत् ।

मनुष्यधर्मणः - नकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

मनुष्यस्येव धर्मोऽस्य तस्य

मानसम्- अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

मुहः न- अव्यय ।

प्रकम्पयामास - क्रियापद। प्र+कम्प्+लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

छन्दः - वंशस्थ ।

अलंकारः श्लेष । इस सम्पूर्ण श्लोक के रावण और गजराज दोनों के सन्दर्भ में घटित होने से दो अर्थ होते हैं। इसलिये श्लेष है।

सही जोड़ी बनाइये

(क) पाणी -	(क) सिर
(ख) मुहर्ना -	(ख) सिंहासन
(ग) आसन -	(ग) हस्त
(घ) यदा -	(घ) उस समय
(ङ) तदा -	(ङ) इस समय

13.4 सार संक्षेप -

शिशुपाल वध के प्रथम सर्ग में 55 श्लोक तक व्याख्या के अंतर्गत व्याकरण भावार्थ आदि को समाहित कर प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है । व्याख्यात्मक शैली का अध्ययन करने से श्लोक आदि के माध्यम से अध्याय में प्रस्तुत किया गया ।

13.5 मुख्य शब्द

1. मुहुः = बार-बार
2. न= नहीं
3. प्रकम्पयामास = प्रकम्पित किया
4. नन्दनं -नन्दन वन को

13.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) 2. (क) 3(ख) 4(ङ) 5(घ)

13.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिशुपालवध-महाकवि माघ, व्याख्या-महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथ-पंडित दुर्गा प्रसादेन- महामहोपाध्याय पंडित शिवदत्तेन, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, दशम संस्करण
2. पंडित जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, शिशुपालवध- महाकवि माघ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७२
3. श्री रामजी लाल शर्मा, शिशुपालवध- महाकवि माघ, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, १९९०
4. श्री अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री, शिशुपालवधरहस्यम्, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, १९९९

5. डॉ. श्रद्धा सिंह, शिशुपालवध-महाकवि माघ, व्याख्या- जगदीश संस्कृत
पुस्तकालय, जयपुर, २०१२

13.8 अभ्यास प्रश्न

निम्न श्लोकों की व्याख्या कीजिये -

1. विभिन्नशङ्खः कलुषीभवन्मुहुर्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः ।
निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुण्यकं प्रकम्पयामास न मानसं न सः ॥
2. सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमोर्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम् ।
अनुद्रुतः संयति येन केवलं बलस्य शत्रुः प्रशंशस शीघ्रताम् ॥

इकाई -14

शिशुपाल प्रथम सर्ग के 56 से 75 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

- 14.1 प्रस्तावना
 - 14.2 उद्देश्य
 - 14.3 शिशुपालवध के 56 से 75 श्लोकों की व्याख्या
 - 14.4 सार संक्षेप -
 - 14.5 मुख्य शब्द
 - 14.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर
 - 14.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
 - 14.8 अभ्यास प्रश्न
-

14.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत सर्ग में शिशुपाल वध में प्रथम सर्ग में वर्णित श्लोकों में से कतिपय श्लोकों की क्रम से व्याख्या की गई है। विगत इकाइयों में शिशुपाल वध के परिचय तथा उनके प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात श्लोक के माध्यम से इस महाकाव्य का अध्ययन किया गया है। संस्कृत भाषा में श्लोक का विशिष्ट महत्व है तथा महाकाव्य के अध्ययन में उनके परिचय आदि के साथ श्लोक का समन्वय कर इसे पूर्ण करने का प्रयास किया गया है।

14.2 उद्देश्य

1. प्रथम सर्ग की कथावस्तु को श्लोक के माध्यम से समझ सके।
 2. श्लोकों के साथ व्याकरण तथा व्याख्या की शैली से परिचित हो सके।
 3. महाकाव्य की कथा का क्रमबद्ध श्लोक के साथ संबंध अध्ययन जान सके।
 4. सर्ग की विशेषताओं को श्लोक का अध्ययन कर समझ सके।
-

14.3 शिशुपाल प्रथम सर्ग के 56 से 75 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

प्रसङ्ग - दूसरे दिग्पाल यमराज पर भी रावण ने विजय प्राप्त कर ली, प्रतीक स्वरूप में उसने यम के भैंस के सींग ही उखाड़ लिये, इसी का वर्णन नारदमुनि इस श्लोक में कर रहे हैं-

परेतभर्तुर्महिषोऽमुना धनुर्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः ।

हृतेऽपि भारे महत्स्त्रपाभरादुवाह दुःखेन भृशानतं शिरः ॥ 57 ॥

अन्वय - अमुना धनुः विधातुम् उत्खातविषाणमण्डलः परेतभर्तुः महिषः भारे हृतेऽपि महतः त्रपाभरात् भृशानतं शिरः दुःखेन उवाह।

सर्वङ्कषा - परेतभर्तुरिति । अमुना-रावणेन, धनुः शाङ्गः, विधातुम्-निर्मातुम्, उत्खातमुत्पाटित विषाणयोः शृङ्गयोर्मण्डलं वलयं यस्य स परेतभर्तुर्यमस्य महिषः । वाहनभूत इति भावः । भारे-विषाणरूपे। भृजो घञ्। हृतेऽपि, महत्स्त्रपैव भरस्तस्मात् । ततोऽपि दुर्भरादिति भावः भृधातोः क्रैयादिकात् 'ऋदोरप्' इत्यप्प्रत्ययः । भृशमत्यर्थमानतं-नम्र शिरो दुःखेनोवाह-वहति स्मः असंयोगाल्लिट् कित् इति कित्वात् वचिस्वपिः इत्यादिना सम्प्रसारणम्। हृतेऽपि भारे नतमिति विरोधः तदुप्राणिता चेयमवनतिहेतुत्व-साधर्म्यात्त्रपा भारत्वोत्प्रेक्षा ।

शब्दार्थ - अमुना = रावण के द्वारा, धनुः विधातुं धनुष बनाने के लिए, उत्खातविषाणमण्डलः = जिसका सींगों का वलयाकार भाग उखाड़ा गया था (ऐसा), परेतभर्तुः = यम का, महिषः = भैंसा, भारे हृतेऽपि भार कम कर दिए जाने पर भी, त्रपाभरात् लज्जा के भार से, भृशानत अत्यन्त झुके हुए, शिरः सिर को, दुखेन उवाह कष्ट पूर्वक धारण करता था।

अनुवाद - रावण ने धनुष बनाने के लिए जिसका सींगों का वलयाकार भाग उखाड़ लिया था ऐसा यम का भैंसा भार कम कर दिए जाने पर भी लज्जा के भार से अत्यन्त झुके सिर को कष्टपूर्वक धारण करता था।

संस्कृत व्याख्या: - अमुना-रावणेन, धनुः-शाङ्ग, विधातुम् = निर्मातुम्, उत्खातविषाणमण्डलः = उत्पाटितशृङ्गयोर्मण्डलं यस्य सः, परेतभर्तुः = यमराजस्य महिषः = वाहनभूतः भारे = शिरः स्थितविषाणमण्डलरूपे स्थिते भारे, हृतेऽपि = समुत्पाटितेऽपि महतः = परमः, त्रपात्ररात् लज्जाभारात्, भृशानतम् = अतिनम्रीभूतं, शिरः = मस्तकम् दुःखेन कष्टेन, उवाह वहति स्म । रावणेन स्वकीयं शाङ्ग निर्मातुम् उत्पाटितशृङ्गयोर्मण्डलं यस्य सः यमराजस्य वाहनभूतः शिरःस्थितविषाणमण्डलरूपे स्थिते भारे समुत्पाटितेऽपि परमः लज्जाभारात् अतिनम्रीभूतं मस्तकं कष्टेन वहति स्म । यस्य सः । समासः - उत्खात विषाणयोः मण्डलं विषाणमण्डलम्, उत्खातविषाणमण्डलं

व्याकरणः - अमुना - सकारान्त (अदस्) पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

धनुः - उकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

विधातुम्- अव्यय। वि+धा+तुमुन्

उत्खातविषाणमण्डलः अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

परेतभर्तुः - ऋकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

समास परेताना भर्ता तस्य

महिषः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

भारे हृते - अकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन।

सति सप्तमी के योग में सप्तमी अपि अव्यय

महतः - तकारान्त पुल्लिङ्ग पञ्चमी विभक्ति एकवचन।

त्रपाभरत- अकारान्त पुल्लिङ्ग पञ्चमी विभक्ति एकवचन।

समास - त्रपैव भरः तस्मात्

भृशानतम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - भृशं यथास्यात्तथा आनतमिति ।

शिरः- सकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

दुःखेन - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन ।

उवाह - क्रियापद। वह लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा/विरोध। भार हर लिये जाने पर भी मानो लज्जा से भैंसा सिर झुकाकर चला, इसलिये यहाँ उत्प्रेक्षा है।

भार हट जाने पर सिर ऊँचा हो जाना चाहिये किन्तु भैंसे का सिर नीचे ही झुका रहा, इसलिये यहाँ विरोध अलंकार भी है।

प्रसङ्ग - रावण ने केवल दिग्पालों पर ही विजय प्राप्त नहीं की, अपितु उसने तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले सूर्य पर भी विजय प्राप्त कर ली। उसके अधीन होकर वह शीतल होकर केवल उसकी ही अलंकृत वस्तुओं को प्रकाशित करने तक सीमित रह गया।

स्पृशन्सशङ्कः समये शुचावपि स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः ।

अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैरलञ्चकारास्य वधूरहस्करः । 158 ॥

अन्वय - शुचौ समये स्थितः अपि अहस्करः असमग्रपातिभिः कराग्रैः सशङ्के स्पृशन् अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैः अस्य वधूः अलञ्चकार।

सर्वङ्कषा - स्पृशन्निति । अहः करोति, अहस्करः सूर्यः। 'दिवाविभानिशा' इत्यादिना टप्रत्ययः । कस्कादित्वात्सत्त्वम्। शुचौ समये ग्रीष्मकाले, अनुपहते आचारे च स्थितोऽपि। शुचिः शुद्धेऽनुपहते शृङ्गाराषाढयोरपि। ग्रीष्मे हुतवहेऽपि स्यात् इति विश्वः । 'समयाः शपथाचार कालसिद्धान्तसंविदः इत्यमरः। असमग्रपातिभिः।

संकुचितवृत्तिभिरित्यर्थः। करणार्मशूनां हस्तानां चाग्रैः। 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यमरः । सशङ्कः स्पृशन् अविश्वासभयादिति भावः। अधर्माः अनुष्णा घर्मोदकबिन्दवः-स्वेदोद-बिन्दुवः । 'मन्थौदन' इत्यादिना विकल्पादुदकशब्दस्योद्देशाभावः । तैरेव मौक्तिकैरस्य वधूरलञ्चकार। ग्रीष्मे तद्गयान्नासहां तपतीत्यर्थः । अत्र प्रस्तुतसूर्यविशेषणमात्रसाम्याद-प्रस्तुतप्रसाधकप्रतीतेः समासोक्तिरलङ्कारः ।

शब्दार्थ - शुचौ समये = ग्रीष्मकाल में (शुद्ध आचरण में), स्थितः अपि = स्थित होने पर भी, अहस्करः = सूर्य, असमग्रपातिभिः = समस्त रूप से न गिरने वाली, कराग्रैः किरणों के अग्रभाग से (हाथों के अग्रभाग से), सशङ्कः शंका सहित, स्पृशन् = स्पर्श करता हुआ, अधर्मघर्मोदकबिन्दु मौक्तिकैः = शीतल पसीने की बूंद रूपी मोतियों के द्वारा, अस्य वधूः = इस रावण की वधुओं को, अलञ्चकार = अलंकृत करता था।

अनुवाद - ग्रीष्म काल में स्थित होने पर भी सूर्य समस्त रूप से न गिरने वाली किरणों के अग्रभाग से स्पर्श करता हुआ शीतल पसीने की बूंद रूपी मोतियों के द्वारा इस रावण की वधुओं को अलंकृत करता था।

संस्कृत व्याख्या - अहस्करः = दिनकरः, शुचौ समये ग्रीष्मकाले (शुद्धा-चारे स्थिते) अपि, असमग्रपातिभिः = सङ्कुचितपतनशीलैः, कराग्रैः = किरणानाम्, अग्रभागैः (गजस्य अग्रभागमात्रैः) सशङ्कः सङ्कुचितः, स्पृशन् = संस्पृशन्, अधर्मघर्मो-बिन्दुमौक्तिकैः - शीतलस्वेदजलबिन्दुमुक्ताकणैः अस्य रावणस्य, वधूः = रमणी, अलञ्चकार = भूषयामास ।

दिनकरः ग्रीष्मकालेऽपि सङ्कुचितपतनशीलैः किरणानाम् अग्रभागैः सङ्कुचितः संस्पृशन् शीतलस्वेदजलबिन्दुमुक्ताकणैः रावणस्य रमणीः भूषयामास ।

यथा कोऽपि शुद्धाचारी नायकः संकुचितपतनशीलैः करस्य अग्रभागैः सङ्कुचितः संस्पृशन् शीतलमुक्ताकणैः रमणीम् अलङ्करोति तथैव सूर्योऽपि ग्रीष्मकाले रावणस्य रमणीः भूषयामास, एषोऽन्योऽर्थः ।

व्याकरणः -अहस्करः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

शुचौ - इकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन ।

समये - अकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन।

स्थितः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

अपि - अव्यय

असमग्रपातिभिः - इकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन।

कराग्रैः - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

सशङ्कः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

स्पृशन् - तकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन । स्पृश्+शत् ।

अघर्मधर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैः - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन।

समास-न घर्माः अधर्माः घर्मस्य उदकम् धर्मोदकम् तस्य बिन्दवः धर्मोदक-विन्दवः
त एव मौक्तिकानि तैः ।

अस्य- मकारान्त (इदम्) पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

वधूः - ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

चकार- क्रियापद । कृ+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

अलङ्कार- समासोक्ति। इस श्लोक में समान विशेषणों से प्रकृत सूर्य के साथ-साथ अप्रकृत शुद्धाचारी कोमल कान्त नायक के द्वारा अपनी वधुओं को कोमलता से मुक्तामणियों से अलंकृत करने के अर्थ की भी प्रतीति होती है। अतः यहाँ समासोक्ति है।

प्रसङ्ग - रावण ने प्रचण्ड सूर्य को तो अपने वश में कर ही लिया उसके साथ ही उसने चन्द्रमा को भी अपने अधीन कर लिया, इस प्रकार अपनी चन्द्रिका को बढ़ाता हुआ वह चन्द्रमा उसकी की क्रीडाओं में ही सहायक सिद्ध हुआ-

कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा ।

विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना ॥59

अन्वय - कलासमग्रेण गृहान् अमुञ्चता मनस्विनीः उत्कयितुं पटीयसा रतिं वितन्वता इन्दुना विलासिनः तस्य नर्मसाचिव्यं अकारि (इति) न।

सर्वङ्कषा- कलासमग्रेणेति। कलाभिः षोडशांशैः, शिल्पविद्याभिश्च, समग्रेण-सम्पूर्णं। 'काले शिल्पे वित्तवृद्धौ चन्द्रांशे कलने कला' इति वैजयन्ती । गृहानमुञ्चता-सदा तद्गृहेष्वेव वसता। दण्डभयात्सेवाधर्मत्वाच्चेति भावः । मनस्विनीः-मानिनीः उत्काः-उत्सुकाः कर्तुम्-उत्कयितुम्। 'उत्क जन्मनाः' इति निपातनादुत्कशब्दात् 'तत्करोति' इति ण्यन्तात्तुमुन् । पटीयसामानभेदचतुरणेत्यर्थः । कुतः ? रतिं वितन्वताचन्द्रि-काभिश्चतुरोक्तिभिश्च रागं वर्धयता इन्दुना। विलासिनः विलासनशीलस्य । 'वौ कषलस'-इत्यादिना घिनुण प्रत्ययः । तस्य रावणस्य । नर्मसाचिव्यं-क्रीडा सम्बध्यधिकारत्वे सचेष्टत्वम् । 'लीलाक्रीडा च नर्म च' इत्यमरः । नाकारीति न-किन्त्वकार्येवेत्यर्थः । अनौचित्यात्प्राप्तनर्मसाचिव्यनिषेधनिवारणार्थं नञ्यम्। 'सम्भाव्यनिषेधनिवर्तने नञ् द्वयम्' इति वामनः । अत्रैन्द्रोः प्रकृतस्याप्रकृतेन नर्मसाचिवेन शेषः ।

शब्दार्थ - कलासमग्रेण सम्पूर्ण कलाओं सहित, गृहान् घरों को, अमुञ्चता न छोड़ने वाले, मनस्विनीः मानिनी स्त्रियों को, उत्कयितुं = उत्कण्ठित करने में, पटीयसा = चतुर, रतिं वितन्वताः (चांदनी और चतुर उक्तियों के द्वारा) राग को, बढ़ाते हुए, इन्दुना = चन्द्रमा के द्वारा, विलासितः = विलासी, तस्य रावण को, नर्मसाचिव्यं = क्रीड़ा में सहायता, न अकारि नहीं की गई, (इति) न= ऐसा नहीं है।

अनुवाद - सम्पूर्ण (सोलह) कलाओं सहित घरों को न छोड़ने वाली, मानिनी स्त्रियों को उत्कण्ठित करने में चतुर राग को बढ़ाते हुए चन्द्रमा ने विलासी उस रावण के

क्रीडासचिव का कार्य नहीं किया ऐसा नहीं है अर्थात् क्रीडासचिव का कार्य अवश्य ही किया।

संस्कृत व्याख्या: - कलासमग्रेण षोडशकलापरिपूर्णन, गृहान् = रावणस्य सदनानि, अमुञ्चता = अपरित्यजता, मनस्विनीः = मानिनीः, उत्कयितुम् = उत्कण्ठयितुम्, पटीयसा = प्रवीणेन, इतिम् = अनुरागम् वितन्वता = विस्तारयता (सुरतौत्सुक्यं) इन्दुना = चन्द्रेण, विलासिनः = विलासप्रियस्य, तस्य रावणस्य, नर्मसाचिव्यम् = सुरतसाहाय्यं न अकारि कृतम् । अपितु कृतमेव ।

षोडशकलापरिपूर्णन इन्दुना अपि रावणस्य सदनानि अपरित्यजता मानिनीः उत्कण्ठयितुं प्रवीणेन अनुरागं विस्तारयता चन्द्रेण विलासप्रियस्य रावणस्य सुरतसाहाय्यं न कृतम्, अपितु कृतमेव ।

व्याकरणः -

कलासमग्रेण - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास कलाभिः समग्रः तेन।

गृहान् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

अमुञ्चता- तकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन। मुच्लू शतृ। समास-न मुञ्चयता ।

मनस्विनीः- ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

उत्कयितुम् - अव्यय। उत्सुकं करोतीत्यर्थे उत्कशब्दात् 'तत्करोति' इति णिजन्तात्, तुमुन्

पटीयसा - सकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

रतिम्-इकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

वितन्वता - तकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

वि+तनु+शतृ ।

इन्दुना - उकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

विलासिनः नकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

नर्मसाचिव्यम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - सचिवस्य भावः साचिव्यम्, नर्मणि साचिव्यम् ।

न- अव्यय

अकारि- क्रियापद-कृ+लुङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

विशेष:- रावण के अधीन होकर चन्द्रमा उसका नर्म सचिव ही बन गया है। जिस प्रकार सचिव समस्त कलाओं में प्रवीण होते हुए भी स्वयं शुद्धाचरण वाला होता है, किन्तु राजा के समस्त हित साधने में कुशल होता है। रनिवास की मानिनी नायिकाओं को भी नायक के स्तुतिगान आदि के द्वारा वही उनके प्रति अनुराग को बढ़वाता है। इसी प्रकार चन्द्रमा अपनी षोडश कलाओं से उन नायिकाओं के प्रेम को उद्दीप्त कर अपनी चाँदनी से उस विलासी रावण की रतिक्रिया में सहायक ही बनता था।

प्रसङ्ग - रावण ने जहाँ शिव पर विजय प्राप्त की, वही उसके पुत्र गणेश पर भी उसने विजय प्राप्त कर ली। परस्पर हुए युद्ध में उसने गणेशजी का दाँत ही उखाड़ लिया, जो फिर दुबारा नहीं उग सका।

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया नूनमनेन मानिना ।

न जातु वैनायकमेकमुदधृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति ॥60 ॥

अन्वय - मानिना अनेन विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिका विधित्सया जातु उद्धृतम् एकं वैनायकं विषाणम् नूनं अद्यापि पुनः न प्ररोहति।

सर्वङ्कषा - विदग्धेति। मनिना-अहङ्कारिणा। अनेन रावणेन। विदग्धलीलाः- चतुरविलासिन्य इत्यर्थः । तासामुचिताश्च 'दन्तपत्रिकाश्च कर्णभूषणानि। 'विलासिनी-विभ्रमदन्तपत्रिका' इति साधीयान्पाठः। अन्यथा विप्रकृष्टार्थप्रतीतिकत्वेन कष्टाख्यार्थ-दोषापत्तेः । 'कष्टं तदार्थावगमो दूरायतो भवेत्' इति लक्षणात्। विलासिनीनाम् या विश्वमदन्तपत्रिकाविभ्रमार्थानि यानि दन्तमयपत्राणि। विभ्रमदन्तशब्दयोः षष्ठी समासपर्यवसाना-तादर्थ्यलाभः । तासां विधित्सया-विधातुमिच्छया। विपूर्वाद्धातेः 'सनि सीमा-' इत्यादिना अच् इम्। 'सः सि' इति तकारः । 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' इत्यभ्यासलोपः । ततः 'स्त्रियाम्' इत्यनुवृत्ती 'अप्रत्ययात्' इत्यकारप्रत्यये टाप्। नूनं निश्चितं जातु कदाचिदपि। 'कदाचिज्जातु' इत्यमरः । उद्धृतमुत्पाटितं विनायकस्य-गणेशस्येदं वैनायकम् एकं विषाण दन्तः । 'विषाणं पशुशृङ्गे स्यात् क्रीडाद्विरददन्तयोः

इति विश्वः । अद्यापि पुनर्न प्ररोहति न प्रादुर्भवति। प्रपूर्वात् 'रुह प्रादुर्भाव' इत्यस्माल्लट् । किमन्यदकार्यमस्येति भावः। एतदन्यथा कथं गजाननस्यैकदन्तत्वमुत्प्रेक्ष्यते नूनमिति ।

शब्दार्थ - मानिना=मानी, अनेन रावण के द्वारा, विदग्धलीलोचिदन्त-पत्रिकाविचित्सया = विलासिनी स्त्रियों के विलास के योग्य कर्णाभूषण बनाने की इच्छा से, जातु कभी, उद्धृतम् = उखाड़ा गया, वैनायकं विषाणम् = गणेश जी का दाँत, नूनं निश्चित रूप से, अद्यापि आज भी, पुनः न प्ररोहति = फिर से नहीं उगा है।

अनुवाद - मानी रावण के द्वारा विलासिनी स्त्रियों के विलास के योग्य कर्णाभूषण बनाने की इच्छा से कभी उखाड़ा गया गणेश जी का एक दाँत निश्चित रूप से आज भी फिर से नहीं उगा है।

संस्कृत व्याख्याः - मानिना-अहङ्कारिणा, अनेन रावणेन, विदग्ध-लीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया = चतुरविलासिनीधारणयोग्यगजदन्तकर्णाभरणस्य

चिकीर्षया, नूनम् = निश्चयमेव जातु कदाचित्, उद्धृतम् = उत्पाटितम्, एकम् एक-संख्याविशिष्टं, वैनायकम् गणेशस्य, विषाणम् दन्तः, अद्यापि अद्यपर्यन्तं, पुनः न, प्ररोहतिः = प्रादुर्भवति ।

अहङ्कारिणा अनेन रावणेन चतुरविलासिनीधारणयोग्यगजदन्तकर्णाभरणस्य चिकीर्षया निश्चयमेव कदाचित् उत्पाटितम् एकसंख्या विशिष्टं गणेशस्य दन्तः अद्यपर्यन्तं पुनः न प्रादुर्भवति ।

व्याकरण:-

मानिना- नकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन ।

अनेन - मकारान्त (इदम्) पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया-अकारान्त स्त्रीलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास - विदग्धा लीला यासां ताः विदग्धलीलाः, तासामुचिता इति विदग्धलीलोचिताः ताश्च ताः दन्तपत्रिकाश्चेति विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाः विधातु-मिच्छा विधित्सा, विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाणां विधित्सा तया।

नूनम् - जातु, अव्यय ।

उद्धृतम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

एकम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

वैनायकम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन। विनायकस्य इदम् अस्मिन्नर्थे तस्येदम् इति सूत्रेण अण्

विषाणम्- अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

पुनः न- अव्यय

प्ररोहति - क्रियापद। प्र+रुह लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

प्रसङ्ग - रावण के वर्णन के प्रसंग में ही नारदजी कहते हैं कि उसने वायुदेव को भी अपना वशवर्ती बना लिया, और वह उस कामुक रावण का सहायक होकर निर्दोष दण्डित देवताओं को भी उससे क्षमा करवा देता था।

निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसाऽप्यूरुषु लोलचक्षुषः ।

प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः ॥61 ॥

अन्वय - निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा अपि तासाम् ऊरुषु लोलचक्षुषः तस्य प्रियेण प्रकम्पनेन अनपराधबाधिताः सुराः अनुचकम्पिरे।

सर्वङ्कषा - निशान्तेति । निशान्तं गृहम्। 'निशान्तं गृहशान्तयोः' इति विश्वः तत्र या नार्यः शुद्धान्तस्त्रिय इत्यर्थः। तासां परिधानानि अन्तरीयाणि । 'अन्तरीयोपसंख्यान परिधानान्यर्थोऽशुके' इत्यमरः। तेषां धूननं चालनम्। धूजो 'ध्यन्ताल्ल्युट्' धूज्जीओर्नुग्व-क्तव्यः' इति नुक् तेन स्फुटागमा व्यक्तापरधेनापि। अन्तः पुरद्रोहस्य महापराधत्वादिति भावः । ऊरुषु तासां सक्थिषु। लोलचक्षुषः सतृष्णादृष्टः । 'सक्थि क्लीबे पुमानूरुः' इति लोलश्चलसतृष्णयोः' इति चामरः । अतएव तस्य रावणस्य प्रियेण प्रमोदास्पदभूतेन अङ्गीकृतम्लानिनै दोषायेति न्यायादिति भावः। प्रकम्पनेन वायुना अनपराधे-अपराधा-भावेऽपि बाधिताः। राजपुरुषैरिति शेषः। सुरा अनुचकम्पिरे। स्वयमुपायेनान्तः प्रविश्यानपराधबाधानिवेदनेन मोचयता वायुनानुकम्पिता इत्यर्थः । एकस्य वैदग्ध्याद् बहवो जीवन्तीति भावः ।

शब्दार्थ - निशान्तनारीपरिधान धूननस्फुटागसा = अन्तःपुर की स्त्रियों के वस्त्रों को उड़ाने से स्पष्ट रूप से अपराधयुक्त, अपि भी, तासाम् उन स्त्रियों के, ऊरुषु जङ्घाओं पर, लोलचक्षुषः चञ्चल दृष्टि वाले, तस्य रावण के, प्रियेण प्रिय, प्रकम्पनेन वायु के द्वारा, अनपराधवाधिताः = बिना अपराध के भी सताए गए, सुराः = देवगण, अनुचकम्पिरे अनुकम्पित कर दिए गए।

अनुवाद - अन्तःपुर की स्त्रियों के वस्त्रों को उड़ाने से स्पष्ट रूप से अपराधयुक्त होने पर भी उन स्त्रियों की जङ्घाओं पर चञ्चल दृष्टि वाले रावण के प्रिय वायु के द्वारा बिना अपराध के भी सताए गए देवताओं पर कृपा कर दी गई।

संस्कृत व्याख्या: - निशान्तनारीपरिधान धूननफटागसा- अन्तःपुरविलासिनीनामधोवस्त्रसञ्चालनेनस्पष्टापराधिनौ अपि, ऊरुषु जघनस्थलेषु लोलचक्षुषः- सतृष्णनेत्रस्य, तस्य रावणस्य, प्रियेण कृपापात्रेण प्रकम्पनेन वायुना, अनपराधबाधिताः = निरपराधदण्डिताः सुराः = देवाः, अनुचकम्पिरे = अनुगृहीताः । अन्तः पुरविलासिनीनामधोवस्त्रसञ्चालनेन स्पष्टापराधिना अपि जघनस्थलेषु सतृष्णनेत्रस्य तस्य रावणस्य कृपापात्रेण वायुना निरपराधदण्डिताः देवाः अनुगृहीताः

व्याकरण: - निशान्तनारीपरिधान धूननस्फुटागसा-सकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास - निशान्ते या नार्यः निशान्तनार्यः तासाम् परिधानानां धूननेन स्फुटं आगो यस्य स तेन

अपि अव्यय ।

ऊरुषु - उकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति बहुवचन ।

लोलचक्षुषः षकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

समास - लोले चक्षुषी यस्यासौ गतस्य ।

तस्य - दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

प्रियेण - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन ।

प्रकम्पनेन - अकारान्त पुल्लिङ्ग नपुंसकलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

अनपराधबाधिता - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन ।

सुरा:- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन ।

अनुचकम्पिरे - क्रियापद। अनु+कम्प्+लिट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन ।

विशेष:- रावण का वशवर्ती बनकर वायु भी चन्द्र और सूर्य के समान उसके अन्तःपुर में उसके काम को बढ़ाने में ही सहायक सिद्ध हुआ। वायु अन्तःपुर की विलासिनी स्त्रियों के अधोवस्त्रों को उड़ा देता था, जिससे उस कामी को सहज ही उनकी जंघाओं को सतृष्ण देखने का अवसर प्राप्त हो जाता था। जिससे रावण का वायु मानो मित्र ही बन गया था, वायु भी बदले में निरपराध दण्डित हो रहे देवताओं को क्षमा करवा लेता था, इस प्रकार वह देवताओं का भी प्रिय बना रहा।

प्रसङ्ग - देवताओं पर रावण द्वारा विजय प्राप्त करने के ही सन्दर्भ में नारदजी कहते हैं कि उसने अति तेजस्वी अग्निदेव भी विजय प्राप्त कर ली, जिससे वे अत्यन्त अपमानित हुए। मनोव्यथाओं से उत्पन्न उन आँसुओं से ही मानो उन्होंने अपने धूम्रमण्डल को अत्यन्त विशाल कर लिया था।

तिरस्कृतस्तस्य जनाभिभाविना मुहर्महिम्ना महसां महीयसाम् ।

बभार वाष्पैद्विगुणीकृतं तनुस्तनूनपाद्धमवितानमाधिजैः ॥62 ॥

अन्वय - तस्य जनाभिभाविना महीयसां महसां महिम्ना मुहुः तिरस्कृतः तनुः तनूनपात् आधिजैः वाष्पैः द्विगुणीकृतम् धूमवितानं बभार।

सर्वङ्कषा - तिरस्कृत इति। किञ्च तस्य रावणस्य, जनाभिभाविना-लोकतिरस्कारिणा। महीयसाम्-अतिमहतां। महसा तेजसां। महिम्ना महत्त्वेन। 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इतीमनिच् । मुहस्तिरस्कृतः । अतएव तनुः कृशः तनु न पातयनि जाठररूपेण शरीरं धारयतीति तनूनपात् अग्निरिति स्वामी। 'नभ्राट्' इत्यादिसूत्रेण निपातनान्नो नलोपाभावः । आधिजैः दुःखोत्थैर्वाष्पैः- निःश्वासोष्मभिः । 'वाष्पो नेत्रजलोष्मणोः पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इति विश्वामरो। द्वौ गुणावावृत्ती यस्य स द्विगुणः। ततश्चिचः । द्विगुणीकृतं द्विरावृत्तम् । 'गुणस्त्वावृत्तिशब्दादिज्येन्द्रियामुख्यतन्तुषु' इति वैजयन्ती । धूमवितानं-धूममण्डलं बभार। अग्निरपि तत्सन्निधौ निस्तेजस्को धूमायमान आस्त इत्यर्थः । धूमद्वैगुण्या सम्बन्धे सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्ति ।

शब्दार्थ - तस्य रावण के, जनाभिभाविना लोक का तिरस्कार करने वाले, महीयसां = अत्यन्त महान्, महसां तेज की, महिम्ना महिमा से, मुहुः = पुनः पुनः, तिरस्कृतः = तिरस्कृत होकर, तनुः दुर्बल, तनूनपात् = अग्नि ने, आधिजैः = मानसिक दुःख से उत्पन्न, वाष्पैः आंसुओं के कारण, द्विगुणीकृत = दुगुने किए गए, धूमवितानं धुयें के समूह को, बभार धारण किया।

अनुवाद - लोक का तिरस्कार करने वाले रावण के अत्यन्त महान् तेज की महिमा से पुनः पुनः तिरस्कृत होकर अग्नि ने मानसिक दुःख से उत्पन्न आंसुओं के कारण दुगुने किए गए धुयें के समूह को धारण किया।

संस्कृत व्याख्याः - तस्य-रावणस्य, जनाभिभाविना = लोकतिरस्कारिणा, महीयसां = श्रेष्ठानां, महसां = तेजसां, महिम्ना महत्त्वेन, मुहुः = वारं वारं, तिरस्कृतः = अभिभूतः, तनुः = दुर्बलः, तनूनपात् = अग्निः आधिजैः = मानसिकवेदनासमुत्पन्नैः वाष्पैः = अश्रुभिः, द्विगुणीकृतम्-द्विरावृत्तम्, धूमवितानम् = धूममण्डलम्, बभार = दधार।

रावणस्य लोकतिरस्कारिणा श्रेष्ठानां तेजसां महत्वेन वारं वारं अभिभूतः
दुबलर्लोऽग्निः मानासिकवेदनासमुत्पन्नैरश्रुभिः द्विरावृतं धूममण्डलं दधार।

व्याकरणः -

तस्य- दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

जनाभिभविना- नकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास - जनम् अभिभवति इति जनाभिभावी तेन

महीयसाम्- सकारान्त स्त्रीलिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

महसाम् - सकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

महिम्ना- नकारान्त स्त्रीलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

मुहुः - अव्यय ।

तिरस्कृतः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

तनुः- उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

तनूनपात् - तकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - तनूम् न पातयति इति

आधिजैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन।

वाष्पैः - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

द्विगुणीकृतम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

धूमवितानम्- अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - धूमस्य वितानम्

बभार - क्रियापद। कृ+लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

विशेष:- कवि का यहाँ कहना है कि रावण का तेज अत्यधिक था, उससे अग्नि का तेज अभिभूत हो गया था और वह अत्यधिक दुःखी था, इसलिये वह निरन्तर आँसू बहाता रहता था, उसके उन आँसुओं से मिलकर अग्नि दुगुने धुएँ को धारण करता था।

प्रसङ्ग - रावण ने केवल देवताओं आदि को ही पराजित नहीं किया अपितु उसके राज्य में समस्त कुटिलों ने अपनी कुटिलता छोड़ दी। साँप, दुर्जन आदि भी अपने स्वभावगत दोषों को छोड़कर उसके अनुकूल आचरण करने लगे।

**परस्य मर्माविधमुज्झतां निजं द्विजिह्वतादोषमजिहमगामिभिः ।
तमिद्धमाराधयितुं सकर्णकैः कुलैः भजे फणिनां भुजङ्गता । 163 । 11**

अन्वय - इद्धम् तम् आराधयितुं परस्य मर्माविधम् निजम् द्विजिह्वितादोषम् उज्झताम् फणिनां अजिहमगामिभिः सकर्णकैः कुलैः भुजङ्गता न भजे।

सर्वङ्कषा - परस्येति । किञ्च इद्धं दीप्तम् उग्रमित्यर्थः 'इन्धी दीप्ती' कर्तरि क्तः तं रावणमाराधयितुं सेवितुं । परस्य स्वेतरस्य मर्माणि हृदयादिजीवस्थानानि कुलाचार-व्रतानि च विध्यति भिनत्तीति मर्मावित्। विध्यतेः क्विप्। 'ग्रहिज्या इति सम्प्रसारणम्।' 'नहिवृत्ति' इत्यादिना पूर्वस्य दीर्घः। तं मर्माविधं, निजं स्वीयं द्विजिह्वतायां सर्पत्वे यो दोषो दृष्टि विषत्वाद्विस्तम्। अन्यत्र द्विजिह्वनता पिशुनता। 'द्विजिह्वनवौ सर्पसूचकौ इत्यमरः । (सैव) दोषस्तमुज्झतां त्यजतां, फणिनां सम्बन्धिभिः अजिह्वगामिभिः करचरणादिम-द्विग्रहधारित्वाद्विजुगतिभिस्तैः, अकपटचारिभिश्च तथा कर्णाभ्यां सह वर्तन्त इति सकर्ण-कास्तैः । चक्षुःश्रवस्त्वं विहाय आविष्कृतकर्णैरित्यर्थः। 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः । 'शेषाद्विभाषा' इति कप्। अन्यत्र कर्णयति सर्वं शृणोतीति कर्णको नियन्ता। कर्णयतेष्वुल् ततः

पूर्ववत्समासेसकर्णकैः । सनियामकैरित्यर्थः । फणिनां सर्पाणां कुलैर्वगैः भुजङ्गता-
सर्पता, विटत्वं च । 'भुजङ्गो विटसर्पयो' इति हलायुधः। न भेजे-न त्यक्ता,
भुजैर्गच्छन्तीति भुजङ्गा। गमेः सुपि खच् च डिद्वा वाच्यः। तस्मिन्नियन्तरि खलैः
खलत्वमपि सर्वैः सर्पत्वमपि विहाय वेषभाव क्रियाभिः सौम्यत्वं श्रितमित्यर्थः । अत्र
प्रस्तुतसर्पविशेषणसाम्यादप्रस्तुतखलव्यवहारप्रतीतेः समासोक्तिः ।

शब्दार्थः - इद्धम् = प्रदीप्त, तम् उस रावण की, आराधयितुम् = आराधना
करने के लिये, परस्य दूसरों के, मर्माविधम् = मर्मस्थल को बेधने वाले, निजम् =
अपने, द्विजिह्वतादोषम् सर्प के स्वभाविक विषादि दोष का पिशुनता दोष को
अन्यत्र पिशुनतादोष, उज्झताम्-छोड़ने वाले, फणिनाम् = सर्पों ने, अजिहमगामिभिः
= सरलता, सन्मार्गगामिभिः = सन्मार्ग पर चलना, सकर्णकैः सकर्णता को धारण
कर लिया।

अनुवादः- सर्प के पक्ष में दीप्तिमान् उस रावण की सेवा करने के लिये दूसरे
लोगों के मर्मस्थलों को बेधने वाले अपने दो जीभ रखने आदि दोषों को छोड़ देने
वाले सर्पों ने वक्रता एवं चश्रुः श्रवत्व को छोड़कर सरलता एवं सकर्णता को धारण
कर लिया। दुष्टजनों के पक्ष में दीप्तिमान् उस रावण की सेवा करने के लिये
पिशुनजनों ने दूसरों के कुल के आचार व्रत आदि को तोड़ने वाले पिशुनता आदि से
युक्त से युक्त दो प्रकार की बातें करने वालों (चुगलखोर) ने चुगली करना छोड़
दिया और वे कुटिललोग कुटिलता को छोड़कर नियन्त्रण में रहना सीख गये।

संस्कृत व्याख्याः- इद्धम्-प्रदीप्तम्, तम् = रावणम्, आराधयितुम् = सेवितुम्,
निजं = स्वकीयं, परस्य = अन्यस्य, मर्माविधम् हृदयादिमर्मस्थलवेधकं, कुलाचार-
व्रतवेधकस्य, द्विजिह्वतादोषम् = सर्प जातेः सूचकं स्वाभाविकं विषादिदोषम्,
द्विजिह्वा-वादयः, अन्यत्र पिशुनतादोषम् उज्झतां = परित्यजताम्, फणिनाम् =
सर्पाणाम्, अजिहमगामिभिः = ऋजुगामिभिः, अन्यत्र अकपटचारिभिश्च, सकर्णकैः =
चक्षुःश्रवस्त्वं विहाय धृतकर्णविवरैः कुलैः समूहैः, भुजङ्गता सर्पता, न, भेजे = सिषवे
।

सर्प पक्षे- प्रदीप्तं तं रावणं सेवितुं स्वकीयं अन्यस्य हृदयादिमर्मस्थलवेधकं सर्पजातेः सूचकं स्वाभाविकं विषादिदोषं द्विजिह्वावादयः परित्यजतां सर्पाणां ऋजुगामिभिः चक्षुः श्रवस्त्वं विहाय धृतकर्णविवरैः, समूहैः सर्पता न सिषवे ।

दुष्टपक्षे- प्रदीप्तं तं रावणं सेवितुं स्वकीयं अन्यस्य कुलाचारव्रतवेधकं पिशुनतादोषं परित्यजतां सर्पाणां सरलाचारपूर्णमार्गगामिभिः सनियामकैः समूहैः दुष्टता न भेजे।

व्याकरण-

इद्धम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन। इन्धी+क्त तम्-
दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

आराधायितुम् अव्यय। आ+राघ्+णिच्+ तुमुन्

परस्य - अकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

मर्माविधम्- अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

मर्म+व्यध्+क्विप्

निजम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

द्विजिह्मतादोषम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - द्वे जिह्वे येषान्ते द्विजिह्वाः तेषां भावः द्विजिह्वता तस्यां दोषः तम्

उज्झताम् - तकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन। उत्+हन्+शत् ।

फणिनाम् - नकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

आजिह्मगामिभिः - नकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

समास - न जिहां अजिह्यं यथा स्यात्, तथा गन्तुं शीलं येषां ते, तैः।

सकर्णकैः - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन।

समास - कर्णाभ्यां सह वर्तन्त इति सकर्णकाः तैः।

कुलैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

भुजङ्गता - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

न- अव्यय

भेजे - क्रियापद। भज्+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

समास - समासोक्ति। यहाँ प्रकृत सर्प के साथ ही द्वयर्थक विशेषणों की सामर्थ्य से दुष्ट के व्यवहार की भी प्रतीति हो रही है, इसलिये यहाँ समासोक्ति है।

विशेषः - इस श्लोक में रावण के प्रभाव का ही वर्णन करते हुए नारद मुनि कहते हैं कि उसकी आराधना करने के लिये सर्पों और दुष्टों ने अपनी कुटिलता छोड़ दी, उनके मूलस्वभाव में ही परिवर्तन हो गया और वे सज्जनों के समान सरलमार्ग का आचरण करने लगे।

प्रसङ्ग - नारदमुनि कहते हैं कि भय केवल रावण का ही नहीं है, अपितु उसमें सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक वस्तु से सभी भयभीत हैं। रावण के श्रेष्ठ गजों के भय से दिग्गज भी पलायन कर गये हैं, इसी का वर्णन इस श्लोक में है-

तदीयमातङ्गघटा विघट्टितैः कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः ।

गृहीतदिक्कैरपुनर्निवर्तिभिश्चिराय याथार्थमलम्भि दिग्गजैः ॥64 ॥

अन्वय - तदीयमातङ्गघटा विघट्टितैः कटस्थल प्रोषितदानवारिभिः गृहीत-दिक्कैः अपुनर्निवर्तिभिः दिग्गजैः चिराय याथार्थ्यम् अलम्भि ।

सर्वङ्कषा - तदीयेति । तदीयमातङ्गानां घटाभिः व्यूहैः, विघट्टैरभिहतैः 'गजानां तएव कटस्थलेभ्यः प्रोषितान्यपगतानि दानवारीणि येषां ते।

गृहीताः- पलाय्य संश्रिता दिशा यैस्तैर्गहीतदिकैः । 'शेषाद्विभाषा' इति कप् । अपुनर्निवर्ति-भिर्भयात्तत्रैव स्थितैर्दिग्गजैः चिराय याथार्थ्यं दिक्षु स्थिता गजा दिग्गजा इत्यनुगतार्थनाम-कत्वम्। अलम्भि लब्धम्। लभेर्ण्यन्तात्कर्मणि लुङ्। 'विभाषा चिण्णमुलोः इति विकल्पान्नुमागमः ।

शब्दार्थ- तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः = उस (रावण) के हाथियों के समूह से ताड़ित, कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः = जिनके गण्डस्थल से मदजल चला गया, ऐसे, गृहीतदिकैः = दिशाओं का आश्रय लेने वाले, अपुनर्निवर्तिभिः = पुनः न लौटने वाले, दिग्गजैः = दिग्गजों के द्वारा, चिराय चिरकाल तक, याथार्थ्यम् अलम्पि यथार्थता प्राप्त की गई।

अनुवाद - उस रावण के हाथियों से ताड़ित, जिनके गण्डस्थल से मदजल चला गया, ऐसे दिशाओं का आश्रय लेने वाले, तथा पुनः न लौटने वाले दिग्गजों ने चिरकाल तक यथार्थता प्राप्त की।

संस्कृत व्याख्या: - तदीयमातङ्गघटा तस्य (रावणस्य) गजसमूहैः विघट्टितैः = अभिहतैः कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः = गण्डस्थलव्यपगतमदजलप्रवाहैः, अपुनर्निवर्तिभिः = (भयात्) पुनरागमनरहितैः, दिग्गजैः ऐरावतादिभिः, श्रेष्ठगजैः चिराय दीर्घकालाय, यार्थाध्यम् नाम्नः सार्थकभावं, अलम्भि = लब्धम् ।

तस्य रावणस्य गजसमूहैः ताडिता अभिहतैः गण्डस्थलव्यपगतमदजलप्रवाहैः भयात् पुनरागमनरहितैः ऐरावतादिभिः श्रेष्ठगजैः दीर्घकालाय नाम्नः सार्थकभावं लब्धम्।

व्याकरण: - तदीयमातङ्गघटा - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - तस्येमे तदीयाः तदीयाश्च ते मातङ्गाः तदीयमातङ्गाः तेषां घटाः ताभिः
विघट्टिताः तैः ।

बहुवचन । कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः - इकारान्त नपुंसकलिङ्ग तृतीया विभक्ति
तैः।

समास - कटस्थलेभ्यः प्रोषितानि दानवारीणि येषान्ते कटस्थल प्रोषितदानवारयः

अपुनर्निवर्तिभिः - नकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन।

समास - न पुनः निवर्तन्ते इति अपुनर्निवर्तिनः तैः ।

दिग्गजैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

चिराय - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग चतुर्थी विभक्ति एकवचन ।

यार्थार्थ्यम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

यथार्थ+प्यञ् ।

अलम्भि - क्रियापद। लभ् णिच्+लुङ् प्रथमपुरुष एकवचन से।

विशेष:- रावण के पाले गये हाथियों का बल भी इतना अधिक था कि उनसे भयभीत होकर दिग्गज सभी दिशाओं में भाग गये और कभी लौटकर नहीं आये, इस प्रकार उन्हें अपने नाम की सार्थकता प्राप्त हो गयी। विभिन्न दिशाओं में रहने के कारण वे दिग्गज ही कहलाने लगे दिशाओं के आधार पर उनका नामकरण इस प्रकार हुआ-

पूर्व दिशा- ऐरावत

आग्नेय-पुण्डरीक

पश्चिम दिशा सार्वभौम

वायव्य-पुष्पदन्त

दक्षिणदिक्षा-गमन

ईशान-सुप्रतीक

प्रसङ्ग - रावण का वर्चस्व जब स्वर्ग तक हो गया तो उसने साधारण स्त्रियों के साथ ही विलास क्रीडा नहीं की अपितु वह देवाङ्गनाओं के साथ भी विलासक्रीडा करने लगा, इसी का वर्णन करते हुए नारदजी कहते हैं।

अभीक्षणमुष्णैरपि तस्य सोष्मणः सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैर्यथा ।

स चन्दनाम्भः कणकोमलैस्तथा वपुर्जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ ॥65 ॥

अन्वय - सोष्मणः तस्य वपुः अभीक्षणम् उष्णैः अपि सुरेन्द्र बन्दीश्वसितानिलैः यथा निर्ववौ तथा सचन्दनाम्भः कणकोमलैः जलार्द्रापवनैः न।

सर्वङ्कषा - अभीक्षणमिति । ऊष्मणा स्मरज्वरेण सहितः सोष्मा तस्य सोष्मण-स्तस्य-रावणस्य वपुर्भीक्षणं भृशमुष्णैरपि शोकादिति भावः । सुरेन्द्रस्य बन्धः बन्दीकृताः स्त्रियः तासां श्वसितानिलैर्निःश्वासमारुतैर्यथा निर्ववौ निर्वतम्। 'निर्वाणं निवृतौ मोक्षे' इति वैजयन्ती । तथा सचन्दनाम्भः कणाः चन्दनोदकबिन्दुसहिताः ते च ते कोमला मुदुलाश्च तैर्जलार्द्राणां-जलोक्षिततालवृन्तानां पवनैर्न निर्ववौ । 'धवित्रं तालवृन्तं स्यादुत्क्षेपव्यजनं च' तत् 'जलेनार्द्रं जलार्द्रा स्यात्' इति वैजयन्ती । अत्र सन्तप्तस्योष्णोपचारान् निर्वृतिरिति कारणविरुद्धकार्योत्पत्तिरूपो विषमालङ्कारः ।

शब्दार्थ - सोष्मण = उष्मा से युक्त, तस्य वपुः रावण का शरीर, अभीक्षणम् = निरन्तर, उष्णैः अपि = उष्ण होने वाले भी, सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैः = बन्दी बनाई हुई देवाङ्गनाओं की निश्वास वायु से, यथा = जैसे, निर्ववौ = आनन्दित हुआ, तथा = उस प्रकार, सचन्दनाम्भः कणकोमलैः चन्दन सहित, जलार्द्रापवनैः न जल से आर्द्र वायु से नहीं।

अनुवाद - उष्मा से युक्त (कामज्वर सहित) रावण का शरीर निरन्तर उष्ण होने वाले भी बन्दी बनाई हुई देवाङ्गनाओं की निश्वास वायु से जैसे आनन्दित हुआ, उस प्रकार चन्दन सहित जलकणों से कोमल जल से आर्द्र वायु से नहीं।

संस्कृत व्याख्या: - सन्तप्तस्य सोष्मणः (कामपीडितस्य), तस्य (रावणस्य) वपुः = शरीर भृशं = अत्यधिकम्, उष्णैः तप्तैः, अपि सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैः देवराजस्य बन्दीकृतसुरसुन्दरीनिःश्वासवायुभिः, यथा-येन प्रकारेण, निर्ववौ-शान्तिं प्राप्तवान्, तथा = तेन प्रकारेण, सचन्दनाम्भः कणकोमलैः चन्दनयुक्तजलबिन्दुमृदुलैः-जलार्द्रपवनैः = जलसिक्ततालवृन्तैः न शान्तिं प्राप्तवान् ।

सन्तप्तस्य कामपीडितस्य तस्य रावणस्य शरीरम् अत्यधिकं तप्तैरपि देवराजस्य बन्दीकृतसुरसुन्दरीनिःश्वासवायुभिः येन प्रकारेण शान्तिं प्राप्तवान् तेन प्रकारेण चन्दनयुक्तजलबिन्दुमृदुलैः जलसिक्ततालवृन्तैः न शान्तिं प्राप्तवान् ।

व्याकरणः -

सोष्मणः - नकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

समास ऊष्मणा सह वर्ततेसो सोष्मा तस्य ।

तस्य- दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

वपुः - षकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमाविभक्ति एकवचन।

भृशम्-अव्यय ।

उष्णैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

अपि - अव्यय।

सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैः अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

समास - सुरेन्द्रस्य बन्धः सुरेन्द्रबन्धः तासां श्वसितस्य ये अनिला इति सुरेन्द्रबन्दीशसितानिला तैः ।

यथा, तथा अव्यय ।

निर्ववौ - क्रियापद । निर्वा+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

सचन्दनाम्भः कणकोमलैः - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

चन्दनेन सहितानि सचन्दनानि तानि च तानि अम्भासि सचन्दनाम्भांसि सचन्दनाम्भसाम् ये कणाः तैः कोमलाः तैः।

जलाद्रापवनैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

समास - जलाद्राणां पवनास्तैः ।

न- अव्यय ।

अलंकारः - विषम काम से अत्यन्त सन्तप्त जिस रावण का उपचार चन्दन सहित जलकणों से कोमल जलसिक्त पंखों की वायुओं से भी नहीं हुआ, वही उपचार सुरसुन्दरियों के उष्ण निःश्वासों से हो गया, इसलिये यहाँ विषम अलंकार है।

प्रसङ्ग- रावण के देवताओं को ही अपने वश में नहीं किया अपितु ये षड्भृत्य भी उसके अधीन होकर उसकी सेवा किया करती थी। इस प्रकार उसने देवों, मानवों के साथ-साथ अपराजित प्रकृति पर भी अपना अधिकार जमा लिया।

तपेन वर्षाः शरदा हिमागमो वसन्तलक्ष्म्या शिशिरः समेत्य च ।

प्रसूनकलृप्तिं दधतः सदत्तवः पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ॥66

अन्वय - वर्षाः तपेन, हिमागमः शरदा, शिशिरः वसन्तलक्ष्म्या समेत्य च तदा प्रसूनकलृप्तिं दधतः ऋतवः अस्य पुरे वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ।

सर्वङ्कषा - तपेनेति । सदा नित्यं न तु यथाकालं। प्रसूनकलृप्ति-कुसुमसम्पत्तिम् 'प्रसूनं कुसुमं सुमनम् इत्यमरः । दधतो धारयन्त। ऋतवो वर्षाः प्रावृट्। तपेन-ग्रीष्मेण 'उष्णऊष्मागमस्तपः' इति, 'स्त्रियां प्रावृट् स्त्रियां भूमिन् वर्षा अथ शरत्स्त्रियाम्' इति चामरः । तथा हिमागमो हेमन्तः शरदा, तथा शिशिरो वसन्तलक्ष्म्याः च समेत्य मिथुनभावेन मिलित्वा, अस्य रावणस्य पुरे, वसन्तीति वास्तव्याः वस्तारः । 'वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्' इति तव्यत्प्रत्ययः । ते च ते कुटुम्बिनश्च तेषां भाव तत्ताम् । प्रतिवासित्वमित्यर्थः । ययुः समेत्य ययुरिति समुदायसमुदायिनोरभेदविवक्ष्वा समानकर्तृत्वम् । अत्र पुरे युगपत्सर्वर्तुसम्बन्धाभिधानादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिः ।

शब्दार्थ - वर्षाः = वर्षा ने, तपेन ग्रीष्म ऋतु से, हिमागमः = हेमन्त ने, शरदा = शरद् ऋतु से, शिशिर = शिशर ने, वसन्त लक्ष्म्याः = वसन्तलक्ष्मी से, समेत्य च = मिलकर, सदा सदा, प्रसूनकलृप्तिं फूलों की सम्पत्ति को, दधतः = धारण करती हुई, ऋतवः = ऋतुओं ने, अस्य पुरे रावण के नगर में, वास्तव्यकुटुम्बितां कुटुम्बियों का सा भाव, ययुः = प्राप्त कर लिया।

अनुवाद वर्षा ने ग्रीष्म ऋतु से, हेमन्त ने शरद् ऋतु से तथा शिशिर ने वसन्तलक्ष्मी से मिलकर (इस प्रकार) सदा फूलों की सम्पत्ति को धारण की हुई ऋतुओं ने रावण के नगर में कुटुम्बियों का सा भाव प्राप्त कर लिया।

संस्कृत व्याख्या - सदा-सर्वदा, प्रसूनकलृप्तिम् = पुष्पसम्पत्तिम्, दधतः-धारयतः, ऋतवः = षड्ऋतवः, वर्षा = वर्षा ऋतुः, तपेन = ग्रीष्मर्तुना सह हिमागमः = हेमर्तुः शरदा शरदूर्तुना सह, शिशिरः शीतर्तुः, वसन्तलक्ष्म्या = वसन्तमासस्य शोभया च समेत्य = मिलित्वा, अस्य रावणस्य, पुरे नगरे, वास्तव्यकुटुम्बिताम् = नगरनिवासिनः गृहस्थभावम् । ययुः = प्रापः ।

सर्वदा पुष्पसम्पत्तिं धारयतः षड्ऋतवः वर्षर्तुः ग्रीष्मर्तुना सह, हेमन्तर्तुः शरदृतुना सह शीतर्तुः वसन्तमासस्य शोभया च मिलित्वा रावणस्य नगरे नगरनिवासिनः गृहस्थभावं प्रापः ।

व्याकरणः -

सदा-अव्यय

प्रसूनकलृप्तिम् - इकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - प्रसूनां कलृप्ति इति।

दधतः- धा+शतृ दधत् तकारान्त प्रथमा विभक्ति एकवचन।

ऋतवः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

वर्षाः- उकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

तपेन - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन ।

हिमागमः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमाविभक्ति एकवचन।

शरदा - दकारान्त स्त्रीलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन ।

शिशिरः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

वसन्तलक्ष्म्या - ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास- वसन्तस्य लक्ष्मीस्तया

च- अव्यय

समेत्य - अव्यय । सम+ङ्ण+ ल्यप् ।

अस्य- मकारान्त (इदम्) पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

पुरे- अकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन ।

वास्तव्यकुटुम्बिताम् - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - वसन्ति ये ते वास्तव्याः वास्तव्याख्य ते कुटुम्बिनः वास्तव्यकुटुम्बिनः
तेषां भावः ताम्-वास्तव्यकुटुम्बिताम् ।

ययुः - क्रियापद । या+लिट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन ।

अलंकारः-अतिशयोक्ति। समस्त ऋतुओं का यहाँ एक साथ लंका नगरी में रहना बताया गया है। यहाँ सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध की कल्पना की गई है अतः अतिशयोक्ति है।

विशेषः - रावण के भय से सभी छः ऋतुयें लंका में ही आकर रहने लगीं। रावण को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो इसलिये वे कुटुम्ब सहित ही आ गयीं और परस्पर मित्रता करके एक दूसरे मिलकर रहने लगीं। जिससे रावण को किसी भी ऋतु की भीषणता का अनुमान नहीं होता था, अपितु वे सभी उसी के अनुकूल हो गये हैं।

प्रसङ्ग - रावण के अभिमान का ही वर्णन करते हुए नारदजी कहते हैं कि रावण भली भाँति जानता था राम अजन्मा हैं और इन्हीं के हाथों मेरा वध भी होना है लेकिन फिर भी उसने अपने अभिमान को नहीं छोड़ा और राम के प्रतिकूल ही आचरण किया।

स चायमासन्नविनाशस्तुभ्यमपि दुग्ध्वा पुनस्त्वयैव हत इति युग्मेनाह-

अमानवं जातमजं कुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः ।

मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः सदाभिमानैकधना हि मानिनः ॥67

अन्वय - अमानवम् अजम् मनोः कुले जातं प्रभाविनम् आत्मनः भाविनम् अन्तम् जानन्नपि यः जानकीं न मुमोच। मानिनः हि सदा अभिमानैकधनाः ।

सर्वङ्कषा - अमानवमिति । मनोरयं मानवः । 'तस्येदम्' इत्यणप्रत्यये पर्यवसानाज्जातावेकवचनम्। अन्यथा मनोर्जातमित्येव स्यात् । अमानवम्- अमानुषम् न

जायत इति अजम्। 'अन्येष्वपि दृश्यते' इति उपत्ययः। तथापि मनोः कुले जातं-
रामस्वरूपेणोत्पन्नमिति विरोधः स चाभासत्वादलङ्कार इत्याह-प्रभाविनमिति।
महानुभावे तस्मिन्न कश्चिद्विरोध इति भावः। 'आभीक्ष्ण्ये णिनिः' इति णिनिः।
इनिर्वा मत्वर्थीयः । 'भवन्तमिति शेषः'। आत्मनः स्वस्य । अन्तम्-अन्तं
करोतीत्यन्तम् । अन्तशब्दात् तत्करोति इति ण्यन्तात्पचाद्यत्। भाविनं-
भविष्यन्तम्। भविष्यति गम्यादयः । जानन्नपि यो रावणः, जनकस्यापत्यं स्त्री
जानकी सीता तां न मुमोच नामुञ्चदित्यन्वयः । जानतोऽप्यमोचने कारणमाह-
मानिनः सदा प्राणात्ययेऽप्यभिमानएवैकं मुख्यं धनं येषां ते। प्राणात्ययेऽपि न मानं
मुञ्चन्तीत्यर्थः । कारणेन कार्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ।

शब्दार्थ - अमानवम् = अमानुष, अजम् जन्मरहित, मनोः कुले जानम् = मनु
के कुल में उत्पन्न होने वाले, प्रभाविनम् = प्रभावशाली (आपको), आत्मनः अपना,
भाविनम् अन्तम् = नाश करने वाला, जानते हुये भी, यः = जिसने, जानकीं =
सीता को, न मुमोच नहीं छोड़ा, मानिनः = मानी व्यक्ति, हि निश्चित रूप से,
अभिमानै-कधनाः = एकमात्र अभिमान रूपी धन को धारण करने वाले (भवन्ति =
होते हैं)।

अनुवाद - अमानुष, जन्मरहित, मनु के कुल में उत्पन्न होने वाले
प्रभावशाली आपको अपना नाश करने वाला जानते हुये भी जिसने जानकी को नहीं
छोड़ा। मानी व्यक्ति निश्चित रूप से एकमात्र अभिमान रूपी धन को धारण करने
वाले होते हैं।

संस्कृत व्याख्या - अमानवम् = अमानुषम्, अजम् = जन्मरहितम् मनोः
कुले = मनोवंशे, जातम् = समुत्पन्नम्, प्रभाविनम् = अतिप्रभावशालिनम्, आत्मनः
= स्वकीयम्, अन्तम् = अन्तकरम्, भाविनम् = भविष्यन्तम्, जानन् अवगच्छन्,
अपि, यः = रावणः, जानकीम् = जनकपुत्रीम्, न, मुमोच मुक्तवान्, मानिनः
स्वाभिमानिनः, हि, सदा सर्वदा, अभिमानैकधना = अहङ्कारमात्रधनाः भवन्ति ।

अमानुषं जन्मरहितं मनोः वंशे समुत्पन्नं श्रीरामचन्द्रं अतिप्रभावशालिनं भवन्तं स्वकीयम्, अन्तकरं भविष्यन्तम् अवगच्छन् अपि यः रावणः जनकपुत्रीं सीतां न मुक्तवान् । स्वाभिमानिनः हि सर्वदा अहङ्कारमात्रधनाः भवन्ति ।

व्याकरण - अमानवम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास न मानवस्तम्

अजम्- अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

मनोः - उकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

कुले - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन।

जातम् - जन्+क्त अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

प्रभाविनम् - नकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

जानन् - ज्ञा+शतृ तकारान्त पुल्लिङ्ग ग्रंथमा विभक्ति एकवचन।

अपि न- अव्यय ।

यः- दकारान्त (यद्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

जानकीम् - ईकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

मुमोच - क्रियापद। मुच्+लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

मानिनः - नकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमाविभक्ति बहुवचन।

हि, सदा अव्यय।

अभिमानैकधनाः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

समास - अभिमान एव एकं मुख्यं धनं येषां ते।

छन्द- वंशस्थ

अलंकारः अर्थान्तरन्यास। यहाँ कारण से कार्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

प्रसङ्ग - फिर नारदजी कहते हैं कि आपने ही राम का अवतार लेकर ऐसे आततायी रावण का वध किया था। इसी को याद दिलाते हुए वे कहते हैं-

स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन्भवानमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम् ।

पयोधिमाबद्धचलज्जलाविलं विलङ्घ्य लङ्कां निकषाह निष्यति ॥68 ॥

अन्वय - भवान् दाशरथिः भवन् वनान्तात् वनितापहारिणम् अमुम् आबद्धचलज्जलाविलम् पयोधिं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति, अदः स्मरति (किम्) ?

सर्वङ्कषा - स्मरतीति । भातीति भवान्। भातेर्द्वतुः दशरथस्य अपत्यं पुमान्दाशरथिः । 'अत इज्' इतीवप्रत्ययः । भवन् रामः सन्नित्यर्थः । भवतेर्लटः शत्रादेशः। वनान्तात् दण्डकारण्यात् । वनितापहारिणं-सीतापहर्तारममुं रावणम्। आबद्धः-प्रक्षिप्ताद्रिभिर्बद्धसेतुः अतएव चलन्ति जलानि यस्य स च, अत एव आविलश्च तम्-आबद्धचलज्जलाविलं पयोधिं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा लङ्कासमीपे 'समया निकषा शब्दौ सामीप्ये त्वव्यये

मती' इति हलायुधः । अभितः परितः समयानिकषा हा प्रतियोगेऽपि' इति द्वितीया। हनिष्यति - अवधीत्। 'अभिज्ञावचने लृट्' इति भूते लृट्। अदो हननं भवान्स्मरतीति काकुः प्रत्यभिजानासि किमित्यर्थः। शेषे प्रथमा।

शब्दार्थ - भवान्=आपने, दशरथिः राम, भवन् होकर, वनान्तात् = दण्डकारण्य नामक वन से, वनितापहारिणम् = स्त्री (सीता) का हरण करने वाले, अमुम् रावण को, आबद्धचलज्जलाविलम् बांधने से चञ्चल जल से मलिन, पयोधि = समुद्र का,

विलङ्घय = उल्लंघन कर, लङ्कानिकषा लगङ्गा के समीप, हनिष्यति = मारा था, अदः स्मरति ? क्या यह बात स्मरण है?

अनुवाद - आपने राम होकर दण्डकारण्य नामक वन में स्त्री का हरण करने वाले रावण को बांधने से चञ्चल जल से मलिन समुद्र का उल्लंघन कर लङ्का के समीप मारा था। क्या यह बात स्मरण है?

संस्कृत व्याख्या: - भवान् श्रीकृष्णः, दाशरथिः दशरथपुत्रः, भवन् सन्, वनन्ताद्वनप्रदेशात्, वनितापहारिणम् = स्वभार्यायाः सीतायाः अपहर्तारम् अमुम् रावणम्, आबद्धचलज्जलाविलम् = प्रक्षिप्तप्रस्तरैः बद्धेन सेतुना चञ्चलजलराशिकलुषं पयोधिम् = समुद्रम्, विलङ्घय-लङ्घयित्वा, लङ्काम् लङ्कानगरीम् निकषा= समीपे, हनिष्यति-अवधीत्, अद इदं (भवान्), स्मरति = जानाति ।

भवान् श्रीकृष्णः पूर्वस्मिन् जन्मनि दशरथपुत्रः सन् वनप्रदेशात् स्वभार्यायाः सीताया अपहर्तारं रावणं प्रक्षिप्त प्रस्तरैः बद्धेन सेतुना चञ्चलजलराशिकलुषं समुद्रं लयित्वा लङ्कानगरीं समीपे अवधीत् इदं जानाति किल्।

व्याकरण:-

भवान् - तकारान्त (भवत्) पुल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति एकवचन।

दाशरथिः इकारान्त (दशरथ इज्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

भवन् - तकारान्त (भू+शत्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

वनान्ताद्- अकारान्त पुल्लिङ्ग पञ्चमी विभक्ति एकवचन ।

वनितापहारिणम् - नकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - वनितामपहरति तच्छीलः वनितापहारी तम्

अमुम्- सकारान्त (अदस्) पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

आबद्धचलज्जलाविलम् अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - चलन्ति आविलानि च जलानि यस्यासौ चलज्जला। विल आबद्धः (अतएव)
चलज्जलाविलश्चेति । आबद्धचलऽजलाविलः तम्

पयोधिम् - इकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

विलङ्घय- अव्यय विलङ्घ+ ल्यप्

लङ्काम् - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

निकषा- अव्यय।

हनिष्यति - क्रियापद । हन्+लृट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

अभिज्ञावचने लृट्' से भूतकाल में लृट् का प्रयोग

अदः- सकारान्त (अदस्) नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

स्मरति- क्रियापद । स्मृलट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

विशेष:- यहाँ तक कवि ने 19 श्लोक में रावण के जन्म का वर्णन किया है पूर्वपक्ष के रूप में रावण के विभिन्न पराक्रमों का वर्णन किया है। फिर श्रीकृष्ण से कहते हैं कि ऐसे रावण का वध करने में भी आप ही समर्थ थे। तत्त्व अवश्य ही उसके पुर्नजन्म में शिशुपाल का वध करने में भी आप ही समर्थ होंगे।

प्रसङ्ग - पूर्व जन्म में ऐसे भयंकर कार्यों को करने वाले रावण ने ही इस जन्म में शिशुपाल के रूप में जन्म लिया है। धोखा देने में तत्पर वह इस जन्म में भी पूर्व जन्म के समान ही कृत्यों को कर रहा है।

अथोपपत्ति छलनापरोऽपरामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम् ।

तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया प्रतीयते सम्प्रति सोऽप्यसः परैः ॥69 ॥

अन्वय - अथ छलनापरः एषः शैलूषः भूमिकाम् इव अपराम् उपपत्तिम् अवाप्य सम्प्रति शिशुपालसंज्ञया तिरोहितात्मा (सन्) सः अपि परैः असः प्रतीयते ।

सर्वङ्कषा - अथेति । राक्षसदेहत्यागानन्तरं सम्प्रति छलनापरः-परप्रतारणापरः, एषः-रावणः, शैलूषः नटः तस्य भूमिकां रूपान्तरमिव 'शैलूषो नटभिल्लयोः, भूमिका रचनायां स्यान्मूर्त्यन्तरपरिग्रहे' इति विश्वः। अपरामुपपत्तिम्-जन्मान्तरमित्यर्थः । अवाप्य शिशुपालसंज्ञया तिरोहितात्मातिरोहितस्वरूपः सन् । सोऽपि-रावण एव सन्नपि । परैरितरैः स न भवतीत्यसः तस्मादन्य एव । 'नञ्' इति नञ्समासः । अतएव 'एतत्तदोः सुलोपो' इत्यादिना न सुलोपः । प्रतीयते ज्ञायते इति। प्रतिपूर्वादिणः कर्मणि लट्। यथैक एव शैलूषो रूपान्तरमास्थाय तद्देशभाषादिभिरन्य एव प्रतीयते तद्वदयमपि मानुषदेहपरिग्रहादन्य इव भाति। दौर्जन्यं तु तदेवेत्यवश्यं संहार्य इति भावः ।

शब्दार्थ - अथ = अनन्तर, छलनापरः दूसरों को छलने में तत्पर, एषः = यह (रावण), शैलूषः भूमिकाम् इव नट की भूमिका (वेष बदलना) के समान, अपरम् उपपत्तिं = दूसरे जन्म को, अवाप्य = प्राप्त करके, सम्प्रति इस समय, शिशुपालसंज्ञया = शिशुपाल नाम से, तिरोहितात्मा सन् = अपने आपको छिपाता हुआ, सः अपि वही होने पर भी, परैः = दूसरों के द्वारा, असः वह नहीं है ऐसा, प्रतीयते = प्रतीत होता है।

अनुवाद - अनन्तर दूसरों को छैलूने में तत्पर यह रावण नट की भूमिका (वेष बदलना) के समान दूसरे जन्म को प्राप्त कर इस समय शिशुपाल नाम से अपने आपको छिपाता हुआ वही होने पर भी दूसरों के द्वारा वह नहीं है ऐसा प्रतीत होता है अथवा जाना जाता है।

संस्कृत व्याख्या - अथ रावणस्य मरणादनन्तरं सम्प्रति = अस्मिन् काले, छलनापरः- वञ्चनातत्परः, एष रावणः, शैलूषः नटः, भूमिकां रूपान्तरम् इव, अपराम् = अन्याम्, उपपत्तिम् = स्वरूपम् जन्मान्तरं, अवाप्य प्राप्य, शिशुपालसंज्ञया =

शिशुपालनाम्ना, तिरोहितात्मा = प्रच्छन्नस्वरूपः, सोऽपि रावणः सन् अपि, परैः अन्यैः, जनैः, असः = रावणाद् भिन्न एव, प्रतीयते जायते ।

रावणस्य मरणादनन्तरम् ३. स्मिन् काले वञ्चनातत्परः रावणः नटः रूपान्तरम् इव अन्यम् स्वरूपं जन्मान्तरं प्राप्य शिशुपालनाम्ना प्रच्छन्नस्वरूपः रावणः सन् अपि अन्यै जनैः रावणाद् भिन्न एव जायते।

व्याकरणः -

अथ, सम्प्रति- अव्यय

छलनापरः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास छलनायां पर इति।

एषः- दकारान्त (एतद्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

शैलूषः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

भूमिकाम् - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

इव- अव्यय

अपराम् - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

उपपत्तिम् - इकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीयाविभक्ति एकवचन।

अवाप्य- अव्यय। अव+आप्+ल्यप् ।

शिशुपालसंज्ञया-आकारान्त स्त्रीलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास - शिशुपाल इति संज्ञा तथा।

तिरोहिताला - नकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

अपि - अव्यय।

परैः- अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति बहुवचन ।

असः- दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समासः न सः अथवा स न भवति इति ।

प्रतीयते - क्रियापद। प्रति+इण्+लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

अलंकारः- उपमा। नट जैसे अपने वास्तविक रूप को छिपाकर अन्य रूपों में प्रकट होता है वैसे ही रावण भी अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाकर इस जन्म में शिशुपाल के रूप में प्रकट हुआ है। नट से तुलना करने के कारण यहाँ उपमा अलंकार है।

विशेषः- श्लोक 49 से लेकर 69 तक 21 श्लोकों में महाकवि ने शिशुपाल के पूर्वजन्म रावणरूप का वर्णन किया है। जो यहाँ समाप्त होता है।

प्रसङ्ग - शिशुपाल के अनेक पूर्वजन्मों का वर्णन देवर्षि कर चुके हैं, उसने अपने सभी जन्मों में लोक को पीड़ित ही किया है। अब इस जन्म में शिशुपाल बनकर भी वह यही कार्य कर रहा है। यहाँ से नारदमुनि उसके इस जन्म का वर्णन करते हैं।

अथैतद्वैर्जन्यं त्रिभिराविष्करोति-

स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः ।

युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकैरसंशयं सम्प्रति तेजसा रविः ॥70 ॥

अन्वय - स बालः वपुषा चतुर्भुजः, मुखेन पूर्णेन्दुनिभः त्रिलोचनः आसीत् । सम्प्रति युवा कराक्रान्तमहीभृत् उच्चकैः तेजसा रविः असंशयम्।

सर्वङ्कषा - स बाल इति। सः शिशुपालो बालः सन् वपुषा चतुर्भुजो-भुज चतुष्टयवानासीत् । विष्णुरिति ध्वनिः। मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्तत्तुल्यः, त्रिलोचनो

लोचनत्रय-वानासीत्। त्र्यम्बक इति ध्वनिः। बालविशेषणात्सम्प्रति तत्सर्वमन्तर्हितमिति भावः । सम्प्रति तु युवासंकरेण बलिना आक्रान्तमहीभृत्-अधिष्ठितराजकः सन् अन्यत्र अंशुव्याप्त शैलः । 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यमरः । उच्चकैस्तेजसा रविरसंशयम्-संशयो नास्तीत्यर्थः । अर्थाभावेऽव्ययीभावः । वपुषा मुखेन चेति 'येनाङ्गविकारः' इति तृतीया। हानिवदाधिक्य-स्यापि विकारत्वात्। तथा च वामनः 'हानिवदाधिक्यमप्यङ्गविकारः' इति । तेजसेति 'प्रकृत्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्' इति तृतीया। कराक्रान्तेत्यादिना । श्लेषानुप्राणितेयमुत्प्रेक्षा । रविरसंशयमिति तस्याः पूर्णेन्दुनिभ इत्युपमया संसृष्टिः हरिहरादितुल्यमहिमत्वादतिदुर्धर्षः स इति भावः ।

शब्दार्थ - सः बालैः = वह बालक (शिशुपाल), वपुषा चतुर्भुजः शरीर से चार भुजाओं वाला, मुखेन मुख से, पूर्णेन्दुनिभः = पूर्ण चन्द्रमा के समान, त्रिलोचनः = तीन नेत्रों वाला, आसीत् था। सम्प्रति इस समय, युवा = युवावस्था को प्राप्त, कराक्रान्तमहीभृत् कर के द्वारा राजाओं को आक्रान्त करने वाला (किरणों द्वारा पर्वत को आक्रान्त करने वाला), उच्चकैः ऊँचे, तेजसा तेज से, रविः रवि है, असंशयं इसमें कोई संदेह नहीं है।

अनुवाद - वह बालक (अवस्था से ही) शरीर से चार भुजाओं वाला, मुख से पूर्ण चन्द्रमा के समान तथा तीन नेत्रों वाला था। इस समय युवावस्था को प्राप्त, कर के द्वारा राजाओं को आक्रान्त करने वाला (किरणों के द्वारा पर्वत को आक्रान्त करने वाला) ऊँचे तेज से सूर्य है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

संस्कृत व्याख्या:- सः = शिशुपालः, बालः शिशुः, वपुषा = शरीरेण, चतुर्भुजः-चतुर्बाहुः, आसीत् अभवत्, मुखेन = आस्येन पूर्णेन्दुनिभः = पूर्णचन्द्र इव, त्रिलोचन = त्रिनेत्रः (आसीत्) सम्प्रति इदानीम्, युवा = तरुणः (सन्) कराक्रान्तमहीभृत् = करदीकृतभूपालः, (सूर्यपक्षे) = किरणैराक्रान्तः पर्वतः, उच्चकै उच्चैः तेजसा = प्रकाशेन, असंशयं निः सन्देहम् रविः सूर्यः ।

बाल्यावस्थायां सः शिशुपालः शरीरेण चतुर्बाहुरासीत् मुखेन पूर्णचन्द्र इव त्रिनेत्रः आसीत्। इदानीं तरुणः सन् करदीकृत भूपालः सः उच्चैः प्रतापेन निः सन्देहं रविरेव प्रतिभाति। (सूर्यपक्षे) किरणैराक्रान्तः पर्वतः उच्चैः तेजसा स निः सन्देहं रविः ।

व्याकरणः -

सः- दकारान्त (तद) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

बालः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

वपुषां - षकारान्त (वपुष) नपुंसकलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

चतुर्भुजः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

समास - चत्वारः भुजाः यस्य सः।

आसीत्- क्रियापद । अस्लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

मुखेन - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन ।

पूर्णेन्दुनिभः - अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - पूर्णश्चासौ इन्दुश्च तेन निभः इति।

त्रिलोचनः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - त्रीणि लोचनानि यस्य सः।

सम्प्रति - अव्यय।

कराक्रान्तमहीभृत् - तकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - करैः आक्रान्ताः महीभृत् येन स

उच्चकैः - अव्यय ।

तेजसा - सकारान्त नपुंसकलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

रविः - इकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

असंशयम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - न संशयम्

अलंकार:- श्लेष, उत्प्रेक्षा, उपमा, कराक्रान्तमहीभृत् में श्लेष, तेजसा रविः असंशयम् में उत्प्रेक्षा तथा मुखेन पूर्णेन्दुनिभः में उपमा है।

विशेष - यहाँ पर कराक्रान्तमहीभृत् में श्लेष तथा तेजसा रविः असंशयम् में उत्प्रेक्षा है। यह उत्प्रेक्षा पूर्वोक्तश्लेष से अनुप्राणित है। मुख से पूर्ण चन्द्रमा के समान-'मुखेन पूर्णेन्दुनिभः' में उपमा है।

प्रसङ्ग - अब नारदजी कहते हैं कि शिशुपाल का भी लोकोत्तर प्रभाव है, उसने सभी देवता, दैत्य और राक्षसों को भी अपने वश में कर रखा है, इस जन्म में पराक्रम में वह अपने पूर्व जन्मों के पराक्रमों से भी बढ़कर है-

स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसामनुग्रहावग्रहयोर्यदृच्छया ।

दशाननादीनभिराद्धदेवतावितीर्ण वीर्यातिशयान् हसत्यसौ ॥71 ॥

अन्वय - यदृच्छयां स्वयं सुरदैत्यरक्षसाम् अनुग्रहावग्रहयोः विधाता असौ अभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् दर्शाननादीन् हसति ।

सर्वङ्कषा - स्वयमिति । यदृच्छया- स्ववेच्छया, स्वयं सामर्थ्येन न तु देवता-प्रसादबलादितिभावः सुरदैत्यरक्षसां-देवदानव यातुधानानाम्, अनुग्रहावग्रहयोः-प्रसाद-निग्रहयोर्विधाताकर्ता असौ-शिशुपालः, अभिराद्धाभिराधिताभिर्देवताभिरीश्वरादिभिः । दत्तो वीर्यातिशयः प्रभावातिशयो येषां तान्दशाननादीन्हसति। अनन्य प्रसादलब्धैश्वर्ये मयि कथं याचकैस्तुल्यतेति गर्वाद्धसतीत्यर्थः ।

शब्दार्थ - यदृच्छया = अपनी इच्छा के अनुसार। स्वयं अपने आप, सुर-दैत्यरक्षसाम् देवता, दैत्य और राक्षसों पर, अनुग्रहावग्रहयोः कृपा और निग्रह (दण्ड)

करने वाला, असौ हव (शिशुपाल) अभिराद्धदेवता वितीर्णवीर्यातिशयान् = जिन्हें आराधित देवताओं के द्वारा पराक्रम को अधिकता दी गई थी (ऐसे), दशाननादीन् = रावण आदि पर, हसति हसता है।

अनुवाद - अपनी इच्छा के अनुसार अपने आप देवता, दैत्य और राक्षसों पर कृपा और निग्रह (दण्ड) करने वाला वह (शिशुपाल) जिन्हें आराधित देवताओं द्वारा पराक्रम की अधिकता दी गई थी, ऐसे रावण आदि पर हंसता है।

संस्कृत व्याख्या:- यदृच्छया स्वेच्छया, स्वयम् = आत्मनैव, सुरदैत्य- रक्षसाम् = देवदैत्यराक्षसानाम्, अनुग्रहावग्रहयोः = निग्रहानुग्रहयोः, विधाता विधायकः, असौ अयं शिशुपालः, अभिराद्धदेवतावितीर्ण वीर्यातिशयान् = समाराधितदेवप्रदत्ता- सामान्यपराक्रमविशेषान् दशाननादीन् रावणादीन् हसति = उपहसति इव।

स्वेच्छया आत्मनैव देवदैत्यराक्षसानाम् निग्रहानुग्रहयोः विधायकोऽयं शिशुपाल समाराधितदेवप्रदत्तासामान्यपराक्रमविशेषान् रावणादीन् उपहसति इव।

व्याकरण:-

यदृच्छया- आकारान्त स्त्रीलिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

स्वयम् - अव्यय ।

बहुवचन । अभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति

सुरदैत्यरक्षसाम् - सकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठ। विभक्ति बहुवचन ।

समास - सुराश्च, दैत्याश्च रक्षांसि चेति सुरदैत्यरक्षांसि तेषा।

अनुग्रहावग्रहयोः - अकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति द्विवचन।

समय - अनुग्रहश्च अवग्रहश्च अनुग्रहावग्रहौ तयोः

विधाता - ऋकारान्त (विधात) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

असौ- सकारान्त (अदस्) पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

समास - अभिराद्धाश्च ताः देवताः अभिराद्धदेवताः ताभिः वितीर्ण वीर्यस्य अतिशयः येषान्ते तान् ।

दशाननादीन्-इकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति बहुवचन ।

समास - दशानन आदिर्येषां ते दशाननादयः तान् दशाननादीन् ।

हसति - क्रियापद। हस्+लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

अलंकार:- काव्यलिङ्ग। रावण आदि ने देवताओं से आराधना कर पराक्रम प्राप्त किया था और शिशुपाल ने उसे स्वयं अर्जित किया था, इसलिये वह उन पर हँसता था। उसके हँसने का कारण होने के कारण यहाँ काव्यलिङ्ग है।

विशेष:- यहाँ रावणादि के पराक्रम की अपेक्षा शिशुपाल के पराक्रम को श्रेष्ठ बताया है क्योंकि वह, उसने स्वयं अर्जित किया था, इसलिये समाराधित देवों से पराक्रम प्राप्त किये रावणादि पर हँसता था।

प्रसङ्ग - शिशुपाल को अपने पूर्वजन्म का बुरा स्वभाव इस जन्म में भी प्राप्त हुआ है इसलिये वह लोक को पीड़ित कर रहा है।

बलावलेपादधुनाऽपि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा ।

सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥72 ॥

अन्वय - जिगीषुणा बलावलेपात् अधुना अपि पूर्ववत् जगत् प्रबाध्यते । सती योषित् इव सुनिश्चला प्रकृतिः भवान्तरेषु अपि पुमांसम् अभ्येति ।

सर्वङ्कषा - बलेति । जिगीषुणा । नित्योत्सावतेत्यर्थः । तेन-शिशुपालेन। बलावलेपाद्बलगर्वादधुनापि । पूर्ववत्-पूर्वजन्मनीव। जगत्प्रबाध्यते। तथाहि मनी पतिव्रता योषिदिव। सुनिश्चलातिस्थिरा। प्रकृति-स्वभावो भवान्तरेषु जन्मान्तरेष्वपि

पुमांसमभ्येति । पति या नाभिचरति मनोवाक्कायसंयता। सा भर्तुलोमाप्नोति सद्भिः साध्वीति च चोच्यते इति मनुः। उपमोपमेयपुरस्कृतोऽर्थान्तरन्यासः ।

शब्दार्थ - जिगीषुणां= जीतने की इच्छा वाले, तेन शिशुपाल के द्वारा, बलावलेपात् बल के गर्व से, अधुना अपि अब भी (पूर्वजन्म के समान), जगत् = संसार, प्रबाध्यते = पीड़ित किया जा रहा है, सती पतिव्रता, योषित् इव = स्त्री के समान, सुनिश्चला = स्थिर, प्रकृतिः = स्वभाव, भवान्तरेषु अपि दूसरे जन्मों में भी, पुमांसम् = पुरुष को, अभ्येति प्राप्त होता है।

अनुवाद - जीतने की इच्छा वाले (अर्थात् नित्य उत्साहवान्) उस (शिशुपाल) के द्वारा बल के गर्व से अब भी (पूर्वजन्म के समान) संसार पीड़ित किया जा रहा है। पतिव्रता स्त्री के समान स्थिर स्वभाव दूसरे जन्मों में भी पुरुष को प्राप्त होता है।

संस्कृत व्याख्या - जिगीषुणा = विजयेच्छुकेन, तेन = शिशुपालेन, बलावलेपात् = स्वसामर्थ्यदर्पात्, अधुना अपि अस्मिन् जन्मनि अपि पूर्ववत् = पूर्वजन्मानिवत्, जगत् = लोकः, प्रबाध्यते = प्रपीड्यते, सती = पतिव्रता, योषित् स्त्री, इव, सुनिश्चला = अतिस्थिरा, प्रकृति = स्वभावः, भवान्तरेषु जन्मान्तरेषु अपि, पुमांसम् पुरुषम्, अभ्येति प्राप्नोति ।

विजयेच्छुकेन तेन शिशुपालेन स्वसामर्थ्यदर्पात् अस्मिन् जन्मन्यपि पूर्वजन्मानिवत्, लोकः प्रपीड्यते। पतिव्रता इव अतिस्थिरः पुरुषस्य स्वभावो जन्मान्तरेष्वपि पुरुषं प्राप्नोति ।

व्याकरणः - जिगीषुणा-उकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

जि+सन्+उ= जिगीषु

तेन- दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

बलावलेपात्- अकारान्त पुल्लिङ्ग पञ्चमी विभक्ति एकवचन।

समास-बलस्य अवलेपः तस्मात्

अधुना, आदि, पूर्ववत् - अव्यय ।

जगत् - तकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

प्रबाध्यते- क्रियापद । प्र+बाध्= णिच् लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

सती- ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

योषित् - तकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

इव- अव्यय ।

सुनिश्चला - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

प्रकृति - इकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

भवान्तरेषु - अकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति बहुवचन ।

अपि अव्यय ।

पुमांसम् - नकारान्त (पुमान्) पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

अभ्येति - क्रियापद। अभि इण्+लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

अलंकार- उपमा, अर्थान्तरन्यास। स्वभाव की पतिव्रता स्त्री से तुलना करने के कारण उपमा है तथा पूर्वार्द्ध के विशेष कथन का नीचे के सामान्य कथन से समर्थन किया गया है। इसलिये अर्थान्तरन्यास है।

विशेष:- व्यक्ति बार-बार जन्म लेता है तब उसका शरीर आदि सभी कुछ बदल जाता है लेकिन मूलस्वभाव में परिवर्तन नहीं होता। जैसे पतिव्रता स्त्री विभिन्न जन्म लेने पर भी अपने उसी पति को प्राप्त कर लेती है।

प्रसङ्ग - अब नारदजी अपने कथन का उपसंहार करते हुए कहते हैं ऐसे आततायी शिशुपाल का वध करना ही आपका कर्तव्य है-

तदेनमुल्लङ्घितशासनं विधेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम् ।

शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो विपादनीया हि सतामसाधवः ॥73 ॥

अन्वय - तत् विधेः उल्लङ्घितशासनं एनम् कीनाशनिकेतनातिथिम् विधेहि ।
शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः असाधवः सतां विपादनीयाः हि।

सर्वङ्कषा- तदेनमिति । तत्तस्माद्विधेर्विधातुरप्युल्लङ्घितशासनम्। स्वयं विधातेत्याद्युक्तरीत्यातिक्रान्तदैवशासनमित्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । एवं-शिशुपालं । कीनाशकेतनातिथि-कीनाशो यमस्तस्य निकेतनं गृहं तत्रातिथि प्राधुणिक विधेहि कुरु। यमगृहं प्रेषयेत्यर्थः । 'कीनाशः कर्षके क्षुद्रे कृतांतोपाशुघातिनो इति विश्वः । न चैतत्प्रापुणिकहस्तेन सर्पमारणं, भवादृशामवश्यकर्तव्यत्वादित्याह- शुभेतरा-चारेणदुराचारेण विपक्त्रिमाः परिपाकेन निवृत्ताः काल परिपाकेन प्राप्त आपदो येषां ते तथोक्ताः । 'डिवतः क्त्रिः' इति पचेः क्त्रिप्रत्ययः। 'कोर्मन्मित्यम्' इति तद्धितो मम्प्रत्यय । असाधवो दुष्टाः सतां-भवादृशां जगन्नियन्तृणं निपातनीयाः वध्या हि। न च नैर्घण्य दोषः, स्वदोषेणैव तेषां विनाशे- निमित्तमात्रत्वादस्माकमित्याशयेन शुभेतराचारेत्यादि विशेषणोक्तिः सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ।

शब्दार्थ - तत् = अतः, विधेः = विधाता की, उल्लङ्घितशासनम् = आज्ञा का उल्लंघन करने वाले, एनम् = इस (शिशुपाल) को, कीनाशनिकेतनातिथिम् = यमराज के घर का अतिथि, विधेहि बना दीजिए। शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः = जिनकी आपत्तियाँ अशुभ आचरण से परिपक्वता को प्राप्त होती हैं ऐसे, असाधवः = असज्जन पुरुष, हि निश्चित रूप से, सतां सज्जनों के द्वारा, विपादनीया वध करने योग्य होते हैं।

अनुवाद - अतः विधाता की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले इसे यमराज के घर का अतिथि बना दीजिए। जिनकी आपत्तियाँ अशुभ आचरण से परिपक्वता को

प्राप्त होती हैं ऐसे असज्जन पुरुष निश्चित रूप से सज्जनों के द्वारा वध करने के योग्य होते हैं।

संस्कृत व्याख्या: तत् अनेन कारणेन, विधेः = ब्रह्मणः, उल्लङ्घित-शासनम्-अतिक्रान्ताज्ञाम्, एनम् = शिशुपालम्, कीनाशनिकेतनातिथिम्-यमसदनस्य अतिथिम् विधेहि कुर्याः । हि-यतो हि, शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः = दुराचाराद् येषाम् आपन्त्यः परिपक्वतां प्राप्तवत्त्यः ते, असाधवः = दुष्टजनाः सताम् = सज्जनानां, विपादनीयाः = वध्याः ।

अनेन कारणेन ब्रह्मणोऽतिक्रान्ताज्ञाम् शिशुपालं यमसदनस्य अतिथिः कुर्याः यतो हि दुराचाराद् येषाम् आपत्तयः परिपक्वतां प्राप्तवत्त्यः ते दुष्टजनाः सज्जनानां वध्याः ।

व्याकरण:-

तत्- दकारान्त (तद) नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

विधेः- इकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

उल्लङ्घितशासनम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

एनम्- अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

कीनाशनिकेतनातिथिप् - इकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

समास - कीनाशस्य निकेतनम् तस्य अतिथिः तम्

विधेहि - क्रियापद। विधा+लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन।

हि- अव्यय।

शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः - दकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन ।

समास - शुभात् इतरः शुभेतरः स चासौ आचारश्चेति शुभेतराचारः विपाकेन निर्वृत्ता विपक्त्रिमाः शुभेतराचारेण विपक्त्रिमा आपदः येषान्ते।

असाधवः - उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति बहुवचन ।

समास न साधवः । नञ् तत्पुरुष ।

सताम् - तकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

विपादनीयाः - आकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रथमाविभक्ति बहुवचन।

अलंकारः- अर्थान्तरन्यास। यहाँ पूर्व के विशेष कथन का नीचे के सामान्य कथन से समर्थन किया गया है। इसलिये अर्थान्तरन्यास है।

विशेषः- नारदजी विशेष आग्रह कर श्रीकृष्ण से कहते हैं कि आप तो शिशुपाल को यमसदन पहुँचाने में निमित्तमात्र बन जाइये, इसकी आपत्तियों स्वयं पूर्णता को प्राप्त हो चुकी है अतः यह स्वयं विनाशयोग्य हो गया है आप तो विधि की व्यवस्था को बनाने के लिये यह करेंगे।

प्रसङ्ग - शिशुपाल का वध करने से आपके मित्रभूत तथा निरन्तर आपसे कृपा की कामना करने वाले इन्द्र का हृदय भी प्रसन्न हो जायेगा। बहुत दीर्घकाल बाद वह शिशुपाल के भय से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करेगा-

किञ्चैवं दुष्टनिग्रहे शिष्टानुग्रहः स्यादित्याह-

हृदयमरिवधोदयादुदूढद्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य ।

घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिम्भनिपीडनक्षमत्वम् ॥74 ॥

अन्वय - अरिवधोदयात् उदूढद्रढिम पुरन्दरस्य हृदयं पुनः घनपुलकपुलो-
मजाकुचाग्रद्रुतपरिम्भनिपीडनक्षमत्वं दधातु ।

सर्वङ्कषा - हृदयमिति । अरिवधोदयात्-रिपुनाशलाभात्। उदूढद्रढिम नैश्चि-
न्त्याद्धृतदार्दव्यम् । स्वस्थमिति यावत्। पृथ्वादित्वादृशब्दादिमनिचप्रत्ययः 'र ऋतो
हलादेर्लघोः' इति ऋकारस्य रेफादेशः। पुरः शत्रुपुराणि दारयतीति पुरन्दरः इन्द्रः 'पूः

सर्वयोर्दारिसहोः' च इति खचप्रत्ययः । 'खचि ह्रस्वः' इत्युयधाह्रस्वः । 'वाचंयमपुरन्दरौ' च इति निपातनादन्तत्वं मुमागमश्च । तस्य हृदयं पुनर्भूयोऽपि पूर्ववदेवेति भावः । घनपुलकयोः- सान्द्रोरोमाञ्चयोः। पुलोम्नो जाता पुलोमजा शची, तस्याः कुचाग्रयोर्दुत- परिरम्भ औत्सुक्याच्छीघ्रालिङ्गनं तत्र यत्पीडनं तस्य क्षमत्वं सहत्वं दधातु । प्राक्चित्त-विक्षेपात्त्यक्तभोगेन शक्रेण सम्प्रति त्वत्प्रसादान्निष्कण्टकं स्वकीयं राज्य भुज्यतामित्यर्थः । अत्र दाद्यपदार्थस्योदूढद्रढिमेति विशेषणगत्या निपीडनक्षमत्वं प्रति हेतुत्वोक्त्वा पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम्। हृदयनिपीडनक्षमत्वं सम्बन्धेऽप्यसम्बन्धोक्त्या सम्बन्धेऽसम्बन्धरूपाति-शयोक्तिरित्वर्थालङ्कारो वृत्त्यनुप्रासश्च तैरन्योन्यं संसृज्यते। पुष्पिताग्रा वृत्तम् । 'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति लक्षणात् ।

शब्दार्थ - अरिवधोदयात् = शत्रुनाश के लाभ से, उदूढडिम= दृढता धारण कर लेने पर, पुरन्दरस्य इन्द्र का, हृदयं हृदय, पुनः फिर, घनपुलकपुलोमजा- कुचाग्रदूतपरिरम्भ निपीडनक्षमत्वं = घने रोमाञ्च से युक्त इन्द्राणी के स्तनों के अग्रभाग का शीघ्र आलिङ्गन करने पर होने वाले दबाव को सहन करने की योग्यता, दधातु धारण करें।

अनुवाद - शत्रुनाश के लाभ से दृढता धारण कर लेने पर इन्द्र का हृदय फिर घने रोमाञ्च से युक्त इन्द्राणी के स्तनों के अग्रभाग का शीघ्र आलिङ्गन करने पर होने वाले दबाव को सहन करने की योग्यता धारण करें।

संस्कृत व्याख्या: - अरिवधोदयात्-शत्रुनाशलाभात्, उदूढद्रढिम् = धृता- दृढम् पुरन्दरस्य = इन्द्रस्य, हृदयम् = चित्तम्, पुनः भूयोऽपि, घनपुलोमजाकुचाग्रद्रुत-परिरम्भनिपीडनक्षमत्वम् = सघन रोमाञ्चयुक्तशचीस्तनाग्रयोः औत्सुक्याच्छीघ्रालिङ्गनं तत्र यत्पीडनं तस्य सहत्वं, दधातु धारयतु ।

शत्रुभलानाशलाभात् धृतादृढ्यं इन्द्रस्य चित्तं भूयोऽपि सघनरोमाञ्चयुक्त-शचीस्तनाग्रयोः औत्सुक्याच्छीघ्रालिङ्गनं तत्र यत्पीडनं तस्य सहत्वं धारयतु ।

व्याकरण: -अरिवधोदयात्-अकारान्त पुल्लिङ्ग पञ्चमी विभक्ति एकवचन।

समास:- अरेः वधः एव उदयः अरि वधोदयः तस्मात् ।

उद्बद्धदिम् - नकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमविभक्ति एकवचन।

समास- उर्दूढः द्रुढिमा येन तत्।

पुरन्दरस्य- अकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

हृदयम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

पुनः- अव्यय।

घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्वतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

समास - घनः पुलकः ययोस्तौ घनपुलकी, पुलोमनः जाता पुलोमजा, तस्याः कुचाग्रौ पुलोमजाकुचाग्रौ घनपुलकौ च तौ पुलोमजाकुचाग्रौ इति घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रौ तयोः यः द्रुतः परिरम्भः तेन यत् निपीडनम् तस्य क्षमत्वम् ।

पुनः- अव्यय ।

छन्द- पुष्पिताग्रा

महाकाव्य के लक्षण के अनुसार सर्ग के अन्त में महाकवि ने छन्द बदला है यहाँ पुष्पिताग्रा छन्द है। जिसका लक्षण है अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। अर्थात्, इसके प्रथम और तृतीय चरणों में क्रम से नगण, नगण, रगण और यगण इस प्रकार कुल 12-12 वर्ण होते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में नगण, जगण जगण, रगण और अन्त में एक गुरु वर्ण के क्रम से 13-13 वर्ण होते हैं।

अलंकारः - काव्यलिङ्ग और अतिशयोक्ति। इन्द्र के हृदय की दृढ़ता को उसकी निपीडन क्षमता का हेतु बताया गया है, इसलिये यहाँ काव्यलिङ्ग है और सम्बन्ध में असम्बन्धलक्षणा अतिशयोक्ति ।

वृत्त्यनुप्राप्त भी है तथा इन तीनों अलंकारों की संसृष्टि भी है।

प्रसङ्ग - अपना सन्देश कहकर नारदजी के चले जाने पर इस श्लोक में, उनके वचनों से उत्तेजित हुए श्रीकृष्ण की शिशुपाल पर क्रुद्ध दृष्टि का वर्णन इस श्लोक में है।

ओमित्युक्तवतोऽथ शाङ्गिण इति व्याहृत्य वाचं नभः
स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति ।
शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति
व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ॥75 ॥

अन्वय - तस्मिन् सुरमुनौ इति वाचं व्याहृत्य नभः उत्पतिते पुरः इन्दोः श्रियं विभ्रति, अथ ओम् इति उक्तवतः चैद्यम् प्रति क्रुद्धस्य शाङ्गिणः वदने व्योम्नि इव अनिशं शत्रूणां विनाशपिशुनः केतुः भ्रुकुटिच्छलेन आस्पदं चकार ।

सर्वङ्कषा - ओमिति । तस्मिन्सुरमुनौ= नारदे, इति इत्थंभूतां, वाचं व्याहृत्य = उक्त्वा नभ उत्पतिते = समुद्गते पुरोऽग्रे इन्दोः श्रियं (= चन्द्रस्य शोभां) बिभ्रति सति । अथ = मुनिवाक्यानन्तरमोमित्युक्तवतः = तथास्त्वित्यङ्गीकृतवतः । 'ओ प्रश्नेऽङ्गीकृतौ रोषे' इति विश्वः । चैदेनां जनपदानामयं चैद्यः शिशुपालः । 'वृद्धेत्कोस-लाजादाज्यङ्' इति व्यप्रत्ययः । तं प्रति क्रुद्धस्य रुष्टस्य (शृङ्गयोः विकारः) शाङ्ग= धनुः, तदस्यास्तीति तस्य) शाङ्गिणः (श्रीकृष्णस्य) वदने (मुखे) व्योम्नि (आकाशे) इव अनिशं = सर्वदा । अव्यभिचारिणेत्यर्थः । शत्रूणां विनाशस्य पिशुनः सूचकः । 'चन्द्रमभ्युत्थितः केतुः क्षितीशानां विनाशकृत्' इति शास्त्रादिति भाषा। केतुः उत्पातविशेषः । 'केतुर्द्धतौ पताकायां ग्रहोत्पातारिलक्ष्मसु' इत्यमरः । भ्रुकुटिच्छलेन = भ्रूभङ्गव्याजेनास्पदं = प्रतिष्ठां, स्थितिं चकार । 'आस्पदं प्रतिष्ठायाम्' इति निपातनात्सुडागमः । अनेन वाक्यार्थभूतस्य वीरसहकारिणो रौद्रस्य स्थायी क्रोधः स्वानुभावेन भ्रुकुट्या कारणभूतोऽनुमेय इत्युक्तम् । तथा तदविनाभूतस्याङ्गिनो वीरस्य स्थायी प्रयत्नोपनेय उत्साहोऽप्युत्पन्न

एवेत्यनुससन्धेयम् । इन्दोः श्रियं विभ्रतीत्यत्र मुनेरिन्दुश्रियोऽयोगात्तत्सदृशीमिति सादृश्याक्षेपादसम्भवद्वस्तु-सम्बन्धरूपो निदर्शनालङ्कारः। वदने व्योम्नीवेत्युपमा। भृकुटिच्छलेन केतुरिति छलादि-शब्देनासत्यत्वप्रतिपादनरूपोऽपद्धवः । तत्र शत्रुविनाशसूचके त्वपेक्षितेन्दुसान्निध्यव्योमाव-स्थानसम्पादकत्वे निदर्शनोपमयोरपद्धवोपकारसत्त्वादङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। चमत्कारकारितया मङ्गलाचरणरूपतया च सर्गान्त्यश्लोकेषु श्रीशब्दप्रयोगः। यथाह भगवान्भाष्यकारः - 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते, वीरपुरुषाण्यायुष्मत्पुरुषाणि च भवन्ति, अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति' इति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । 'सूर्याश्वैर्मसज-स्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति लक्षणात् । सर्गान्तत्वावृत्तभेदः । यथाह दण्डी-'सगैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुगन्धिभिः । सर्वत्र भिन्नसर्गान्तरूपेतं लोकरञ्जकम् ॥' इति ॥75॥

अथ कविः कविकाव्यवर्णनीयाख्यानपूर्वकसर्गसमाप्तिं कथयति-इतीति । इति शब्दः समाप्तौ। माघकृताविति कविनामकथनम्। महाकाव्ये इति महच्छब्देन लक्षण-सम्पत्तिः सूचिता। शिशुपालवध इति काव्यनामकथनम्। प्रथमः सर्ग इति। 'समाप्त' इति शेषः एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम् ॥

इति श्रीमहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचिते शिशुपालवध-काव्यव्याख्याने सर्वङ्कषाख्ये प्रथमः सर्गः ॥ ॥

शब्दार्थ - तस्मिन् सुरमुनी उन देवमुनि नारद के, इति वाचं व्याहृत्य = इस प्रकार वचन कहकर, नभः उत्पतिते आकाश में चले जाने पर, पुरः = सामने, इन्दो = चन्द्रमा को, श्रियं विभ्रति शोभा धारण करने पर, अथ अनन्तर, ओम् इति उक्तवतः = ऐसा ही होगा। इस प्रकार कहने वाले, चैद्यम् प्रति कुद्धस्य चेदिराज शिशुपाल के प्रति क्रुद्ध, शाङ्गिणः श्रीकृष्ण जी के, वदने = मुख पर, व्योम्नि इव = आकाश के समान, अनिशं सर्वदा, शत्रूणां शत्रूओं के, विनाशपिशुनः = विनाश के सूचक, केतुः केतु (उत्पातविशेष) ने, भृकुटिच्छलेन भूभङ्ग के बहाने से, आस्पदं चकार = स्थान ग्रहण किया।

अनुवाद - उन देवमुनि नारद के इस प्रकार वचन कहकर आकाश में चले जाने पर सामने चन्द्रमा की शोभा धारण करने के अनन्तर ऐसा ही होगा इस प्रकार कहने वाले चेदिराज शिशुपाल के प्रति क्रुद्ध श्रीकृष्ण जी के मुख पर आकाश के समान सर्वदा शत्रुओं के विनाश के सूचक केतु ने भ्रूभङ्ग के बहाने से स्थान ग्रहण किया।

संस्कृत व्याख्या: - तस्मिन् सुरमुनौ-तस्मिन् नारदे इति, एतादृशीं इमाम् वाचं वाणीं, व्याहृत्य= उक्त्वा नभः आकाशम् । उत्पतिते समुद्गते, पुरः = अग्रे, इन्द्रोः चन्द्रस्य, श्रियं शोभां, बिभ्रति दधाने सति, अथ ततः, ओम्, इति एवं, उक्तवतः = एवमस्तु इत्यङ्गीकृतवतः, चैद्यम् = शिशुपालं प्रति, क्रुद्धस्य रुष्टस्य, शाङ्गिणः = श्रीकृष्णस्य वदने मुखे, व्योम्नि आकाशे इव, अनिशं सर्वदा, शूत्रणां = रिपूणां, विनाशपिशुनः = नाशस्य सूचकः केतुः केतुग्रहविशेषेण भृकुटिच्छलेन = भ्रूभङ्गव्याजेन आस्पदं स्थितिं, चकार = कृतवान् ।

तस्मिन् नारदमुनौ एतादृशीं वाणीम् उक्त्वा आकाशं समुद्गते अग्रे चन्द्रस्य शोभां दधाने सति ततः एवमस्तु इत्यङ्गीकृतवतः शिशुपालं प्रति रुष्टस्य श्रीकृष्णस्य मुखे आकाशे इव सर्वदा रिपूणां विनाशसूचकः केतुग्रहविशेषेण भ्रूभङ्गव्याजेन स्थितिं कृतवान् ।

व्याकरणः -

तस्मिन् - दकारान्त (तद्) पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन।

सुरमुनौ - इकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन।

इति - अव्यय ।

वाचम् - ककारान्त (वाक्) स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

व्याहृत्य- वि+आ+ह+ ल्यप्= अव्यय ।

नभः- सकारान्त नपुंसकलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

सत्पतिते - अकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन ।

पुरः - अव्यय

इन्दोः- उकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

श्रियम् - ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन।

विश्वति-भृ+शतृ-तकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन।

अथ ओम्, इति अव्ययं

उक्तवतः - तकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

चैद्यम् - अकारान्त पुल्लिङ्ग द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

प्रति- अव्यय। प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति।

क्रुद्धस्य- अकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन ।

शाङ्गिणः- नकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति एकवचन।

वदने - अकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन ।

व्योम्नि - नकारान्त पुल्लिङ्ग सप्तमी विभक्ति एकवचन ।

अनिशं, इव- अव्यय

शत्रूणाम् - उकारान्त पुल्लिङ्ग षष्ठी विभक्ति बहुवचन ।

विनाशपिशुनः- अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

केतुः - उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

भृकुटिच्छलेन - अकारान्त पुल्लिङ्ग तृतीया विभक्ति एकवचन।

समास - भृकुटेः छलम् तेन।

आस्पदम् - अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

चकार- क्रियापद। कृ+लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

छन्द- शार्दूलविक्रीडित। इसका लक्षण है-

सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

काव्यनियमों के अनुसार सर्ग के अन्त में छन्द बदला गया है।

सर्गेरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ।

सर्वत्र भिन्नसर्गान्तरूपेण लोकरञ्जकम् ॥ दण्डी।

अलंकार:- उपमा /उत्प्रेक्षा, अपद्धति, निदर्शना, संकर। व्योम्न इव में आचार्य कवि मल्लिनाथ ने उपमा मानी है लेकिन कुछ टीकाकार यहाँ उत्प्रेक्षा मानते हैं।

'भृकुटिच्छलेन' में अपद्धति अलंकार है चल शब्द से भृकुटि को हटाकर केतु का आरोप किया गया है।

इन्दोः श्रियम् विभ्रति सति' द्वारा नारदजी ने चन्द्रमा के सदृश को धारण कर लिया, इस असमान सम्बन्ध से निदर्शना अलंकार है।

यहाँ का अपहृति अलंकार इस उपमा अथवा उत्प्रेक्षा पर और निदर्शना पर ही आधारित है। इन तीनों अलंकारों के सम्मिश्रण से संकर अलंकार है।

विशेष:- ज्योतिषशास्त्र में चन्द्र के पास धूमकेतु का उदय राजाओं के विनाश का सूचक होता है। विभिन्न शास्त्रों के पण्डित महाकवि माघ की अद्भुत कल्पना है कि क्रोध के कारण भगवान् श्रीकृष्ण की भृकुटि धूमकेतु के समान थी, उनका मुख चन्द्रवत् था और नारदमुनि निकट ही चन्द्रवत् थे। कवि इसे शिशुपाल के विनाश का संकेत ही मानते हैं। अपनी इसी कल्पना से महाकवि ने इस श्लोक में रौद्ररस का सुन्दर परिपाक किया है। यह महाकाव्य श्री काव्य है अतः मंगलकामना की दृष्टि से ग्रन्थकार ने अन्त में श्री शब्द का प्रयोग किया है।

जैसा कि महाभाष्य का कथन है-

मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते ।

वीरपुरुषाण्यायुष्मत्पुरुषाणि च भवन्ति, अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति ।

अतः ग्रन्थ के अन्त में भी मङ्गलाचारण पढ़ने और पढ़ाने वालों सभी के लिये शुभ होता है।

सही जोड़ी बनाइये ।

(क) हरिः	-	(क) जाना
(ख) श्रियः	-	(ख) विष्णु
(ग) गतं	-	(ग) काजल
(घ) पूरा	-	(घ) लक्ष्मी
(ङ) अंजन	-	(ङ) प्राचीन

14.4 सार संक्षेप -

शिशुपाल वध के प्रथम सर्ग में 15 श्लोक तक व्याख्या के अंतर्गत व्याकरण भावार्थ आदि को समाहित कर प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है । व्याख्यात्मक शैली का अध्ययन करने से श्लोक आदि के माध्यम से अध्याय में प्रस्तुत किया गया ।

14.5 मुख्य शब्द

अरिवधोदयात् = शत्रुनाश के लाभ से,

उद्घडिम= दृढता धारण कर लेने पर,

अथ = अनन्तर,

छलनापरः दूसरों को छलने में तत्पर,

14.6 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1. (ख) 2. (घ) 3(क) 4(ङ) 5(ग)

14.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिशुपालवध-महाकवि माघ, व्याख्या-महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथ-
पंडित दुर्गा प्रसादेन- महामहोपाध्याय पंडित शिवदत्तेन, निर्णयसागर प्रेस,
मुंबई, दशम संस्करण
2. पंडित जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, शिशुपालवध- महाकवि माघ, मोतीलाल
बनारसीदास, दिल्ली, १९७२
3. श्री रामजी लाल शर्मा, शिशुपालवध- महाकवि माघ, चौखम्भा सुरभारती
प्रकाशन वाराणसी, १९९०
4. श्री अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री, शिशुपालवधरहस्यम्, चौखम्भा सुरभारती
प्रकाशन, १९९९
5. डॉ. श्रद्धा सिंह, शिशुपालवध-महाकवि माघ, व्याख्या- जगदीश संस्कृत
पुस्तकालय, जयपुर, २०१२

14.8 अभ्यास प्रश्न

1. श्लोकों की व्याख्या कीजिये-

1. ओमित्युक्तवतोऽथ शाङ्गिण इति व्याहृत्य वाचं नभ
स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति ।
शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः कुद्वस्य चैद्यं प्रति
व्योम्नीव भ्रकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ॥

2. तदेनमुल्लङ्घितशासनं विधेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम् ।
शुभेतराचारविपक्त्ररमापदो विपादनीया हि सतामसाधवः॥

